गौरव का प्रतीक

गौरव का प्रतीक

कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी

नवयुग प्रकाशन
दिल्ली

मूल्य : पांच रुपये

प्रकाश : नवयुग प्रकाशन
२८१, बेंगलो रोड, दिल्ली

मुद्रक : शुक्ला प्रिंटिंग एजेन्सी द्वारा
नूतन प्रेस, दिल्ली ।

: १ :

गुजरात के वैभव पर अन्धकार, विस्मृत और परतन्त्रता की अनेक पर्तें चढ़ गई हैं। यद्यपि आज उस भूमि पर नीरस मौन छाया हुआ है, किन्तु किसी समय इसी जगह इतिहास की सजीव घटनाएँ हुई थीं। दुर्भिक्षा के मारे हुए इन्हीं खेतों की भरी फसलों ने, गिने-चुने इन जंगलों के वृक्षों की असीम हरियाली ने तथा इन सूखी हुई नदियों के जल ने किसी समय कुछ और ही जीवन बिताया था, विजयी वीरों की रण-भेरी सुनी थी और सत्ता और श्रद्धा भक्ति के भाव को अनुभव किया था। गुजरात एक विशाल वृक्ष के समान है, उसकी जड़ों में भगवान् कृष्ण का कर्मयोग छिपा हुआ है; उसकी शाखाओं पर कोपलें फूटी हैं—महाकवि नर्मदा और महात्मा गाँधी जैसे महापुरुषों की।

मध्यकालीन युग में गुर्जर साम्राज्ज की नींव डालने वाला था—मूलराज सोलंकी। उसके प्रताप से अनहिलवाड़ पाटन का नाम सारे भारत में प्रसिद्ध हो गया था। वह आस-पास के राज्यों को जीतकर पाटन में मिलाना चाहता था। अपनी इस योजना में वह थोड़ा बहुत सफल भी हुआ, परन्तु वृद्धावस्था में उसकी दिन-प्रति-दिन बढ़ती धार्मिक वृत्ति ने उसके पुत्र चामुंड तथा पौत्र दुर्लभसेन को निष्क्रिय और आलसी बना दिया। फलतः पाटन के राजा स्वतंत्र तो रहे पर उनके पास सत्ता न रही।

दुर्लभसेन के भाई नागराज का पुत्र भीमदेव जब गद्दी पर बैठा, उस समय देश की हालत बहुत शोचनीय थी। मूलराज की राजनीति की वजह से लोग बहुत धनी और स्वतंत्र हो गये थे। राजपूत लूट-पाट से अपनी शक्ति बढ़ाने लग गये थे और यही अपना कर्त्तव्य समझते थे। समस्त साम्राज्य बिखरा पड़ा था। इसी समय गजनी के बादशाह महमूद की महत्वाकांक्षा का ज्वालामुखी फूट पड़ा, जिसके लावे की लपटों ने पाटन को जला डाला, सोमनाथ को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और, गुजरात की स्वतन्त्रता पर धूल पड़ गई। भीमदेव अपने प्राण बचाकर कंथकोट भाग गया।

परन्तु वह शान्त होकर नहीं बैठा। शौर्य और साहस का पुतला जानता था कि महमूद गजनवी के हटते ही बिखरे हुए वीरों को इकट्ठा कर उनमें स्वदेशप्रेम को जगाना चुटकी का काम है। व्यापारियों को अपने राजाओं के संरक्षण में व्यापार करने की पूरी स्वतन्त्रता थी। अतः यवनों का अत्याचारी शासन उन्हें असह्य था। उन्होंने भी भीमदेव को सहयोग दिया और एक बार उस वीर ने पाटन पर अपना अधिकार कर लिया। यवनों के बिठाये हुए राजाओं को उसने देश से बाहर निकाल दिया और पाटन एक बार फिर स्वतंत्र हो गया।

लेकिन, भीमदेव योद्धा था, राजनीतिज्ञ था। धन और सत्ता के मद में चूर व्यापारियों को वश में रखना उसे नहीं आता था, ताकि वे उसके पक्ष में भी रहें। लूटेरे और हंगामा मचाने वाले व्यापारियों को सीधा करने का उपाय भी उसकी समझ में नहीं आया था। पाटन के दंडनायक और नगरसेठ ने मिलकर पाटन को छोड़ एक नई नगरी चन्द्रावती बसाई। बहुत से धनी व्यापारी भी वहाँ जा बसे और अपने शासन कार्यों को पंचायत द्वारा करने लगे। पाटन की सत्ता का वहाँ कोई महत्त्व न था। भीमदेव दंडनायक की मैत्री निभाता रहा और उसके सहयोग से पड़ौस के राज्यों से लड़ा तथा मालवराज की महत्वांकाक्षा को भी दबा सका। पाटन के राजा का यह रौब केवल पाटन में ही था। बाहर उसका शासन बहुत कम था। मूलराज के समय में जागीरें पाये हुए राजपूत योद्धा, जो अब छोटे-मोटे राजा बन गये थे, पाटन के नरेश को नाममात्र का चक्रवर्ती समझते थे। शक्तिशाली मंडलों के अधिकारी अपने मंडल या प्रदेश में लगभग स्वतन्त्र थे। भीमदेव इनसे कुछ नहीं कह सकता था, उसके वानप्रस्थ लेने के बाद उसके बड़े लड़के क्षेमराज ने सिंहासन ग्रहण किया और उस काल में हो रहे जैन और राजपूतों के वैर-भाव को मिटाने के प्रयास आरम्भ कर दिये। क्षेमराज की माँ जैन मत की थी इसलिए क्षेमराज को यह सन्देह बराबर रहा कि राजपूत सामंत उसका शासन स्वीकार नहीं करेंगे। उसने बड़ी समझदारी से काम लिया और राज्य कर्णदेव के लिए छोड़ वानप्रस्थ ले वन में चला गया। कर्णदेव उसका सौतेला भाई और राजपूत माता का पुत्र था, वीर था, साथ ही आमोद-प्रिय भी

अपने शांति-प्रिय स्वभाव के कारण वह युद्धों से दूर रहा। उसने कर्णावती नगर बसाया और वहाँ अनेक सुन्दर और गगनचुम्बी महल बनाये।

क्षेमराज का पुत्र देवप्रसाद अपने दादा की तरह बड़ा शूरवीर और प्रतापी था, परन्तु वह राजनीति में इतना कुशल नहीं था। इसी कारण वह केवल अपने निकट के कुछ छोटे-मोटे शहरों को जीतकर अपने राज्य में मिलाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सका।

इस समय पाटन में जैनियों की शक्ति फिर बढ़ गई थी। पाटन के बहुत से श्रावक जो चन्द्रावती चले गये थे, कर्णदेव की शान्तिपूर्ण नीति के कारण फिर पाटन लौट आये।

उन्हीं दिनों चन्द्रपुर की राजकुमारी मीनल और कर्णदेव का विवाह हुआ। कुछ समय बाद राजा को मीनल से कुछ निराशा हुआ और पति-पत्नी में विच्छेद हो गया। नगरसेठ मुंजाल ने पति-पत्नि को एक करने के लिए जो प्रयत्न किये उनमें उसे सफलता प्राप्त हुई। पति-पत्नि का मतभेद दूर हो गया और मीनल राजा से फिर आदर पाने लगी। परिणामस्वरूप कुमार जयदेव का जन्म हुआ। मीनल देवी जैन थी और उनका दाँया हाथ मंत्री मुंजाल भी जैन था, इसलिए राजपूतों की स्थिति चिन्तनीय हो गई। देवप्रसाद का प्रभाव भी कम होने लगा। चिढ़कर वह देहस्थली चला गया। वहाँ उसने एक छोटा-सा राज्य भी स्थापित कर लिया। पाटन को शक्तिहीन देख देवप्रसाद दुःखी हो जाता था, पर वह कुछ कर सकने में असमर्थ था।

इधर मुंजाल ने छोटे सामान्तों को पाटन के आधीन कर लिया परन्तु मंडलों के अधिकारी और देवप्रसाद पाटन के आधीन होने वालों में से नहीं थे।

कर्णदेव का मृत्यु-काल आ जाने के कारण सारा वातावरण चिन्तित हो उठा। समस्या थी—भविष्य में क्या होगा ?

: २ :

सम्वत् ११५० की गर्मियों की सुहावनी साँझ रात का रूप ले रही थी। सप्तमी-अष्टमी का अर्द्धचन्द्र चारों ओर अपना प्रकाश फैला रहा था। पाटन का मार्ग इस समय एकदम शून्य था। वृक्षों की सांय-सांय और सियारों की आवाज और भी भयानकता उत्पन्न कर रही थी। किन्तु इस सब की परवाह न कर दो घुड़सवार तेजी से पाटन के मार्ग पर जा रहे थे।

अगला सवार बहुत तेज और तपस्वी प्रतीत होता था। बड़ी-बड़ी आँखों से वह अन्धकार में पाटन के किले को देखने की कोशिश कर रहा था। अपनी इस चाल से वह सन्तुष्ट नहीं था और जब-तब अपने घोड़े को एड़ लगा देता था। उसकी पोशाक उस समय के राजपूत योद्धाओं जैसी थी और भौंरे जैसी दाढ़ी के छोर कान से लिपटे हुए थे।

पिछले सवार की अवस्था करीब सत्रह साल की थी और वह सुन्दर और चंचल था उसकी पोशाक भी पहले सवार के समान थी और घोड़े की गति इतनी तेज़ होने पर भी वह किसी चीज को देखने में नहीं चूक रहा था।

वातावरण बहुत सुखद था, लेकिन फिर भी आगे वाला सवार कुछ परेशान दीख रहा था। उसकी भौंहें चढ़ी हुई थीं। जरा आगे चलकर वह रुका और अपने साथी से बोला, "क्यों त्रिभुवन, इस पगडण्डी से हम जल्दी से पहुंचेंगे न ?"

त्रिभुवन ने मुस्कराकर कहा, "मुझे नहीं मालूम। लेकिन यह तो किसी का खेत मालूम हो रहा है।"

"तो क्या हुआ हुआ ? पास में ही श्रवकों का उपाश्रय (उपासरा) है, उधर से ही जाना है।" कहता हुआ वह चल पड़ा।

पगडण्डी बहुत सकरी थी। पेड़ों की ओट में कहीं-कहीं ही चांद का प्रकाश पड़ता था, परन्तु घुड़सवार को घोड़े पर भरोसा था। धीरे-धीरे पगडण्डी चौड़ी होती गई और थोड़ी देर में एक सुन्दर-सा प्राकृतिक चौक आ गया, लेकिन घुड़सवार अपने विचारों में खोता हुआ आगे बढ़ता रहा। तभी अगले सवार

का घोड़ा लड़खड़ाकर गिर पड़ा। गिरते समय सवार की दृष्टि सामने के एक पत्थर पर गई और अपना दर्द भूल वह उसी ओर देखने लगा। चाँद के रुपहले प्रकाश में उसने देखा—श्वेत वस्त्र पहिने एक स्त्री पत्थर पर बैठी थी। सुन्दर मुखड़ा मलिनता से ढका था, बड़ी-बड़ी आँखों में व्यथा भरी थी। एक-क्षण में ही सवार ने उसे पहचान लिया। वह कहाँ है ? क्या कर रहा है ?—वह सब भूल गया। धूल झाड़ता हुआ वह बोला, "कौन ?" परन्तु पत्थर पर कोई नहीं था। सवार की आँखें फटने लगीं, अंग काँपने लगा। हे भगवान्, यह कैसा भ्रम था ? तो क्या वह स्वप्न देख रहा था। पागलों की तरह वह इधर-उधर देखने लगा और कपाल पर आये पसीने को पोंछने लगा।

तभी पिछला सवार आ गया। अपने बाप की यह दशा देखकर वह पूछने लगा, "क्या देख रहे हैं पिताजी ? क्या घोड़े पर से गिर गये है ?"

पिता ने बड़ी कठिनाई से अपने को सँभाला, "नहीं बेटा, घोड़ा जरा लड़खड़ा गया था।"

"आप गिर गये, यह तो एक अनोखी बात है।" कहता हुआ वह हँस पड़ा। तभी उसकी दृष्टि पिता के भयंकर बने हुए चेहरे पर पड़ी और वह चुप हो गया। पिता के स्वभाव से वह अच्छी तरह परिचित था। पिता ने चुपचाप आकर घोड़े को कसा, लापरवाही से उसकी लगाम गर्दन पर डाल दी और सिर झुकाकर किसी विचार में लीन हो गया। उसे ऐसा लगा, जैसे पल भर में ही वह बूढ़ा हो गया हो।

लड़का भी चुपचाप अपने पिता के साथ चलने लगा।

लेकिन यह मौन अधिक देर न रहा। किसी ने अगले सवार से पुकारकर कहा, "अरे भाई, आगे घोड़ा काँटों में जा फँसेगा, सामने बाड़े का दरवाजा बन्द है।"

सवार की विचार-तन्द्रा टूटी। पूछा उसने, "क्यों, यह दरवाजा बन्द है ?"

"हाँ भैया, घूमकर जाओ, रास्ता मिल जायेगा।"

इसी समय लड़के ने पीछे से आकर पिता से कहा, "आप पहचानते नहीं, यह विमल मंत्री का स्थानक है।"

"अच्छा।"

लड़के ने पूछा, "यहाँ से पाटन का दरवाजा कितनी दूर है ?"

ग्रामीण रास्ता दिखाता हुआ बोला, "यही कोई दो खेतों की दूरी पर होगा।"

पिता और पुत्र साथ-साथ चलने लगे।

सवार ने बात छेड़ी, "अगर पाटन के दरवाजे बन्द हो गये होंगे तो बड़ी मुश्किल हो जायेगी।"

लड़के ने कहा, "उस यति की वजह से देर हो गयी।"

"बेटा, आजकल चन्द्रावती के जैन अभिमान से फूले नहीं समा रहे हैं। वे पाटन को भी जैनों का बनाना चाहते हैं। लेकिन मैं अवश हूँ, कुछ नहीं कर सकता।"

"पिताजी, कृपया इतनी जोर से न बोलिए। किसी ने सुन लिया तो···।"

"हाँ बेटा, ठीक है। लो, वह दुर्ग दिखलाई पड़ने लगा। त्रिभुवन, वह यति तो हमसे पहले पहुँच गया होगा।"

"हाँ, हम थोड़ी देर थकान दूर करने के लिए सो गये थे न।"

पाटन का द्वार आ गया। वह बन्द होने ही वाला था। दोनों ने चुपचाप दरवाजा पार किया।

कुछ देर बाद अगले घुड़सवार ने घोड़ा खड़ाकर लड़के से कहा, "बेटा, मैं राजमहल में जा रहा हूँ, तुम अपने यहाँ जाओ।"

त्रिभुवन ने स्नेह-भरी दृष्टि पिता की ओर डालकर कहा, "आपका अकेले जाना ठीक नहीं।"

"अरे पगले, मेरी चिन्ता न कर। मुझे कोई क्या करेगा ?"

"समय अच्छा नहीं है पिता जी। आप बड़ा विकट कदम उठा रहे हैं।"

"क्या विकट है ? ऐसा तो कई बार कर चुका हूँ।"

"परन्तु मामा बड़े जबर्दस्त हैं।"

"ऐसे बीसों मन्त्री देखे हैं। जाओ, तुम निश्चिन्त होकर सो जाओ।"

लड़के ने कहा, "अच्छा, कल सुबह समाचार दीजियेगा।"

पिता ने घोड़ा बढ़ा दिया और उनके दृष्टि से ओझल होने तक लड़का उन्हें देखता रहा। फिर उसने भी घोड़ा बढ़ाया।

: ३ :

राजमहल के पिछले दरराजे पर पहुँच कर राजपूत सवार ने नौकरों के आने-जाने वाली खिड़की खटखटायी। थोड़ी देर बाद एक स्त्री ने खिड़की खोली, "कौन, भीमा ?"

सवार हंसता हुआ बोला, "नहीं जरा समरसेन चोबदार को बुला दोगी ?"

स्त्री लजाकर सिर नीचा किये चली गयी।

सवार ने कुछ देर प्रतीक्षा की। अन्त में थककर बगल के एक कुण्डे से घोड़े को बांध दिया और खिड़की लाँघ कर अन्दर जा पहुँचा। ऐसा मालूम होता था कि वह राजमहल के कोने-कोने से परिचित है। बायीं ओर वह नौकरों की कोठरियों की ओर गया और उसने एक कोठरी का दरवाजा खटखटाया।

"इस समय कौन है ?" कहते हुए एक बूढ़े ने द्वार खोला। सवार को देख उसे आश्चर्य हुआ, "कौन हो तुम ?"

"मैं हूँ। चुप रहो और मुझे अन्दर आने दो।"

अन्दर आकर राजपूत ने सावधानी से द्वार बन्द कर दिये। चोबदार हाथ जोड़कर सामने खड़ा हो गया।

"प्रभु ! आप इस समय यहाँ ?"

"मेरा काम इसी समय है, समर ? इस समय का न आना मुझे जीवन भर देहस्थली के दुर्ग में सड़ाता।"

"किन्तु मालिक, यदि मुंजाल मंत्री या मीनलदेवी ने जान लिया तो ?"

"तो क्या हुआ ? अगर तीन-चार दिन ठीक बीत गये तो फिर मुझे कोई अड़चन नहीं आ सकती।"

"जैसी आपकी आज्ञा। अब—"

"अब क्या ? कुछ खाने को हो तो ले आओ और जाकर लीलाधर वैद्य को बुला लाओ।"

"अन्नदाता, यह असम्भव है। वे रात-दिन महाराज की सेवा में लगे रहते हैं।"

"तो उनका दामाद वाचस्पति क्या करता है ?"

"हाँ, वे खाली हैं। पर उससे क्या कहूं ?"

"कहना कि जिसके कारण तुम उपाध्याय बने हो, उसी ने बुलाया है।"

चोबदार जाकर कुछ खाने को लाया और बाहर चला गया। कुछ देर बाद आकर उसने कहा, "स्वामी, वाचस्पति आ रहे हैं।"

"अच्छा, अब तुम जाओ।"

"जो आज्ञा।" कहकर चोबदार चला गया। राजपूत इधर-उधर टहलने लगा। कुछ देर में एक दुबला-पतला-सा बुद्धिमान व्यक्ति वहाँ आया। उस व्यक्ति का राजमहल में बहुत सम्मान था। उसने आते ही पुकारा, "समरसेन !"

राजपूत बोला, "समरसेन नहीं, मैं हूं। मैंने बुलाया है तुम्हें।"

आवाज़ सुनकर वाचस्पति घबरा गया, उसका कलेजा धड़कने लगा। घबराकर पूछा उसने, कौन ? मंडले···"

"धीरे, पंडित धीरे। चिल्लाओ नहीं।"

"परन्तु, आप यहाँ ? कितना साहस है आप में !"

"साहस रखो एक ओर। मैं किसी खास काम से आया हूं।"

"किस काम से ?"

"मुझे काकाजी से मिलना है।"

"यह नहीं हो सकता। उनके पास हर समय मीनलदेवी, उदयमती या मुंजाल मेहता रहते हैं।"

"क्या मैं अपने काका से भी नहीं मिल सकता ?"

"लेकिन, और सब के तो आप शत्रु हैं।"

"वाचस्पति तुमसे इतना काम भी नहीं हो सकता," तेज स्वर में वे बोले, "आज तुम उपाध्याय किसके कारण बने हो ? समय भीमदेव के पौत्र से तुम्हारी याचना करवा रहा है और तुम ना कर रहे हो।"

"समय बहुत बलवान है।"

"भाड़ में झोंको अपनी बुद्धिमानी को, कोई मार्ग निकालो।"

"मार्ग निकालना कठिन है। इस समय गुजरात का राजतन्त्र बिगड़ गया

है। सुधारने वाला श्री हरि—"

राजपूत ने ऊबकर कहा, "श्री हरि को रहने दो। बात सीधे ढंग से करो। चाहे जैसे हो, तुम्हें यह काम करना होगा।"

"स्वामी, एक काम कीजियेगा ?"

"कहो।"

"वरिणक जैसी पगड़ी बांध लीजिये और ये मेरी शाल ओढ़ लीजिये। लेकिन है बहुत जोखिम का काम। मैं आपको कहीं छुपा दूंगा, और मौका देखकर वैद्यराज से बात करूंगा।"

"स्वीकार है।" और राजपूत पगड़ी बदलने लगा।

"किन्तु महाराज यदि कुछ उलटा-सीधा हो जाये तो मुझे दोष न दीजियेगा।"

"घबराते क्यों हो !" फिर रुककर राजपूत बोला, "परन्तु वाचस्पति, एक बात पूछूं ?"

"पूछिये ! मेरी विद्वता आप ही के लिए है।"

राजपूत ने दुःखपूर्ण स्वर में पूछा, "मरा हुआ व्यक्ति भूत कब बनता है ?

"महाराज, विषय गूढ़ है और शास्त्रीय भी। श्राद्ध विधि-हीन तथा अधिक वासना वाली आत्मा प्रेतलोक में रह जाये तो अवसर पाकर वे पृथ्वी पर लौट आती है।"

"लेकिन क्यों ?"

"स्नेहियों से मिलने या उन्हें चेताने के लिए।"

"हूं ?" राजपूत ने फीके स्वर में कहा और उसके मुख पर निराशा छा गयी।

दोनों कोठरी से बाहर आ गये और जंजीर चढ़ाकर धीरे-धीरे कर्णदेव की मृत्यु-शैया वाले कमरे की ओर चले।

राजा की बीमारी की चिन्ता में सर्वत्र अशान्ति थी; महल में दीपक भी मंद गति से जल रहे थे। चारों ओर चिन्ता छायी हुई थी। राजा कर्णदेव के कमरे की बगल वाले कमरे में राजपूत और वाचस्पति पहुँचे थे कि किसी स्त्री के कंगनों की खनखनाहट सुनायी दी। वाचस्पति ने डरकर कहा, "अब मुश्किल

ग्रायी।"

राजपूत ने धीरे से पूछा, "क्यों ?"

वह फुसफुसाया, "मालूम होता है, महारानी ग्रा रही हैं। ग्राप उस झरोखे में छिप जाइये। ग्रवसर पर मैं बुला लूँगा।"

"लेकिन—"

"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं।" ग्रौर उसने राजपूत को ग्रधखुले द्वार से झरोखे में ठेलकर दरवाजे बन्द कर लिए।

ग्रन्दर से राजपूत ने किसी का ग्रधिकारपूर्ण स्वर सुना, "कौन है ?"

ग्रौर फिर एक दबा हुग्रा-सा उत्तर, "कोई नहीं, माताजी, मैं हूँ।"

राजपूत कुछ घुटने-सा लगा। वह बुदबुदाया, "कैसे कोई मार्ग निकालूँ ?"

ग्रँधेरे से एक ग्रावाज सुनाई पड़ी, "ग्राग्रो भाई मैं मार्ग दिखलाऊँ।"

चौंककर राजपूत ने तलवार पर हाथ रखा, "कौन है ?"

चन्द्रमा के क्षीण प्रकाश में कोई ग्राता दिखाई दिया। पास ग्रा, उसने व्यंग से पूछा, "इतनी देर में ही भूल गये राजपूतराज।"

"कौन ? यति ! जो रास्ते में मिले थे। तुम इस समय कहाँ से ?"

"वहीं से, जहाँ से तुम ग्राये हो कदाचित हमारे भाग्य में मित्र बनना लिखा है।"

"किन्तु इस स्थान पर ग्रा कैसे गये ?"

यति ने कहा, "ग्राप ही की तरह मुझे कोई छिपाने वाला मिल गया।"

राजपूत बोला, "खैर, इस समय ग्रधिक बात न करना ही ठीक है। ऐसा प्रतीत होता है कि या तो हम मित्र बन जायेंगे या फिर कट्टर दुश्मन।"

"किन्तु, इस समय इस भूमि पर शत्रुता की ही ग्रावाज सुनाई देती है।"

"यह सब श्रावकों की मेहरबानी से।"

"या राजपूतों की।"

"कर्णदेव की मृत्यु के बाद सब ज्ञात हो जायेगा।"

"ग्रच्छा हो, यह बात छोड़ दें।"

राजपूत ने मूंछों पर हाथ फेरा, "ग्रच्छा तो ग्रब दोस्ती की बात करते हैं। ग्रापका नाम ?"

"आनन्दसूरि। और आपका ?"

राजपूत कुछ रुककर बोला, "लोग मुझे देवीसिंह कहते हैं।"

यति ने हंस कर कहा, "यह मुझे आज ही मालूम हुआ कि मंडलाधिकारी झूठ भी बोलते हैं।"

देवीसिंह चौंक पड़ा। हाथ अनजाने ही तलवार पर जा पहुंचा। उसने पूछा, "कौन हो तुम !"

"तलवार निकालने की जरूरत नहीं, मंडलेश्वर ! इस समय की गड़बड़ आपको ही महंगी पड़ेगी।"

राजपूत ने अपनी स्थिति जानकर तलवार पर से हाथ हटा लिया। बोला वह, "तुम कौन हो आनन्दसूरि ? क्या इस समय मुझे प्रकट कर देना चाहते हो ?"

"नहीं राजा, मैं आपको दुःख नहीं पहुंचाऊंगा। परन्तु इस समय आपके ऊपर दैवी कोप है।"

"यति जी, मैं दैव के समय-असमय के कोप से नहीं डरता।"

"मंडलाधिकारी, ध्यान रखिये, राजा रावण का गर्व भी चूर हो गया था। इस समय एक मित्र के नाते तुमसे कह रहा हूं कि तुम्हारे दिन पूरे हो गये हैं। शेष दिनों का सदुपयोग कर लो।"

"श्रावकों को पीसना ही इनका सदुपयोग है। इन पापियों ने मुझे लूट-खसोट कर नंगा कर दिया है। मैं इनकी—"

"लेकिन आप उन्हें नहीं पीस सकते।"

"क्यों ?"

"गुरुदेव का वचन है।"

"क्या ?"

"यही, कि जिन भगवान के शत्रु मेरे हाथों ठिकाने लगने वाले हैं।"

मंडलाधिकारी कांप कर रह गया।

"राजन्, वर्षों से जिन भगवान के असमर्थ सेवकों को जलाने का अपराध क्षम्य नहीं है। फिर भी आप वीर पुरुष तथा गुजरात की विभूति हैं।"

राजपूत तिरस्कारपूर्ण स्वर में बोला, "आपको क्षमा की परवाह ही

किसे है ?"

"न हो, किन्तु राजा की मृत्यु के बाद बहुत उपद्रव मचेगा। मेरे योग्य यदि कभी कोई कार्य···"

"मुझे, और आप से काम पड़े।" राजपूत की आँखों में गर्व था।

"राजन्, यदि आपसे धर्म-विरोध न होता तो मैं आप जैसे वीर और बुद्धिमान व्यक्ति की उन्नति देखकर प्रसन्न होता। फिर भी आज की भेंट की स्मृति-स्वरूप मैं वचन देता हूँ कि कभी कोई काम आ पड़े तो आनन्दसूरि सहर्ष तैयार रहेगा।"

"यति जी, मंडलाधिकारी को याचना करना नहीं आता। श्रावकों के धन के अभिमान की भाँति हमें अभी भुजाओं के बल पर अभिमान है।"

"जैसी आपकी इच्छा। लेकिन सावधान रहना।"

"मंडलाधिकारी ने डरना नहीं सीखा।"

"मृत्यु का डर तो सब को होता है।"

"मृत्यु मेरे लिए एक खिलवाड़ है।"

"जैसी इच्छा। मैं अब जाता हूँ उसी ओर, जहाँ से आया हूँ।" और वह चल पड़ा।

मंडलाधिकारी विचारों में खो गया। उसके दिमाग में यति की भविष्य-वाणी गूंज रही थी। कई वर्ष पहले उसने मंडल को एक छोटा-सा राज्य बना लिया था और गुजरात में उसकी शोहरत थी; लेकिन उसे देहस्थली में पड़ा रहना अच्छा नहीं लगता था। उसके विचार से पाटन संसार का मुकुट था। इस ओर पाटन के शासक उसे निर्बल बना रहे थे। हालांकि उनका यह प्रयास अधिक सफल नहीं हो पाया था, फिर भी इसने मंडलाधिकारी को उलझन में डाल दिया था।

: ४ :

आनन्दसूरि निर्विघ्नता से झरोखे के दूसरे किनारे पर पहुँचकर प्रसन्न था। गुरुदेव से आज्ञा लेकर जब वह चन्द्रावती से भागा था तो उसे ये शुभ शकुन होने की आशा नहीं थी।

तभी एक स्त्री का स्वर आया, "महाराज !"

उसकी विचारधारा टूटी, "कौन ? रेणुका ?"

"जी हाँ मैं। आइये। मैंने मन्त्रीजी को आपका पत्र दे दिया है और उन्होंने आपको बुलाया है।"

"कहाँ हैं वे ?"

"मेरे साथ आइये।" कहकर वह यति को साथ ले गयी।

गुजरात के महामंत्री मुंजाल की सारे देश में धाक थी। यही नहीं, बगदाद और वेनिस तक में उसकी हुण्डियाँ स्वीकारी जाती थीं। समस्त मंडलाधिकारी और सामंत उसका लोहा मानते थे। मालवराज उससे मित्रता बढ़ाने के लिए उसे अवंति का अपार धन देने को तैयार था। पाटन की जनता उसके पीछे जान देने को तैयार थी। ऐसे व्यक्ति से पहली बार मिलते हुए यति को कुछ क्षोभ हुआ। एक कोने में चार-पाँच शस्त्र सज्जित व्यक्ति धीरे-धीरे बातचीत कर रहे थे और एक-दूसरे कमरे में दो-तीन गुमाश्ते कुछ लिखा-पढ़ी कर रहे थे। यति को देखकर वे चुप ही रहे। रेणु उसे ठहरने का संकेत कर अन्दर चली गयी और थोड़ी देर बाद आकर उसे भी साथ ले गयी।

अन्दर झूले पर मन्त्री बैठे थे। आयु लगभग पैंतीस वर्ष; मुखमंडल सुन्दर; आँखें तलवार की धार जैसी तीक्ष्ण और शरीर सुगठित। मूँछें आज भी यौवन का परिचय दे रही थीं। कंधों पर लम्बी चोटी फैल रही थी जिसे वे समेट रहे थे।

यति की ओर एक तीव्र दृष्टि डाल कर उन्होंने नमस्कार किया और झूले पर बैठने का इशारा किया। स्वयं वे पास पड़ी चौकी पर बैठ गये।

"नमस्कार मन्त्रीजी महाराज।" कहकर आनन्दसूरि बैठ गया। एक क्षण

को मुंजाल को देखकर मन में मुंजाल की लोकप्रियता, उसका विशाल व्यापार उसकी दृढ़ राजनीति, उसका और मीनलदेवी का सम्बन्ध आदि बातें आ गयी। किन्तु तत्काल ही, इन विचारों को हटाकर उसने मन्त्री से बातें करनी आरम्भ की, "चन्द्रावती में सब कुशल-मंगल है। आपने नगरसेठ का पत्र पढ़ा ?"

मन्त्री कुछ गम्भीर होकर बोले, "हाँ। किन्तु उन्होंने अपनी माता के समाचार क्यों नहीं लिखे ? मौसी कैसी हैं ?"

"मेरे आने के समय उनकी दशा कुछ गिरी हुई-सी थी।"

"आप इस समय कैसे आये हैं ? मुझे अवकाश नहीं है, जानते हैं ?"

"जी मैं आपके कार्य में विघ्न डालने नहीं आया हूँ।"

मन्त्री एक तिरस्कारपूर्ण हँसी हँसा।

यति ने फिर कहा, "गुरुदेव का वचन है कि मेरे हाथों बहुत से कार्य होने हैं उन्हीं के लिए मैं आपकी सहायता करने आया हूँ।"

मन्त्री लापरवाही से बोला, "सौभाग्य भाई के लिखने के अनुसार आप हमारे बहुत काम आयेंगे। किन्तु उचित यही है कि आप केवल एक काम करें।

"क्या ?"

"कृपा करके पाटन के राजतन्त्र में चन्द्रावती का झगड़ा न लावें।"

यति चौंक पड़ा कि कैसे मुंजाल को उसके यहाँ आने का उद्देश्य पता चल गया है। धीरे से उसने कहा, "मैं झगड़ा करने नहीं आया हूँ। नगरसेठ के लिखे अनुसार आपसे मिलकर महारानीजी से मिलूंगा और योग्य कार्य न मिलने तक यहीं रहूँगा।"

मुंजाल जैसे उसे संदेह की दृष्टि से देख रहा था। फिर वह बोला, "आनन्द सूरिजी मैं अधिक बात करना पसन्द नहीं करता। चन्द्रावती के श्रावकों के प्रतिनिधि के रूप में आप आये हैं परन्तु मैं पाटन की राजनीति में धार्मिक जोश नहीं लाना चाहता और अगर आप व्यर्थ इसका प्रयत्न करेंगे तो मेरी आपकी नहीं पटेगी और मैं आपको अपना शत्रु समझूंगा।"

"नहीं। इस समय तो मैं मित्र बन कर आया हूँ और यदि प्रमाण की आवश्यकता हो तो अभी दे सकता हूँ।"

"क्या !"

"एक गुप्त बात बतलाऊँ ?"

"बोलो।" तिरस्कारपूर्ण स्वर में मुंजाल ने कहा।

"कर्णदेव का भतीजा देवप्रसाद यहीं हैं।"

मुंजाल खिलखिलाकर हँस पड़ा, "क्या चन्द्रावती में इसी प्रकार राज-काज चलता है, आनन्दसूरिजी ?"

"क्या ?"

"यही गुप्त बात है ? दोपहर को आप पाटन के बाहर उससे मिले, फिर झरोखे में इतमीनान से बात की, क्या यह सब मेरी दृष्टि से छिपा है। कृपा करके, आप लोगों को मोक्ष दिलाइये और मेरा काम मुझे करने दें।"

यति को कुछ क्षोभ हुआ। बोला मन्त्रीराज, क्षमा कीजिये। मैं आपकी शक्ति से अपरिचित था।"

मुंजाल भयंकर दृष्टि डालता हुआ बोला, "ठीक है। किन्तु याद रखिये, मैं राजनीति के बीच में आने वालों को क्षमा नहीं करता। अच्छा, अब आपका क्या काम बाकी रहा है ? भोजन किया है आपने या नहीं ?"

"आज मेरा उपवास है। हाँ, महारानीजी को प्रणाम करना चाहता था।"

"आइये, मेरे साथ चलिये। मैं भी उधर ही जा रहा हूँ।" उसने खूंटी पर से खेस उतार कर ओढ़ा और यति के साथ दूसरे द्वार से बाहर हो लिया। आनन्दसूरि का चेहरा कुछ उतरा-सा था और मुंजाल के मुख पर था गर्व। महारानी के कमरे के पास आकर मुंजाल ने यति को ठहने का संकेत किया और बन्द द्वार का कुण्डा खटखटाया। एक बूढ़ी स्त्री ने द्वार खोला, "कौन ?"

"मैं हूँ।" मुंजाल बोला।

"आइये। महारानीजी आपकी राह देख रही हैं। ये कौन हैं।"

"यह चन्द्रावती के यति हैं।" कहकर उसने बूढ़ी को वहीं बिठा दिया और स्वयं अन्दर हो लिया।

यति की जिज्ञासा जाग उठी। यदि वह इस समय किसी तरह मुंजाल और मीनलदेवी की बातें सुन पाता तो! उसने अनेक बातें उन दोनों के बारे में सुन रखीं थीं। अधीरता से वह द्वार खुलने और मीनलदेवी को देखने की प्रतीक्षा करने लगा। उसने सोचा सर्वप्रथम मुंजाल की सत्ता तो कम करने की कुंजी ढूंढ़नी है, और दूसरे रानी से भी कुछ प्रभावशाली ढंग से बातें करनी हैं, तभी सफलता मिलेगी।

: ५ :

पिता के दृष्टि से ओझल होने के बाद त्रिभुवन भी उनके आदेश को भूल उसी मार्ग पर चल पड़ा। उसे पिता के दुःख मालूम नहीं थे, सो वह प्रसन्न था। पाटन को वह एक सुखद स्वप्न के रूप में देख रहा था, किन्तु दुर्भाग्यवश वह यहाँ अधिक दिन नहीं रह सकता था। वह राजमहल की ओर जाकर दूसरी ओर घूम गया। एक झरोखे के पास एक कोने में वह घोड़े से उतर पड़ा। भूमि से एक कंकड़ उठाकर उसने झरोखे की अन्दर से बन्द हुई खिड़की पर मारा, दोबारा कई सारे कंकड़ मारे और कुछ एक क्षणों के पश्चात् एक सुकुमार बालिका ने मुस्कराते हुए बाहर झांका। आस-पास देख दरवाजे को और ज्यादा खोल वह झरोखे से नीचे की ओर देखने लगी।

"कौन ?"

"कौन वाली, यहाँ कब तक खड़ा रखेगी ?"

"कौन है ? जाता है या नहीं ?" लड़की हँसी।

"कहाँ जाऊँ ? मैं ऊपर आता हूँ रस्सी बाँध।"

"रस्सी तो तीन दिन हुए, टूट गयी।"

"नहीं प्रसन्न। मैं पिताजी के काम की वजह से न आ सका।"

"तो अब मुझे काम है लौट जाओ।" बाला झरोखे से रस्सी उतारकर खिड़की से बाँधने लगी।

"लौटकर कैसे जा सकता हूँ क्षत्रिय हूँ।"

"इस समय चोरों की तरह आना तो क्षत्रित्व है न ?"

"अच्छा, जो चाहे कहो। देखो, रस्सी ज्यादा नीची न बाँधो।" कहता हुआ वह रस्सी से लिपट गया और थोड़ा ही ऊपर गया था कि लड़की ने गाँठ जरा ढीली कर दी और रस्सी खुलने से त्रिभुवन धम् से भूमि पर आ गिरा। कहा उसने, "ओ चण्डिका देवी, कोई चौकीदार आ गया तो हम दोनों की जान पर आ बनेगी।"

"तो मेरा क्या दोष ? रस्सी को वापस फेंको। इस बार अच्छी तरह बाँधूंगी।

इस बार त्रिभुवन ठीक तरह ऊपर पहुँच गया और उसने प्रसन्न को जा पकड़ा।

"तुम्हें मेरी सौगंध, जो मुझे पकड़ो।"

"भला क्यों ?"

"मैं तुमसे नाराज हूं। तीन दिन बिताते मेरे प्राण निकल गये।" शरारत-भरे लहजे में वह बोली।

"देख लिया तुम्हारे प्राणों को। त्रिभुवन उसे पकड़ने लगा। बिल्ली की जैसी तेजी से वह आगे-आगे और त्रिभुवन पीछे-पीछे। दौड़कर वह झूले पर चढ़ झूला झूलने लगी।

"अरे रोको। क्यों मरना चाहती हो ?"

प्रसन्न ने पेंग बढ़ायी, "साहस हो तो अब पकड़ो।" उसके अंग-अंग में मादकता और शरारत भरी थी। पेंग के परिश्रम में उसके मुख पर लाली आ गयी थी; चोटी खुल गयी थी, पर वह पेंग बढ़ाती रही।

"गिर जाओगी, प्रसन्न।"

"तुम्हारे दोष से। अब तक क्यों नहीं आये ? अब मैं नहीं उतरूंगी, जो तुमसे हो सके, कर लो।

पेंग बढ़ती गयी और जब प्रसन्न ने मोहनी की आकर्षक भयंकरता धारण की तो त्रिभुवन घबराने लगा कि कहीं झूला टूट पड़ा तो ! बिना एक क्षण की देरी किये प्रसन्न ने झूले पर से कूद त्रिभुवन के ऊपर अपना बोझ डाल दिया। इस अचानक कूद से त्रिभुवन हैरान हो स्वस्थता खोकर गिर पड़ा, दोनों के चोट लगी, किन्तु हंसते हुए उन्होंने एक दूसरे को भुजाओं में कस लिया।

त्रिभुवन ने उसके दो एक स्नेह की चपत लगायीं, "दुष्टा कहीं की। उधम मचा रही थी।"

और, उत्तर में प्रसन्न ने भी दो थप्पड़ लगाये, "तूने ये क्या, शैतान अब उठ, आतिथ्य पूरा हो गया।"

"मेरा दुर्भाग्य कि मैं यहाँ आया। अच्छा, अब चल कर झूले पर बैठ। मेरा दिमाग ठिकाने नहीं है।"

"तूने मेरा हाथ नहीं देखा। देख, कितना खून बह रहा है।

"अच्छा हुआ। अब मैं चला।"

"फिर आये ही क्यों थे ?"

"तुम ही तो चले जाने को कह रही थीं मुझसे।"

"ऐसा मत कहो। अब तुम यहीं रहोगे।"

"कुछ निश्चित नहीं है" त्रिभुवन ने गम्भीर स्वर में कहा, "इस समय वातावरण बहुत खराब है।"

"तुम्हारे पिता भी बड़े विकट हैं।"

"तुम्हें इसके विषय में कुछ ज्ञात नहीं है, प्रसन्न। उनके समान वीर योद्धा कोई नहीं होगा और तुम्हारी बुआ ने उन्हें इतना दुख दिया है कि उसे वे ही सहन कर सकते हैं।"

"बुआ की बात न करो। संसार में वे भी एक ही हैं।" प्रसन्न का स्वर कर्कश हो गया था।

"और संसार में मंडलाधिकारी भी एक ही हैं।"

"खैर छोड़ो। लेकिन, अगर किसी को यह मालूम हो जाये कि हम हर महीने यों मिला करते हैं, तब ?"

"कोई चोरी नहीं करते हम।"

"लेकिन, बुआजी मिट्टी पलीद कर छोड़ेंगी।"

"मिट्टी पलीद करने की क्या बात है। अच्छा, यह बताओ, चारणजी कैसे हैं ?"

"वे दिनों-दिन दुर्बल होते जा रहे हैं। तुम्हें याद करते हैं।"

"चलो मिल आयें। फिर मैंने जाना है।"

"तुम्हें तो आते ही जाने की सूझ रही है। चलो—"

सामल भीमदेव का सम्मानित चारण था, उनका सच्चा साथी था। आज, नव्बे वर्ष की वय में भी वह अशक्त और शांत होकर सम्राट का यशोगान कर जीवन के दिन पूरे कर रहा था। सबके सम्मान और श्रद्धा का वह पात्र था। राजमहल के एक भाग में उनका निवास था। प्रसन्न और त्रिभुवन पर उसकी बड़ी ममता थी। जब वे दोनों उसके पास पहुंचे, वह बिछौने पर बैठा नोकर से हुक्का भरवा रहा था। काम खतम कर नोकर चला गया।

उन दोनों ने कहा, "बारहटजी, जय सोमनाथ।"

निस्तेज नेत्रों को घुमाकर वह बोला, "कौन है, भाई ?"

"पहचाना नहीं ?"

"कौन, त्रिभुवनपाल ? आओ, आओ। तुमसे मिले बहुत दिन हो गये।"

"आपके बिना कहीं कुछ नहीं हो सकता। अच्छा, आपकी तबियत कैसी है ? शरीर तो दुर्बल होता जा रहा है।"

"भाई, साथी, सुभट, सब चले गये और कर्णदेव जाने को बैठे हैं मैं तो पुराना हूँ, अब मुझे भी जाना चाहिए।"

"फिर हमें समझ कौन देगा ?"

"अब समझ या ज्ञान की आवश्यकता नहीं। पाटन को अपनी प्राचीन वीरता, प्राचीन एश्वर्य खटकता है। अब वह जाने को बैठा है।"

"रहने दो बारहटजी। आप तो सदा पहले का गुणगान करते हैं।"

बारहट उत्तेजित हो गया, "अब रह ही क्या गया है ? वीरता छोड़ नरेशगण षड़यन्त्र रचने लगे हैं, छिपकर चोरों की तरह मार करते हैं।"

"क्या कहूँ बेटी। जो मालवराज पाटन का नाम सुनकर थरथर कांपता था, उसे आज रिश्वतें दी जा रही हैं, लोग उसे हर तरह से संतुष्ट करना चाहते हैं।

प्रसन्न विकल हो त्रिभुवन की ओर देखने लगी।

"लेकिन यह सब है क्या ?" त्रिभुवन ने पूछा।

"जानते हो, स्त्रियों की बुद्धि पैर के नीचे होती है और जब वे ही राज्य करने लग जायें तो—"

"स्पष्ट कहिए बात क्या है ?"

प्रसन्न समझ गई कि बारहट क्या कहना चाहता है ?' उसने बात का प्रसंग बदल दिया, "आपकी खाँसी अब कैसी है ?"

किन्तु त्रिभुवन ने फिर पूछा, "मैं भी तो सुनूं क्या बात है। बारहटजी, आपके अतिरिक्त मुझे कहाँ से यह सब मालूम होगा ?"

पीछे खड़ी प्रसन्न काँपकर रह गयी।

"अरे भैया, मेरी यह प्रसन्न मालवराज को दी जायेगी। वाह रे पाटन !

तेरी क्या प्रशंसा करूं ? कन्या देकर संधि करना ! मेरे भीमदेव आज होते तो सब के प्राण ले लेते ।" और उसने एक सोरठा सुनाया—

गयो गयो वह राज, भेंटे दे अरि बस कियो ।
पड़े नरनपै गाज, सुनकर जो कोपैं नाहीं ।

त्रिभुवन जरा सख्ती से बोला, "सचमुच क्या प्रसन्न मालवराज को व्याही जायेगी ? क्यों प्रसन्न, सच है यह ?"

प्रसन्न कुछ न बोली । उसे सूझा ही नहीं । खाली सिर झुका दिया । त्रिभुवन का मुख भयंकर हो गया, नथुने फड़कने लगे । पाटन और मालवा में पीढ़ियों से बैर चला आ रहा था और इस बैर के पोषण में ही गौरव समझा जाता था । राजपूत शत्रु के आगे सिर झुकाने से मर जाना अच्छा समझते हैं; त्रिभुवन ने फिर पूछा, "प्रसन्न कहते हुए शरमाती हो । क्या तुम भी जाने को तैयार हो ?"

चारण खेद से सिर धुन रहा था ।

"बुआजी मुझे समझा तो रही हैं ।"

"मीनलदेवी ? उनकी क्या हिम्मत है ?" तपाक से त्रिभुवन ने कह दिया और तभी पीछे से उसे एक अधिकारपूर्ण स्वर सुनाई दिया, "मीनल देवी की हिम्मत पूछने वाला कौन है ?"

दरवाजे पर एक बारह साल का लड़का खड़ा था । उसके मुख पर कर्णदेव जैसा गौरव व सौन्दर्य और आंखों में मीनलदेवी का तेज था । सब पर उसने कड़ी दृष्टि डाल रखी थी ।

"चारण ने कहा, "जाओ कुमार जयदेव, मेरे सोलंकी कुल के दीपक ।"

"माताजी के विषय में इस प्रकार बोलने वाला यह कौन है और यहां क्यों आया है ?" कुमार ने तिरस्कार भरे स्वर में पूछा ।

वैसे ही तिरस्कार और गर्व से त्रिभुवन ने उत्तर दिया, "राजमहल में आने का तुम्हारे समान ही अधिकार मेरा भी है । यह बात किसी और समय प्रमाणित करूंगा, अभी मैं जा रहा हूं ।" और उसी क्षण वहां से चला गया, यह सोचकर कि यदि जयदेव ने पहचान लिया तो पिताजी को अवश्य कुछ हानि पहुंचेगी । अभी उसे पिता की ओर से चुप रहने का आदेश मिला

था। प्रसन्न और चारण पर भरोसा रख वह शीघ्र नीचे उतरा और पहले वाले कमरे में पहुँच गया। तभी प्रसन्न भी वहाँ पहुँची और बोली, "त्रिभुवन इस तरह क्यों जा रहे हो ? जरा रुको, मेरी बात सुनो।"

"उज्जयिनी की रानी का मुझसे क्या मतलब ? रानी बन जाओ, तब कुछ सुनाना।"

और क्रोध के आवेश में वह नीचे कूद घोड़े पर बैठ गया। प्रसन्न देर तक उसके दौड़ते हुए घोड़े को देखती रही।

: ६ :

मुंजाल जब आनन्दसूरि को छोड़ रानी के कमरे में आया तो उसने स्वयं को बदल दिया। उसका गर्वीला और आवेशयुक्त चेहरा कुछ नम्र और स्नेहिल हो गया। पुकारा उसने, "आप कहाँ हैं, देवी ?"

अन्दर के कमरे से स्वर आया, "कौन ? मेहता ! में यहीं हूँ।" तीस वर्ष की एक स्त्री छोटे से कमरे में चौकी पर बैठी माला जप रही थी। उसकी आँखें लाल और चेहरा उदास सा लग रहा था। उसका वेष सादा और सांवला रंग था। देहली पर बैठे हुए मुंजाल से उसने पूछा, "क्या खबर है ?"

"बादल घिर आये हैं।"

"मतलब।"

देवप्रसाद यहाँ आ पहुँचा है।"

"बिना आज्ञा लिए ?"

"आज्ञा की क्या बात है ? मृत्यु शय्या पर पड़े हुए चाचा को देखने भी भतीजा न आये ?"

"और हमारा सब कुछ लूट ले जाये। इस समय उन्हें तो कुछ ज्ञान है नहीं। कहीं कुछ कह दिया तो उत्पात खड़ा हो जायेगा।"

"आप निश्चिन्त रहें, कुछ न होगा। लेकिन इस समय उसे छेड़ना तो सम्भव नहीं। वरना क्या मैं चूकने वाला था।"

"मेहता, पन्द्रह वर्ष यों ही बीत गये, अभी तक कुछ नहीं हुआ।"

"ये सब आपके लिए।"

"मेरे लिए।"

"हां, आपके जयदेव के लिए पाटन बना रहे। सो, मैं अपनी शत्रुता और स्वार्थ को भूलकर इस चक्कर में न उलझता।"

"उसमें तुमने क्या किया ? मैं आज भी तेरह साल पहले जैसे दिखावे भर की रानी हूं। विश्वास करते-करते अब तो बूढ़ी हो गई।"

मुंजाल इस चोट से दबे-स्वर में बोला, "तेरह साल पहले तो सारा मंडल भी आपका न था, और आज बड़ी-बड़ी जागीरों और मंडलों को छोड़कर सब जगह आपकी आन चल रही है। चन्द्रावती की तैयार की हुई सेना भी अगर कुछ न कर सकी तो आपके कारण।"

"तुम्हारी ये शिकायतें सुन-सुन कर मैं थक गयी हूँ।"

"अभी और थकेंगी।"

"मैं आश्रित होकर नहीं रह सकती। तुम्हारे अन्नदाता भी भले हैं जिन्होंने सारा जीवन नाम-मात्र अधिकार भोगकर बिता दिया। किन्तु मुझसे ऐसा कैसे हो ?"

"मैं ऐसा जीवन बिताने को कब कहता हूं। परन्तु एक से दूसरे को लड़ा कर सत्ता क्यों जमायी जाय। जागीरदारों और मंडलाधिकारियों की सत्ता को निर्बल बनाने के लिए राजपूतों को नीचा दिखाकर श्रावकों को श्रेष्ठता क्यों दी जाये। क्या इस तरह पाटन शक्तिशाली बनेगा ? यह तो स्वप्न है देवी !"

"मुझे तो तुम्हारा ही स्वप्न मालूम होता है। जब तक यह दोनों पक्ष एक दूसरे को निर्बल न कर देंगे, तब तक राजा को कौन पूछता है ?"

"निर्बलता पर राज्य स्थापित करना रौंडों का खेल है। आपको मालूम है, इसका क्या परिणाम होगा ? हमारे श्रावकों ने ऊबकर चन्द्रावती की स्थापना की और उनका वश चले तो यहां भी राजा को अलग करके महाजन राज्य स्थापित कर दें। आज तक वे यह नहीं कर सके, केवल मेरे प्रताप से।" महामन्त्री ने घमण्ड से कहा।

रानी ने जरा व्यंग से कहा—

"महाजन राज्य स्थापित हो जाये तो नगरसेठ तो तुम्हीं होगे। तुम्हारे मौसा विमल मंत्री ने चन्द्रावती का राज्य किया, तुम यहाँ करना।"

"मेरे राज्य न करने का कारण आप जानती हैं।"

कुछ देर दोनों मौन रहे।

मुंजाल ने फिर कहा, "और, दूसरा कारण यह है कि जहाँ-तहाँ चन्द्रावती बसाने से कोई लाभ नहीं। सत्ता सारे देश की होनी चाहिए, केवल व्यापारियों की नहीं।"

"तब ?"

"आपने तेरह वर्ष विश्वास रखा, थोड़ा और रखिए। मुझे अपने ढंग से काम करने दीजिये। जयदेव समस्त गुजरात का स्वामी बनेगा।"

"परन्तु, इस मंडलेश्वर का क्या होगा ?"

"वह अपने आप सीधा हो जायेगा। कोई तूफान उठ खड़ा हुआ तो उसका हाथ सबल हो उठेगा। सारे गाँवों के राजपूत उसकी तरफ हो जायेंगे। मैं तदबीर से उसे निर्बल बना देना चाहता हूँ और सब लोगों को उसका साथ छोड़कर पाटन-नरेश के सच्चे सेवक बना देना चाहता हूँ।'

किन्तु यह सरल नहीं है।"

"बहुत सरल है। यदि हम अपनी राजनीति को लोगों के लिए लाभदायक बना सकें तो सहज ही मालवराज से युद्ध ठान सकेंगे। पाँच वर्षों में ही सारा देश आपका है। हम में उत्साह है शक्ति है, किन्तु हम उनका उचित प्रदर्शन नहीं कर पाते।"

"मेहता, मुझे यह सब स्वप्न प्रतीत होता है।"

"यदि आप एक बात मानें तो इन स्वप्नों को कल प्रातःकाल ही सत्य करके दिखा सकता हूँ।"

"वह क्या ?"

"हमारे यहाँ विमलशाह के पश्चात् कोई दंडनायक नियुक्त नहीं हुआ। देवप्रसाद के प्रयत्नों के बावजूद भी अन्नदाता ने उसे यह पद नहीं दिया। आप मुझे दंडनायक बनाइये और फिर देखिए।"

"यह पद का लोभ तुम्हें कब से हो गया, मुंजाल ! तुम्हें कमी किस बात

की है ?"

मुंजाल कुछ करुणापूर्ण स्वर में बोला, "कमी तो बहुत कुछ है। यों मुझे पदों की कमी नहीं है। कमी सिर्फ यह है कि इस राज्य में किसी एक के हाथ राज्य सत्ता नहीं रहती। सब मनमानी करते हैं।"

"तुम्हारी सत्ता क्या कम है, जो ऐसा कह रहे हो।"

"अवश्य कम है, क्योंकि इस राज्य में एकतन्त्रा नहीं है। सेनापति देवप्रसाद हमारा शत्रु है; मन्त्री शान्तिचन्द्र और कोषाध्यक्ष चन्द्रावती के पक्ष के हैं। उदयमती का भाई मदनपाल कर्णावती का दुर्गपाल अर्थात् एक तरह से वहाँ का राजा और मैं पाटन का दुर्गपाल हूं; अर्थात्—"

"तुम यहाँ के राजा।"

"नहीं, मुझसे कुछ नहीं होता; कारण कि आपका रास्ता दिनों-दिन भिन्न होता जा रहा है। शान्तिचन्द्र का तो है ही अतएव मैं केवल यहाँ शोभा के लिए हूँ।"

"फिर भी तुम सच्चा राज्य करते हो!"

"कारण कि और किसी में बुद्धि नहीं है। यदि ये सब किसी एक के अधिकार में रहें, और वह पाटन का दुर्गपाल हो तो निश्चय ही आपके राज्य की सत्ता बढ़ जाये।"

"या घट जाय।"

कुछ दुःख से मुंजाल ने कहा, "यही दुःख है, मेरे इतने दुःख उठाने पर भी, इतनी सेवा करके भी आपको सन्देह है कि यदि मुझे अधिकार सौंप देंगी तो मैं इसका दुरुपयोग करूँगा।"

"नहीं मेहता, ऐसा कुछ नहीं है।"

"विचार लीजिए, अभी समय है। लेकिन अन्नदाता के प्राण निकल गये तो उसी क्षण आपको कोई कदम उठाना होगा। नहीं तो, सारे किये-कराये पर पानी पड़ जायेगा।"

"तब, चन्द्रावती ने जो सेना बुलायी है, उसका सेनापति कौन होगा?"

"यह बात सचमुच विचारणीय है। श्रावक के सिवाय वे किसी को मानेंगे नहीं और हमारी सत्ता की सारी कुंजी भी वही हैं। मेरे ख्याल से यदि

शान्तिचन्द्र को नियत किया जाय तो उचित होगा।"

"क्यों ?"

"वहाँ के लोग उसे अपना समझते हैं और वह बुजुर्ग भी है। सोलंकियों के प्रति उसकी राजभक्ति अटल है, वह आपकी आज्ञा अवश्य मानेगा।"

"फिलहाल तो ईश्वर से प्रार्थना है, ऐसा समय देर से आये।"

मुंजाल बोला, "देवी, सौभाग्य भाई ने एक यति को यहाँ भेजा है और लिखा है कि उन्हें राज-सेवा की इच्छा है। उससे अभी मिलना चाहेंगी या प्रातःकाल ?"

"कुछ पानीदार है ?"

"हाँ, चतुर तो जान पड़ता है और सौभाग्य भाई ने भी तारीफ लिखी है।"

"तब इसी समय मिलूंगी।"

"वह एक प्रकार से हमारे काम आयेगा। शान्तिचन्द्र और चन्द्रावती को हम उसके कारण वश में रख सकेंगे। एक डर है—कहीं वह चन्द्रावती का पैर यहाँ न ला जमाये।"

"मुझ पर विश्वास नहीं है, मुंजाल ?"

"है। किन्तु आपकी परस्पर टकरा देने की राजनीति में मेरी श्रद्धा नहीं है।"

"ऐसी बात नहीं। अच्छा जाओ यति को बुला लाओ। लेकिन एक बात है—देवप्रसाद यहीं है, उसे यहाँ लाकर रख लें। कहीं कोई उपद्रव न खड़ा हो।"

मुंजाल का चेहरा उतर गया, कपाल पर बल आ गये।

"किसे ?"

"रानी ने खिड़की की ओर संकेत किया, "उसे ही।"

मुंजाल की आँखें लाल हो आयीं, "देवी, मुझसे कुछ न पूछिये। जो आप का जी चाहे, करें।"

"इस यति को सौंप दूं ? यह अपरिचित है; अतः बिना सन्देह किये काम करेगा।"

"जैसी इच्छा हो, कीजिए।" कहकर वह तेजी से द्वार की ओर जाकर आनन्दसूरि को ले आया।

: ७ :

आनन्दसूरि ने 'धर्म लाभ' दिया और मीनलदेवी ने प्रणाम किया। मुंजाल ने कहा, "सौभाग्य भाई ने इन्हीं को भेजा है। मैं चलकर जरा अन्नदाता की तबियत मालूम कर आऊं।"

"जाओ। मैं भी अभी आती हूं।"

एक तीक्ष्ण दृष्टि यति की ओर डाल मुंजाल चले गये।

आनन्दसूरि बोले, "देवी, आज मेरा अहोभाग्य है। आपको देखने की इच्छा से जगह-जगह भटकता रहा। मैं आज कृतार्थ हो गया।"

"आपका नाम ?"

"आनन्दसूरि।"

"यहाँ आने का आपका प्रयोजन ?"

"सच कहूँ, महारानी ?" यति की आंखों में प्रकाश भरने लगा। पहले का क्षोभ दूर हो गया। कुछ प्रभाव के साथ उसने कहा, "मैंने अपना जीवन जिन भगवान् की सेवा में अर्पण कर दिया है।"

"तो अब राजनीति में पड़ने का कारण ?"

"धर्म के अन्तर्गत राजनीति आ जाती है। धर्म और जीवन अभिन्न हैं और इस भिन्नता के कारण ही हमारी उन्नति नहीं हो सकी है।"

रानी कुछ गर्व से बोली, "मुझे उपदेश दे रहे हैं, यति जी।"

"हाँ, क्यों न दूं ? तुम्हारे से तो गजनी के यवन ज्यादा बुद्धिमान हैं। उनके शास्त्रों में संसार का गला घोटना तक लिखा है।"

"परन्तु मुंजाल मन्त्री आपके इस मत से सहमत नहीं हैं।"

"इसी से वे गलतियां करते हैं।"

"तो आपका क्या विचार है ?"

"मंत्री ने चन्द्रावती की शासन विधि के सम्बन्ध में ज्यादा बात करने के लिए मना कर दिया है और आप चिन्ता कर रही है। इस विषय में फिर बातें करेंगे।"

"नहीं। मैं अभी सुनना चाहती हूं। पाटन की इस टूटी हुई दशा में आप जैसे विद्वान पुरुष की राय मेरे लिए बहुत महत्त्व की सिद्ध होगी।"

यति ने धीरे-धीरे विष फैलाया, "मुंजाल के सिवाय और किसी की राय काम की नहीं हो सकती। लेकिन मैं यह मानता हूँ कि एक धर्म के बिना एकता नहीं, एक धर्म के प्रभाव बिना प्रजा नहीं और उसके उत्साह के बिना वीरता नहीं।"

"आप इस समय पाटन के प्रधान होते तो क्या करते ?"

"यदि मेरा वश चले तो मैं जैन धर्म को अपनी राजनीति का पहला मन्त्र बनाऊँ। उसके नाम पर उसके अनुयायियों में उत्साह और एकता भरूँ, उसकी रक्षा के लिए लोगों में वीरता को प्रेरित करूँ और उसके प्रचार के लिए देश-देश में जिन भगवान् का झंडा फहराऊँ।" कहकर धर्म के जोश में यति का मुख ज्वाजल्यमान हो गया।

"आपका कहना ठीक लगता है, किन्तु राजपूतों का क्या होगा ?"

"राजपूत शासन सत्ता और शौर्य के सेवक हैं और धर्म को प्रतिनिधि देखकर वे फौरन उसके अधीन हो जायेंगे।"

"महाराज बताते हैं कि उन्होंने अपने पिता से सुना था—गजनी के बादशाह ने नव खण्ड जीत कर सारी दुनियां में अपनी आन फैलायी।"

"कारण वही है। वह केवल राजा ही नहीं, धर्मवीर भी है। जब मैं उत्तर की ओर गया था तो मुझे उसका एक धर्मगुरु मिला था। उसने मुझे कई सिद्धान्त समझाए थे। यवनों ने केवल यही सीखा है—धर्म के बिना राजा नहीं हो सकता।"

आप ज्ञात या अज्ञात रूप से मेरी आन्तरिक इच्छा के अनुकूल ही कह रहे हैं आनन्दसूरिजी। परन्तु श्रावकों की सत्ता होने पर वे विमलशाह की तरह राजा को तिरस्कृत करके महाजनों की ही सत्ता स्थापित कर देंगे और पाटन दूसरा चन्द्रावती बन जायेगा।"

"सच बताऊँ, रानीजी" यति ने एक अनोखी शान्ति के लहजे में कहा, तुम्हारा भय ठीक है। लेकिन अच्छी वस्तु ग्रहण करके बुरी वस्तु दूर की जा सकती है।"

"सो कैसे ?"

"वह रास्ता शायद आपको न भाये।"

"पहले आप बताइये तो सही।"

"इसे अलग कर दीजिए।"

"किसे ?" रानी ने यति पर तीक्ष्ण दृष्टि डालकर कहा, "मुंजाल को ? शायद आपको ज्ञान नहीं, मुंजाल मेरा दाहिना हाथ है। मेरे चन्द्रपुर में रहते समय सर्वप्रथम मुंजाल ने ही मुझे गुजरात की ओर आकर्षित किया; महाराज के साथ विवाह का सुभीता कर दिया और उनकी अप्रसन्नता में इसी ने हमारी सुलह करवाई। आज तेरह साल से मेरे पक्ष में है।"

"ये बातें आपका गौरव प्रकट कर रही हैं। यों मुंजाल राजभक्त है, चतुर है किन्तु उसकी राजनीति ओछी बुद्धि की है। यदि वह सीधे से मान जाय तो अति उत्तम और यदि ना भी करे तो भी कुछ समय के लिए मुख्य अधिकार आपको अपने हाथ में ले लेने चाहिये। मुंजाल मन्त्री की दृष्टि से देखता है, राजा की दृष्टि से नहीं।"

"यति जी आप बहुत वाचाल हैं। एक परदेशी के साथ पहली बार मैंने आज निजी बातें की हैं। किन्तु आपकी बातों की सत्यता पर मुझे भरोसा है।"

"मैं आपकी सेवा के लिए आया हूं और मुझे पूर्णतया स्वामीभक्त समझिये।"

"जानते हैं मुंजाल अटल है। वह टूट सकता, मुड़ नहीं सकता।

"मोड़ना आता हो तो मुड़ सकते हैं।"

"कैसे ?"

"चन्द्रावती द्वारा भेजी गई सेना का सेनापति मुंजाल को बना दीजिये। श्रावक गण उसे ठिकाने रखेंगे। कुशल शान्तिपाल को पाटन का दुर्गपाल बनाइये और सम्भव हो तो दंडनायक भी।"

रानी पशोपेश में पड़ गई थी। बोली, "अच्छा, मैं सोचूंगी। कल प्रातः काल शान्तिचन्द्र को मेरे पास लेकर आइये।"

"अवश्य। मेरे योग्य कोई और कार्य हो तो मैं सर्वैव तैयार हूं।"

"एक काम और है, करोगे ?"

"कहिये। तैयार हूँ।"

नगर के बाहर "विमलशाह का स्थानक देखा है ?"

"हाँ, आते समय मैं वहीं रुका था।"

"वहाँ जाकर आचार्य जी से चुपके से कहियेगा, मीनलदेवी गोरी साध्वी को बुला रही हैं, और उसे डोली में बिठाकर पीछे की सीढ़ियों से ला मेरी दासी को सौंप दीजिये। हाँ, बात गुप्त ही रखियेगा।"

"मुझ पर विश्वास रखें। मैं जाता हूँ।" वह चल पड़ा। मीनलदेवी के कानों पर मुंजाल और यति के वाक्यों की ध्वनि गूँज रही थी : सोचा, उसने, "अब क्या किया जाय ?"

: ८ :

बेचारा मंडलाधिकारी अभी तक वाचस्पति की प्रतीक्षा करता हुआ झरोखे में टहल रहा था। कभी वह वाचस्पति को कोसता; कभी लीलाधर वैद्य को; कभी मुंजाल को तो कभी मीनलदेवी को और अन्त में अपने भाग्य को। अचानक उसे नींद का झोंका आने लगा। स्वप्न में उसने एक सुन्दर मुख देखा जिससे वह निराशा और चिन्तित हो गया। उसे अपना हृदय बैठा-सा जान पड़ा। यों ही सारी रात बीत गयी और पौ फटने लगी। इस मधुर और धीमे प्रकाश में वाचस्पति ने आकर मंडलाधिकारी के कन्धे पर हाथ रखा। चौंककर वह जाग पड़ा और खड़ा होकर इधर-उधर देखने लगा।

"वाचस्पति, क्या समय हो गया ?"

"हाँ, कुछ देर हो गयी।" वाचस्पति बोला। किन्तु मंडलाधिकारी मौन रहा। वह झरोखे पर ही झुका रहा। उसकी पुतलियाँ बाहर को निकली जा रही थीं; अंग-कांप रहे थे और कपोलों पर पसीना आया हुआ था।

"क्या हो गया मंडलाधिकारी ?"

"देखो, देखो, वह क्या दिखलायी पड़ रहा है ?" कहते हुए वाचस्पति

का हाथ जोर से दबाया।

वाचस्पति को अंधेरे में कुछ दिखाई नहीं दिया। बोला वह, "मुझे कुछ नहीं दीखता।"

"वह कोई स्त्री जैसी। देखो, देखो, वो जा रही है ; वो गयी···गयी···"

"स्वामी, मेरी दृष्टि कुछ क्षीण है।"

"आज यह दूसरी बार है। ठहरो, मैं मालूम कर आऊँ।"

"अब कहाँ जायेंगे ? दूसरे, इस समय महाराज जरा होश में हैं, उनसे मिलेंगे नहीं ? फिर वह अचेत हो जायेंगे।"

"क्या करूँ वाचस्पति ?" गहरे विचारों में खोकर मंडलाधिकारी बोले, "मेरा मन ठिकाने नहीं है।"

"लेकिन किसी स्त्री के जाने से आप इतना डर क्यों गये ?"

"पंडित तुम्हें ज्ञान नहीं। आज पन्द्रह वर्षों के बाद मैंने उसे दुबारा देखा।"

"किसे ?"

काँपते स्वर में मंडलेश्वर ने कहा, "अपनी प्रियतमा को, जो वर्षों पहले मर चुकी है लेकिन जिसे मैं आज तक नहीं भूला हूँ।"

"यह भ्रम होगा महाराज।"

"भ्रम ? नहीं। अभी मेरे नेत्रों में प्रकाश है। मेरी बुद्धि जवान है।"

कुछ विचारते हुए वाचस्पति ने कहा, "तब क्या भूत था ? आप ऐसा समझते हैं ? शान्तम्, पापम्, शान्तम्, पापम्।"

"इसकी आवश्यकता नहीं है। मेरे ऊपर मृत्यु मँडरा रही है। एक मनुष्य ने आज यह कहा है कि गुजरात का एक श्रेष्ठ योद्धा अब अधिक दिन नहीं जियेगा। दो बार मेरी स्वर्गीय स्त्री भी यही चेतावनी दे गयी। लेकिन मुझे दु:ख नहीं है। जब मेरे नाम से बावन नगर और बारह मंडल त्रस्त होकर मरेंगे तब मैं मरूँगा। आओ, काका जी के पास चलें।" कहते हुए उसने दृढ़ता से पग बढ़ाये।

पाटन नरेश के निकट लीलाधर वैद्य या कोई अन्य व्यक्ति औषधि तैयार कर रहे थे। लीलाधर मंडलाधिकारी को देख और पास आ गया। कहा उसने, कितनी देर लगा दी आपने ? बड़ी कठिनाई से बेहोशी को रोका

। यदि इस बार बेहोश हुए तो सब समाप्त समझिये।" कहते हुए उसने संकेत से अन्य सब को बाहर कर दिया और स्वयं दावा घोटने लगा।

"काका जी ! काका जी ! मुझे पहचानते हैं ?"

क्षीण, किन्तु आज भी सुन्दर दीखने वाले कर्णदेव ने कठिनता से नेत्र खोलते हुए कहा, "कौन ? देवा ?"

"हाँ, काका जी। कुछ कहना चाहते हैं ?"

राजा अपनी निस्तेज आँखों को देवप्रसाद पर टिकाते हुए बोले, "उ···प···द्र···व मचाने को···"

"नहीं काका जी। यदि मैंने कभी कोई उपद्रव मचाया भी तो दूसरे के अत्याचार के कारण। मेरा वश चलेगा तो सारा झगड़ा निबटा दूँगा।" फिर कान में जरा जोर से पूछा, "कुछ और कहना चाहते हैं ?"

"ज···य दे···व···"

"जयदेव को जरा भी आंच नहीं आने दूंगा, वह मेरा भाई है।"

"वचन···दो···"

"हाँ, वचन देता हूँ कि यदि कोई मेरा मान भंग न करना चाहेगा तो अवश्य ही मैं जयदेव का बाल भी बाँका न होने दूंगा।"

"देवा···क···री··· ब···आओ।"

देवप्रसाद निकट आ गया। बड़ी कठिनता से कर्णदेव ने कहा, "हं···ह··· सा जीवित है।"

देवाप्रसाद बुरी तरह चौंक पड़ा, "क्या ?···कहाँ ?"

"वि···वि···" कहते-कहते कर्णदेव का गला भर आया। उनकी आँखें देवप्रसाद के पीछे किसी वस्तु पर ठहर गयीं। देवप्रसाद ने मुड़कर देखा— तेजस्वी नेत्रों में भयकरता लिये मीनलदेवी राजा की ओर देख रही थी। उसकी आँखों में शान्ति, किन्तु तिरस्कार था। इस अवस्था में भी राजा एक बार उससे भयभीत हो गये। राजा की आँखें फटने लगीं।

शान्ति से रानी बोली, "वैद्यराज, देखिए, राजा फिर अचेत हो रहे हैं क्या ?"

देवप्रसाद को की राजा हंसा के जीवित रहने की बात ने विकल कर दिया

था। उसकी हंस जीवित है। वह अपनी सुध-बुध भूल गया। बड़ी कठिनाई से वह अपने को वश में रखकर रानी से बोला, "काकी जी, क्या यह बात सत्य है ?"

"क्या ?"

"हंसा जीवित है ?"

"मुझे नहीं मालूम।"

"आज मुझे वह दो बार दीखी है और अभी-अभी काका जी ने भी यही कहा है।"

मीनलदेवी ने कुछ व्यंग से कहा, "राजा जी की इस अवस्था की बात का तो तुम ही विश्वास कर सकते हो। मेरा चित्त इस समय ठिकाने नहीं है, इस सम्बन्ध में फिर बातें करूँगी।"

देवप्रसाद का चित्त भी ठिकाने नहीं था। उसने कहा, "ठीक यही दशा मेरी है। हंसा तुम्हारे महल में है।"

"कौन कहता है।"

"मैंने अपनी आँखों से उसे देखा है।"

"अज्ञात रूप से रानी चौंक पड़ी, "यह तुम्हारा भ्रम है। इस समय तुम्हें राज्य की चिन्ता करनी चाहिए। व्यर्थ की बातें करना अच्छा नहीं है।"

"काकी जी, राज्य की तो चिन्ता क्या रखूं ? तुम्हारे सलाहकारों ने तुम्हें भरमा रखा है, तुम मेरी कहाँ सुनोगी। काकाजी को मैंने अभी भाई की सेवा करने का वचन दिया है।"

देवप्रसाद का भोलापन देख रानी किंचित मुस्करायी, "लेकिन मैंने कब मना किया है। तुम तो कुछ-न-कुछ बहाना खोज लेते हो।"

देवप्रसाद के विचारों को जानने का रानी को यह अच्छा मौका मिला था।

"बहाना मैं खोजता हूं या तुम्हारे मंत्री ? काका जी, गयी सो गयी, अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। जो कहो, मैं करने को तैयार हूं।" भोले मंडलाधिकारी ने कहा।

"तुम्हारी ओर से ही विलम्ब है, मैंने तो मना नहीं किया।"

"मेरी ओर से ?"

"बस इतना ही चाहती हूँ, मेरा जयदेव एकछत्र राज्य करें।"

"काकी जी, पाटन का स्वामी सदा एकछत्र राज्य करता है।"

"केवल बातों में। सच तो यह है कि पाटन के बाहर कुत्ता भी उसकी ओर नहीं देखता।"

देवप्रसाद गर्व से बोला, "एकछत्र राज्य करना हो तो मुझे दंडनायक बना दो। कल सुबह ही सारा भारत पाटन के अंतर्गत कर दूंगा।"

"सोरठ और हालार की तो पहले चिन्ता करो।"

"अर्थात् ?" देवप्रसाद मीनल की चालाकी समझ गया था।

"अर्थात् यह कि जहाँ बावन नगर और बारह मंडल अपनी-अपनी मनमानी करते हैं, वहाँ पाटन का भाव कौन पूछता है ?"

मीनलदेवी की बात समझ देवप्रसाद बोला, "क्या तुम उन सब को कलम कर देना चाहती हो ?"

"हाँ ! बिना इनके मेरा लड़का एकछत्र राज्य नहीं कर सकता।"

"यानी, सारे मंडलाधिकारी तुम्हारे दास बन जायें। सिंह अपनी मांदें छोड़कर तुम्हारे आगे गीदड़ बन जायें।"

"नहीं, बल्कि राजा से शत्रुता छोड़ उसके साथ सहयोग करें।"

"और इसके लिए मैं देहस्थली तुम्हें सौंप दूं; अपनी सेना तुम्हें दे दं और अपने दादा के सहयोगी वीरों की स्वतन्त्रता के विरुद्ध विद्रोह करूं ?"

मीनलदेवी कुछ बोली नहीं। लीलाधर वैद्य राजा का उपचार कर रहा था।

मंडलाधिकारी क्रूर हँसी हंसा, "और मुझे इस नीचता और विद्रोह का पुरस्कार क्या दोगी ?"

मीनलदेवी शान्ति से कहने लगी, "तुम जैसे सोलंकी वीरों के लिए दंडनायक का पद छोटा नहीं है।"

"अपना देश, अपना अधिकार अपनी स्वतन्त्रता, तुम्हारे इस पद के लिए खो दूं ?"

कहते-कहते देवप्रसाद के नेत्र भयानक हो उठे। छाती पर हाथ मारकर वह बोला, "काकीजी, अपनी बुद्धि को अपने पास रखो। मंडलाधिकारी के

शरीर में जब तक प्राण है, जब तक कोई माँ का लाल राजपूत वीरों को अधीन नहीं कर सकता। परम्परा से चली आ रही राजनीति को कौन बदलता है, मैं देखता हूँ।"

"मैं भी देखूंगी, गुजरात में कितना पानी है?" रानी ने घमंड से कहा।

"पछताओगी। मिथ्या पद के लालच के यदि किसी से पूर्वजों की आन छोड़ी, तो वह उसे मँहगी पड़ेगी।"

मंडलाधिकारी, पाटन की रानी को यों ही कोई नहीं डरा सकता।"

"तब मैं भी देखूंगा कि भीमदेव के पोते को कौन पिंजरे में बन्द करता है?" मंडलाधिकारी मूछों पर ताव देने लगा और फिर जरा नरम होकर बोला, "अब भी समय है काकीजी। झगड़े समाप्त कर कुछ सन्धि की बात कर लो।"

"इसके लिए मैं देहस्थली नहीं जाऊँगी, निश्चिन्त रहो।" और वह राजा की ओर गयी।

देवप्रसाद भी क्रोधित होकर आवेश में वहाँ से चला गया।

लीलाधर वैद्य रानी की व्याकुलता देखकर बोला, "इस शेर को पिंजरे में बन्द करना आसान नहीं, महारानी जी।"

"समय आने पर वह भी आसान हो जायेगा, वैद्यराज।"

"जैसा चाहें, कीजिए। किन्तु ध्यान रखिए, पाटन की राजगद्दी पर कोई धब्बा न लगे।"

मीनलदेवी चुप रही।

: ६ :

भारी मन से देवप्रसाद घर आया। कुछ समय के लिए वह राज्य के सब झगड़ों को भूल गया। उसके दिमाग में यही शब्द गूंज रहे थे कि "हंसा जीवित है।" एक तो ज्यादा विचार करने की शक्ति उसकी थी ही नहीं। ऊपर से जितनी थी सब नष्ट हो गई थी। वह क्या करे? उसको कुछ सूझ नहीं रहा था। कुछ करने के लिए उसके मन में कितने ही विचार उत्पन्न हुए। कुछ पुरानी आशाएँ तथा संकल्प फिर हरे हो गये। पहले तो उसने सोचा कि

राजा की बातों पर और अपनी आँखों पर विश्वास करे या न करे ? एक तरह से राजनीति के इस एक मौके पर हँसा के विचारों ने उसके साहस को त्रस्त कर दिया और बुद्धि की तेज धार कुछ हलकी पड़ गई।

वह गुप्त रूप से पाटन में आया था। इसलिए चुपचाप अपने पिछले दरवाजे पर गया।"

"त्रिभुवन कहाँ हैं ? जोरावर !"

"ऊपर टहल रहे हैं, महाराज।"

"सारे दिन की दौड़-धूप से थक गया होगा ? सोया नहीं ?"

"जी नहीं !"

"अच्छा यदि वल्लभ आए तो उसको ऊपर भेज देना लेकिन किसी से कहना मत।"

"जो आज्ञा।"

मंडलाधिकारी ऊपर गया। उसके हृदय मे त्रिभुवन ही एक विश्राम स्थान था। लेकिन वह भी उदास था।

"सोये नहीं बेटा ?"

"जी, नींद नहीं आयी।"

त्रिभुवन के कन्धे पर हाथ रखकर मंडलाधिकारी ने कहा, "बेटा, अभी तुम्हें चिन्ता में पड़ने के लिए काफी देर है।"

"पिताजी यह अपने हाथ की वात नहीं है। लेकिन इस बात को छोड़ दीजिए। आप वहाँ गये थे, क्या हुआ ?"

मंडलाधिकारी बोले, "क्या बतलाऊँ ? दुःखों की सीमा नहीं है—" कहते-कहते मंडलाधिकारी के नेत्र सजल हो गये।

त्रिभुवन ने बड़ी सहानुभूति से पिता को देखा और बोला—"आप मुझे बच्चा समझकर कुछ नहीं बतलाते। हमेशा जितनी मुझसे हो सके उतनी सहायता करने की तबीयत करती है। लेकिन अभी शायद मुझ पर विश्वास नहीं करते।"

"विश्वास की बात नहीं; पर तुम्हारे कोमल दिल पर कितना बोझ डालूं ?

"परन्तु पिताजी, सोलह वर्ष का सोलंकी सारी दुनिया के लिए भारी होता है।"

मंडलाधिकारी ने गर्व से कहा, "बेटा मैं जानता हूँ, मेरी आँखों के सामने तुम बड़े हुए हो, और तुमने मेरी सारी आशाएँ पूरी की हैं।"

"तब किसलिए आप मुझे अपने दुःख का भागी नहीं बनाते ?"

"बनाऊँ ? बन सकोगे ? परन्तु क्या लाभ ? अच्छा, तुम इस राज्य के दाव-पेचों को जानते हो ?"

"कुछ जानता हूँ, लेकिन इसका कारण समझ में नहीं आता।"

"इसका इतिहास बहुत पुराना है। मैंने इसलिए तुमसे नहीं कहा कि तुम्हारा मन न दुखे। लेकिन आज कहता हूं, सुन लो। भीमदेव की तीन स्त्रियाँ थीं। पहली स्त्री छोटी अवस्था में ही मर गई और उसके पहले मूलराजदेव की मृत्यु का हाल तो जानते ही हो। दूसरी का नाम था बकुलादेवी—वणिक कन्या, पिताजी की माँ, और तीसरी का नाम था उदयामती, जो कि काकाजी की माँ थी।"

"हाँ,परन्तु तुम नहीं जानते कि मेरे पिता क्षेमराज, बड़े पूज्य होते हुए भी दादाजी के साथ वानप्रस्थ हो गये। जानते हो क्यों ? वैराग्य भाव की अपेक्षा उनमें व्यवहार-कुशलता अधिक थी। उन्होंने देखा कि यदि वे गद्दी पर बैठेंगे तो गुजरात के सामन्त कट मरेंगे।"

"सो कैसे ?"

"जब मुसलमान बादशाह ने पाटन पर चढ़ाई की, और कुछ महीने अपना अधिकार यहाँ जमाए रखा तो देश बरबाद हो गया। सामन्त छिपते-फिरते थे,और धनी लोग स्त्रियों तथा धन की रक्षा करते रहते थे। आखिर भीमदेव कच्छ से आये। उन्होंने सामन्तों का साहस बँधाकर उन्हें एकत्रित किया। इधर श्रावक भी विदेशियों से तंग आकर दादाजी की ओर झुके। दादाजी की सेना पाटन पर आ पहुँची और बादशाह के सहायक भाग खड़े हुए।"

"पाटन में फिर सोलंकियों का अधिकार हो गया, लेकिन तभी दुर्भाग्य के काले बादल छा गये ?"

"कैसे ?"

"मुंजाल के मौसा और पाटन के नगर सेठ विमलशाह का सिर फिर गया। वह अपने को दादाजी से भी बड़ा योद्धा समझने लगा।"

"किन्तु, विमल मन्त्री की वीरता के विषय में तो मैंने बहुत कुछ सुना है। चन्द्रावती उन्होंने तो बसायी थी ?"

"हाँ, परन्तु इसका मूल कारण था कि स्वार्थी वणिकों को हमारा राज्य अच्छा नहीं लगा। इन्हें तो सब जगह महाजन ही चाहिए ?"

"लेकिन दादाजी ने यह कैसे सह लिया ?"

"करते क्या ? राज्य की इस बुरी दशा में श्रावकों के अलावा कहीं और से धन नहीं मिल सकता था।"

"सामन्त लोग उस समय क्या कर रहे थे ?"

"दादाजी ही गलती कर रहे थे। सामन्तों पर अधिकार जमाकर उन्होंने उन्हें नाराज कर दिया था। पिताजी ने सोचा, अगर वे गद्दी पर बैठेंगे तो उसी सामन्त काकाजी का पक्ष लेंगे और गुजरात में दंगा मच जायेगा। उन्होंने वानप्रस्थ जाना ज्यादा ठीक समझा। परन्तु काका कर्णदेव उनसे भी कमजोर निकले। प्रारम्भ में वे मेरी काफी सलाह लेते थे, परन्तु दुर्भाग्यवश मीनलदेवी के आने के बाद वे श्रावक मंत्रियों के हाथ की कठपुतली बन गये। नगर सेठ मुंजाल के प्रभाव से सामन्तों की शक्ति कम की जाने लगी। इस समय मैं ही उनमें बाधक हूँ। हमारा मंडल सबसे बड़ा और स्वतंत्र है। सामन्तों की स्वतंत्रता आज मेरे ही कारण है। ये लोग मुझे आधीन करना चाहते हैं, लेकिन शायद इन्हें ज्ञात नहीं है, जब तक मंडलाधिकारी जीवित है, कोई मेरी देहस्थली या मंडल को छेड़ने का साहस नहीं कर सकता।"

"ये लोग क्या चाहते हैं ?"

"काकाजी के स्वर्गवासी होने के बाद ही इनकी चाल मालूम होगी। आज तक मैं देहस्थली में पड़ा रहा, केवल काकाजी की वजह से और उनके रहते, पाटन का स्वामी मेरे लिए परमेश्वर तुल्य है।"

"दुःख न कीजिए, पिताजी। आपने देहस्थली में वल्लभसेन को सेना मेरल की सीमा पर लाने को कह दिया है, फिर चिन्ता क्या ? आपके मुख से एक शब्द निकलते ही गुजरात के वीर खड़े हो जायेंगे और मीनलदेवी अपने

आप सीधी हो जायेंगी।"

मुख का पसीना पोंछते हुए मण्डलाधिकारी ने कहा, "यह मैं जानता हूँ और यह हिसाब लगाकर ही आया हूं। किन्तु, यहां एक दुःख पैदा हो गया है।"

"वह क्या ?" आतुरता से त्रिभुवन ने पूछा।

भारी हृदय से देवप्रसाद ने कहा, "वह दुःख है अन्तर का, जो सेना या शक्ति से दूर नहीं हो सकता। फिर बेटे के कंधे पर हाथ रखकर बोला, "तुम्हें मालूम है न, तुम्हारी माता कौन थीं;"

"जी हाँ। नगरसेठ मुंजाल की बहिन।"

"लेकिन हमारा विवाह विचित्र ढंग से हुआ। उसका भाई और मां विवाह के विरुद्ध थे। बिना किसी की राय के उसे देहस्थली लाकर मैंने उससे विवाह कर लिया। हम बहुत सुखी थे।" कहते-कहते उस सुख की याद में वे विकल होने लगे। उन्होंने फिर कहना शुरू किया, "परन्तु सभी श्रावक मुझसे जलते थे। मैंने उन्हें सताया था। वे इसका बदला लेने की ताक में थे। एक दिन मैं शिकार से लौटकर आया तो देखा, हंसा का कहीं पता नहीं है। शत्रुओं ने मेरी लक्ष्मी को लूट लिया था।"

"आपने खोज क्यों नहीं की ?"

"क्यों नहीं की। काकाजी से मिला, तुम्हारे मामा से मिला। सब मुकर गये। धीरे-धीरे यह अफवाह फैलने लगी कि मेरी सुकुमार प्रतिमा को चांडालों ने मार डाला।"

"परन्तु इसमें बुराई क्या थी ? बकुलादेवी ने भी तो दादाजी से विवाह किया था।"

"उस समय की बात और थी। तब श्रावकों का सत्ता निर्बल थी। अब वे शक्तिशाली हो गये हैं और फिर मैं उनका दुश्मन ठहरा।"

'परन्तु पिताजी मुझे यह बात मालूम नहीं। मैं तो यही समझता था कि दैव-कोप से ही माता जी संसार से उठ गयी हैं।"

निश्चल सांस लेकर देवप्रसाद ने कहा, "यह दैव का अभिनय तुम्हारे मामा मुंजाल ने ही किया था।"

"चिन्ता न कीजिए। मुंजाल के लिए हम दैव हैं। हमारा कोप उसे मँहगा पड़ेगा।"

"पर बेटा बात यहीं समाप्त नहीं हो जाती।"

"कैसे ?" कुछ आश्चर्य से त्रिभुवन ने पूछा।

"तुम्हारी माँ-हंसा-जीवित है।"

"क्या कह रहे हैं ?" त्रिभुवन पर जैसे बिजली गिर पड़ी। उसके हृदय में माता का प्यार तरंगें लेने लगा।

"सत्य कह रहा हूं, बेटा। मैंने उसे कल रात दो बार देखा। पहली बार जब हम पाटन आ रहे थे और दूसरी बार जब मैं झरोखे में खड़ा था। क्षण भर ही में उसकी स्वर्गीय छवि देख सका था कि वह अन्तर्धान हो गयी।"

"कोई भ्रम न हो ?"

"पहले मुझे भी यही लगा था, परन्तु काकाजी--"

"काका जी ?"

"हाँ, उन्होंने मरते समय मुझसे कहा कि हँसा जीवित है और तभी काकी न आ जाती तो शायद वे मुझे कुछ और बताते।"

"इसका अर्थ है कि इतने वर्षों से माताजी को कहीं छिपाकर रखा गया है।"

"यही बात है। अब इस दुःख को कैसे दूर किया जाय ?"

"यह आप मुझसे पूछते हैं ? माताजी को दिये इस कष्ट का बदला हम लेंगे। हम इन चांडालों को सबक सिखा देंगे।"

"पर यह कैसे मालूम हो कि वह कहाँ है ?"

"विमलशाह के उपाश्रय में या राजमहल में। आपने उधर ही तो देखा था ?"

"ठीक है। पर इतनी बड़ी जगह में खोजना आसान नहीं। मैंने मीनल काकी से भी पूछा था, पर वह तो तह ही नहीं देती।"

"क्या कहती हैं ?"

"वे इसे मेरा भ्रम बताती हैं पर सम्भव है, उन्हें भी न मालूम हो।"

"फिर कौन जानता है ?"

"मीनल काकी के आने से पहले ही मुंजाल हंसा को उड़ा ले गये थे, इसलिए सम्भव है, काकी को यह ज्ञात ही न होने दिया हो। परन्तु यह भी सम्भव नहीं कि काकाजी जाने और वे न जाने।"

"लेकिन काकी को कैसे समझाया जाय, पिताजी? आज्ञा हो तो एक उपाय कर देखूं। मुंजाल मामा से प्रार्थना करूं, शायद मान जायें। मैं अब तक उनसे मिला नहीं हूँ।"

"बेटा, तुम मामा के भँवर-जाल को नहीं समझते।"

"पर, कोशिश करने में हानि ही क्या है? ज्यादा से ज्यादा ना कह देंगे।"

"अच्छा जाओ, लेकिन अपनी आन का ख्याल रखना। काकी अभी मुझे लुभाने आयी थी, तुम भी बचकर रहना।"

"यह कहने की जरूरत नहीं। मैं अभी लौटकर आता हूं और त्रिभुवन ने जोरावर से कहा, "जरा मेरे और पिताजी के हाथ-मुंह धोने को पानी लाओ तो।"

नौकर पानी लेकर आया और धीरे से देवप्रसाद से बोला, "महाराज वल्लभसेन ने एक आदमी को भेजा है।"

"क्या कहता है?"

"खबर है कि वल्लभसेन मेरल आ पहुंचे।"

"ठीक है।" फिर बेटे से कहा, "यह भी अच्छी खबर है। जल्दी लौटकर आओ। फिर देखें क्या होता है?" इस समाचार को सुनकर मण्डलाधिकारी को आशा बंध गयी। उनका विचार मुंजाल की शक्ति को निर्बल कर देना था। वे सोचने लगे, मैं यहां रहूँ, मेरल में सेना लेकर वल्लभसेन रहे और देहस्थली की ध्वजा स्वतन्त्र होकर ही फहरती रहे तो विपक्षी दुर्बल पड़ जायेंगे। उनके विचार से इस समय किसी में उन्हें छेड़ने की हिम्मत न थी। दूसरे शब्दों में, कर्णदेव की मृत्यु के बाद, धांधली से पाटन में शासन करने को उन्होंने योजना बना रखी थी।

: १० :

सामा से मिलने जाते समय त्रिभुवन घबरा रहा था। मुंजाल की ख्याति, उसका रोब, त्रिभुवन को भयभीत कर रहे थे। फिर भी माँ के ऊपर किये, गये अत्याचार से घायल त्रिभुवन का निश्चय दृढ़ था। वह सब जानता था, यों अपने पिता के सामने वह अपने को नादान ही प्रकट करता था। चारण सामल तथा अन्य व्यक्तियों से उसे बहुत कुछ मालूम हो गया था। फिर भी उसने अपने आपको शांत किया, क्योंकि वह समझता था कि मुंजाल जैसे व्यक्ति के सामने तेज होना तिरस्कृत होने के बराबर है।

मुंजाल के गुमाश्तों के बैठने की जगह वह पहुँचा तो उसका बचपन, चेहरे पर सुन्दर रेखायें और आँखों का तेज देखकर सब की आँखें खुली रह गयीं और वे विचार में पड़ गये कि यह कौन है? यों, मुंजाल इस समय किसी से मिलता नहीं था, पर त्रिभुवन से इन्कार करने का किसी ने साहस नहीं किया।

"आपका नाम ?"

"त्रिभुवनपाल सोलंकी।"

एक व्यक्ति उसे देखकर चौंका और उसे पहचान कर कहा, "ठहरिये महाराज, मैं देखकर आता हूं, शायद मन्त्रीजी कार्य में व्यस्त हों।"

"हाँ, कह देना मैं उनकी फुरसत तक प्रतीक्षा करूँगा।"

गुमाश्ता अन्दर जाकर तुरन्त लौट आया, "आपको बुलाया है।"

त्रिभुवन हृदय की धड़कन को शान्त कर अन्दर जा पहुँचा। मुंजाल की भव्यता और तीक्ष्ण दृष्टि को वह तुरन्त पहचान गया। बोला, "मुझे पहचानते हैं, मामा जी ?"

मन्त्री के मुख के भाव बदल गये। चेहरे पर घबराहट आ गयी। अपने काँपते हाथ आगे बढ़ाकर उसने अशान्त स्वर में पूछा, "कौन? हंसा के त्रिभुवन ?"

त्रिभुवन प्रणाम कर गद्दी के नीचे बैठ गया।

"ऊपर बैठो भइया, ज़रा इधर देखो। तुम्हें अच्छी तरह देखना चाहता हूँ। यहाँ आओ।"

त्रिभुवन अचरज में पड़ गया—ये स्नेहशील व्यक्ति, उसका क्रूर समझा जाने वाला मामा है ?

कुछ देर दोनों चुप रहे।

"मैंने तुम्हें एक लम्बे अरसे के बाद देखा है।"

"जी नहीं शायद पहली बार ही देखा है।"

त्रिभुवन की बात से मन्त्री थोड़ा चौकन्ना हो गया। साथ ही त्रिभुवन को लगा उसने ये व्यंग वाक्य बोलकर कुछ भूल की है।

मन्त्री ने गिरती आवाज़ में पूछा, "क्यों बेटा, कैसे आये ?"

त्रिभुवन सोचने लगा, बात कैसे शुरू की जाये। तब बोला, "एक भीख माँगने आया हूँ।"

"भीख !" मुंजाल हँसा, "मेरी बहन का बेटा मेरे जीते जी भीख माँगे।"

त्रिभुवन गिड़गिड़ाया, "हाँ मामाजी, भीख समझो या कुछ भी, पर मुझे एक चीज दीजिए।"

"क्या ?"

"मेरी माँ।"

कोई और होता तो चौंक उठता, लेकिन मुंजाल ने सिवाय अचरज के कोई और भाव नहीं प्रकट किया।

"तुम कह क्या रहे हो त्रिभुवन ?"

"सच कह रहा हूँ मामाजी। सत्रह वर्ष तक मुझे अपना जीवन बड़ा फीका लगता रहा है। आज मुझे उस फ़ीकेपन का कारण मालूम हो गया है। मैं अब अपनी माँ के बिना नहीं रह सकता। मेरी माँ मुझे लौटा दीजिए।"

'बेटा तुम पागल हो गये हो ? तुम्हारी माँ का तो स्वर्गवास हुए···"

"मामाजी, आप भी मुझे धोखा देंगे। मेरी माँ जिन्दा है···"

"किसने कहा ?" बाहर से शान्त दीखते हुए मुंजाल का दिमाग अन्दर बहुत फुर्ती से काम कर रहा था।

"मैं कहता हूँ। देखने वाले ने उन्हें शरीर से देखा है, और कहने वाले ने बिल्कुल सच कहा है।"

'किसने देखा ? किसने कहा ?"

त्रिभुवन की आवाज भर आयी, "मामाजी आप मुझसे ऐसा वर्त्ताव करेंगे ! बचपन से आज तक मैंने माँ की गोद का सुख नहीं जाना। माँ की मीठी बोली नहीं सुनी। आप आदमी नहीं पत्थर हैं। आपको माँ के लिए कलपते बच्चे पर दया नहीं आती ? माँ किसलिए गयी और किसने उन्हें सताया, मैं यह नहीं जानना चाहता। लेकिन इस समय माँ मुझे देखे तो आप के कितना आशीष दे। लोग उनके छः महीने के बच्चे को उनके पास से उठा ले गये। बच्चा आज बड़ा हो गया, लेकिन माँ ने आज तक उसे नहीं देखा। आज आप दया कर अपनी बहन और भानजे की भेंट नहीं करा देंगे, मामा जी ?" त्रिभुवन की आँखों में आँसू बह रहे थे।

मंत्री अचल बैठा था। हाथों की बँधी मुट्ठियों के नाखून माँस में जैसे गड़े जा रहे थे, "बेटा, यह सब झूठ है। तुम रोओ मत। मैं भगवान् नहीं हूँ कि असम्भव को भी सम्भव कर दूं।"

"लेकिन आपका नाम मुंजाल है; गुजरात की दसों दिशाओं में आपकी कीर्ति फैली है। अपने प्रताप से आप जो चाहें कर सकते हैं।"

"यह तुम्हारी भूल है, बेटा ! अभी तुम्हें बहुत-सी बात सीखने में समय लगेगा। अगर मैं बहन को जीवित कर सकता तो क्या यों बैठा रहता ?"

"तो क्या आपका यही कहना है कि वो मर गयीं ? या वो ऐसी जगह हैं जो आपकी शक्ति से बाहर है ?"

'अब वो कैसे मिल सकती है ?" मुंजाल का स्वर दुःखपूर्ण था।

"आप कृपया यह बताइये, क्या माँ सचमुच मर गयी ?"

"हाँ। जो बहन का भाग्य था, वही हुआ। पर अब क्या भनजा मेरा कहा मानेगा ?"

त्रिभुवन सोचने लगा, इन्हें क्या बताऊँ ? हो सकता है, वह पिताजी और राजाजी का भ्रम ही हो।

तभी मुंजाल ने निश्चय-सा करते हुए पूछा, "मेरे पास रहोगे, त्रिभुवन ?"

"क्यों ?" त्रिभुवन चौंका।

"मेरे कोई संतान नहीं है। शीघ्र ही बुढ़ापा मुझ पर छा जायेगा। क्या

मेरे साथ रहोगे ? मेरी अभिलाषाएँ पूरी करोगे ?"

"इसका एक ही उपाय है। आप मेरे पिताजी से संधि कर लें।"

मुंजाल यह सब न सह सका। तेज स्वर में बोला, "तुम संधि के लिए भेजे गये हो ?"

"मंडलाधिकारी सन्धि की भीख नहीं माँगते।" त्रिभुवन ने गर्व से कहा

"भैया, मेरी इतनी बात स्वीकार कर लो। मैं तुम्हें सुखों से लाद दूंगा।" मुंजाल ने मधुरता से कहा।

"यह कैसे हो सकता है ? आपके सुख के लिए मैं पिताजी को अकेला नहीं छोड़ सकता।"

"मंडलेश्वर अपने कार्य के लिए काफी हैं और इधर तुम्हारे लिए धन प्रतिष्ठा और कीर्ति बिखरी पड़ी हैं और फिर, कर्णदेव की मृत्यु के बाद तुम्हारे पिताजी की स्थिति और भी सोचनीय हो जायेगी, तब वहाँ तुम्हारी गुजर नहीं हो सकती।"

"मामाजी, उस स्थित को सुधारना और बिगाड़ना इतना आसान नहीं है। देहस्थली के वीरों के हाथों में चूड़ियाँ नहीं हैं।"

"लेकिन वहां एक चीज नहीं है।"

"वह क्या ?"

"मुंजाल मंत्री की बुद्धि।"

"बुद्धि ईश्वर ने किसी एक के ही हिस्से में नहीं डाली है, मामाजी।"

"बेकार की बातों में मेरा समय नष्ट न करो। मेरा हृदय तुम्हारे लिए तड़प रहा है क्या तुम मेरी बात नहीं सुनोगे ?"

"आप धन और कीर्ति का लोभ देकर मुझे लुभाना चाहते हैं ? इस मातृविहीन बालक को आप जैसे अत्याचारी राज्य और यश से सन्तुष्ट करना चाहते हैं ? अपना मन्त्रित्व अपने पास ही रखिए। मैं वीर पिता का संग छोड़कर आपको नहीं अपना सकता।" कहते-कहते त्रिभुवन का मुख कठोर हो गया।

मुंजाल ने फीके स्वर में कहा, "लड़के कठोर शब्द बोलने तुझे खूब आते हैं।"

"लेकिन शब्द कठोर होने के साथ ही सच्चे भी हैं। मामाजी, आप भी सुखी नहीं हैं, आपका हृदय भी रो रहा है। मैं जा रहा हूँ। आपने मेरी प्रार्थना को ठुकराया है, इसके लिए आपको पछताना पड़ेगा।"

मुंजाल दीर्घ विश्वास भरकर देर तक दरवाजे की ओर देखता रहा। लोग उसे सिरफिरा समझते थे और कुछ के ख्याल से तो उसके दिमाग ही नहीं था। अचानक ही भर आयीं आँखों को पोंछ वह उठ खड़ा हुआ।

त्रिभुवन ने महल की सीढ़ियाँ उतर पालकी में पैर रखा था कि एक दासी ने आकर उसे रोक लिया, "त्रिभुवनपाल, तीर से वेध दिया पर घाव कब मिटाओगे?" और उसने एक तीर भी सामने रख दिया। त्रिभुवन तीर को पहचान गया कि यह उसी का है जिसे वह प्रसन्न के पास छोड़ आया था। तीर की नोक पर एक खून की बूंद लगी थी। एक क्षण को उसके हृदय में प्रसन्न से बात करने की इच्छा उत्पन्न हुई, परन्तु उसने हृदय को दृढ़ कर कदम वहीं रोक लिये। दासी से बोला, "जाकर कह देना, घायलों की दवा जगह-जगह मिलती है।" और तीर के दो टुकड़े कर दासी को वापिस लौटा दिया।

: ११ :

त्रिभुवन उस जगह पर गया जहाँ कर्णदेव को भूमि पर रख दिया गया था। महल की सारी भीड़ वहाँ जमा हो रही थी; रोना-पीटना आरम्भ हो गया था। सब को यह आशंका थी कि अब भयंकर संकट का श्रीगणेश हो गया है। कुछ लोग बाहर चौपाल में और कुछ रास्ते में एकत्र हो गये थे। भिन्न-भिन्न तरह की बातें वे लोग कर रहे थे—'रानी कैसी मालूम हो रही है? मुंजाल के मुख पर क्या भाव हैं? देवप्रसाद पाटन में आ गया है या नहीं?" मंडलाधिकारी भी सूचना मिलते ही आ पहुँचे। आज न जाने कितने वर्षों के बाद वे प्रकट रूप से राजमहल में आये थे, लोग चकित हो उठे।

कर्णदेव के शव को प्रणाम करने के बाद मंडलाधिकारी ने त्रिभुवन से पूछा, "कुछ बात बनी?"

त्रिभुवन ने नकारात्मक सिर हिलाया।

"यह भी नहीं मालूम कि जीवित हैं या नहीं ?"

"यह भी नहीं ज्ञात हो सका। मुझे तो कुछ रहस्य-सा मालूम होता है।"

"अच्छा, फिर बात करेंगे। लेकिन ज़रा होशियार रहना, कल से पहले ही कुछ-न-कुछ होगा।"

"चिन्ता नहीं।"

तभी राजपुरोहित अन्तिम संस्कार करने के लिए आ गये। इतने में वहाँ एक भयंकर राजपूत आ पहुँचा। वह वीरपुर का सामन्त था। उसने धीरे से पूछा, मंडलाधिकारी जी, तैयार हैं ?"

"किसलिए ?"

"मैंने आपसे बताया था न, सिपाही तैयार हैं। आदेश हो तो, कल सवेरे आपको यह पद दिला दूं।"

मंडलाधिकारी कुछ मुस्कराया, "विजयमल्ल जी, पाटन का एकमात्र राजा अब जयदेव है।"

बड़बड़ाता हुआ विजयमल्ल वहाँ से गया। कुछ देर बाद राजा का शव श्मशान ले जाया गया। सारे लोग दुःखी हृदय लिए शव के साथ जा रहे थे। राजा को अग्नि को सौंप सब रोते-कलपते राजमहल लौटे। मंडलाधिकारी और त्रिभुवन के आते ही जोरावर ने कहा, "महाराज पिछले द्वार पर मदनपाल खड़े हैं और आपसे एकान्त में बात करना चाहते हैं।"

मंडलाधिकारी बोले, "आज तो सभी षड़यन्त्रकारी हो गये हैं। जाओ उन्हें अन्दर बुला लाओ।"

साठ वर्ष के वीर, मजबूत मदनपाल अन्दर आये। वे कर्णादेव के मामा लगते थे। मुंजाल ने सत्ता को कमजोर करने के लिए उन्हें कर्णावती का दुर्गपाल नियत कर दिया था। सब लोग मदनपाल के चातुर्य और उसके षड्यन्त्रों की व्यापकता जानते थे। उन्होंने हँसते हुए कहा, "सुनाइये मण्डलाधिकारी-जी, क्या नये समाचार हैं ?"

आप जो बतलाएँ।" देवप्रसाद बोले।

हाथ में हुक्का लेकर मदनपाल ने कहा, "अब क्या करने का इरादा है? इस प्रकार कब तक बैठे रहेंगे?"

"रीति तो यह है कि नये राजा के तिलक के समय ही कुछ परिवर्तन हो। उसी समय देखेंगे कि हमें क्या करना है। इस समय सो हम पाटन में बैठे हैं।"

"मण्डलेश्वर, यह क्या मूर्खता कर रहे हो! सामन्तों के सर के ताज होते हुए भी तुम लापरवाही से बैठे हो। कुछ तो शर्म करो।"

कृत्रिम लापरवाही के भाव से मण्डलाधिकारी बोले, "फिर क्या किया जाय? कुछ न होगा तो अपनी देहस्थली जाकर चैन से बैठूंगा।"

"मीनलदेवी जाने देंगी?"

"मुझे देहस्थली जाने से कोई रोक नहीं सकता है? क्या पागलों की-सी बातें करते हो!"

"रानी के दाँव-पेचों को तुम नहीं समझ सकते, क्योंकि तुम सीधे और भोले हो।"

मण्डलाधिकारी कुछ उलझन में पड़ता हुआ बोला, "तो क्या किया जाय?"

"वही विचार करने तो मैं आया हूँ। मेरा मण्डल छोटा-सा है और उन्होंने मुझे कर्णावती में लड़ने के लिए भेज दिया है। कल ही मेरे मण्डल को वे त्रस्त कर सकते हैं।"

देवप्रसाद जान रहा था कि मदनपाल कोई युक्ति रचकर आया है। उसे जान लेने की गरज से उन्होंने पूछा, "आपने क्या रास्ता सोचा है?"

"मैं तो तुमसे पूछने आया हूँ। मीनलदेवी के हाथ में लगाम रहते मण्डल कभी निर्भय नहीं रह सकता।"

"लेकिन रानी भी तो रास्ते का रोड़ा नहीं है कि उठाकर फेंक दिया जाय।"

"पर, माँ-बेटे तो अलग किये जा सकते हैं।"

देवप्रसाद चौंका, "क्या? किस प्रकार?"

"तुम्हारी हिम्मत की जरूरत है। आज रात को यहाँ से कुमार जयदेव को उड़ाकर कर्णावती ले जाएँ और वहाँ परसों उसका तिलक कर दें।"

जयदेव को कर्णावती ले जा, वहाँ से शासन-संचालन करना, यह बहुत अच्छा था। देवप्रसाद बूढ़े के साहस को मान गया।

"लेकिन, जयदेव को उठाना आसान नहीं है।"

"मण्डलाधिकारी, बिना उचित निश्चय किये मैं बात मुँह से नहीं निकालता।"

"लेकिन, आपने यह कैसे जान लिया कि मैं इस उपद्रव में आपका साथ दूंगा।"

"मेरी अपेक्षा तुम्हारी स्थिति अधिक खराब है और होगी।"

"लेकिन मामाजी, कष्ट की अपेक्षा आन मुझे अधिक प्रिय है।"

"राज्य के झगड़ों में आन की परवाह करोगे तो मारे जाओगे। उधर मीनल और मुंजाल, दो कपटी इकट्ठे हो गये हैं।"

"इतने वर्षों में जिस शासन को अपनी अनीति से दूषित नहीं किया है, उसे अब दूर कर दूं? मैं अपनी बहादुरी के अलावा दूसरा मार्ग ग्रहण न करूँगा।"

मदनपाल ने समझाया, "यह समय इस बात का नहीं है, भैया! जरा सोचो तो—"

"इसमें सोचना ही क्या है? डाकू की तरह चुपचाप रातों-रात कुमार को उठा ले जाऊँ, और उसे अपने अधिकार में रख शासन करूँ? इसकी अपेक्षा अपनी सेना लाकर पाटन पर क्यों न चढ़ाई कर दूं? मर्दानगी तो इसी में है।"

मदनपाल ने पान का बीड़ा लेकर उठते हुए कहा, "अपनी यह मर्दानगी अपने तक ही सीमित रखना, किसी से कहना नहीं।"

"अच्छी बात है।"

"वचन दो।"

"वचन देता हूं। मैं मजबूर हूं, नहीं तो आपका साथ अवश्य देता।"

इधर मुंजाल बहुत रात तक शासन के सूत्र सम्भालता रहा। मण्डलाधिकारियों का विरोध, पाटन से विरोधियों के गुप्तचर, विश्वासपात्र व्यक्तियों की नियुक्ति, महल में कड़े पहरे का प्रबन्ध, सब बातों पर उसने गौर किया। फिर वह रनवास की ओर गया।

एक दासी ने कहा, "इस समय महारानी जी के सिर में बहुत दर्द हो रहा है। आप सवेरे नहीं मिल सकेंगे ?"

मुंजाल हंसा। उसे मीनलदेवी, शान्तिचन्द्र और यति की गुप्त बैठक का पता चल गया था, "नहीं, मुझे इसी समय एक जरूरी काम है।"

दासी अन्दर गयी और लौटकर बोली, "आइये, महारानी जी बैठी हैं।"

मीनलदेवी के काले कपड़े और अश्रुपूर्ण नेत्र देखकर मुंजाल को दुःख हुआ। शान्त होकर उसने कहा, "देवी, इस समय आने के लिए मुझे क्षमा करें। परन्तु, कल सवेरे कुमार के तिलक के समय क्या-क्या होगा ?"

मीनलदेवी ने इस तरह ऊबकर देखा कि मुंजाल को उनका ढोंग पता चल गया। उन्होंने कहा, "इस समय जैसा चल रहा है, चलने दो। मेरा सिर फटा जा रहा है, फिर बातें होंगी।"

"देवी, शान्तिचन्द्र और यति के साथ बातें करते समय सिर नहीं फटा ?"

रानी ने दांत पीस लिए।

"अगर एक कदम भी उलटा रखेंगी तो सब किये-कराये पर मिट्टी पड़ जायेगी।"

"मैंने कहा न, ये बातें शान्ति से होंगी।"

"यह मुझे आज ही मालूम हुआ कि मीनलदेवी शासन-कार्य की बातों से ऊब जाती हैं। मुझे चिन्ता नहीं, पर इतना याद रखिए, मेरे समान निस्वार्थ सलाह कोई नहीं दे सकता।" मुंजाल का माथा गर्व से ऊंचा हो गया था।

अपने कमरे की ओर मुंजाल मुड़ा था कि सामने से एक गुप्तचर ने आकर उसके कान में कुछ कहा।

कमरे में आनन्दसूरि बैठे हुए प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्हें देख मुंजाल ने स्वाभाविक कठोरता धारण कर पूछा, "कहिये इस समय कैसे ?"

"कुछ काम है, मेहताजी।"

"जरा जल्दी कह दीजिए, मैं थक गया हूं।"

"आपसे एक निवेदन है।" नम्र होकर आनन्दसूरि बोले, "पाटन की इस गिरी हुई दशा में आप उसे सुधार सकते हैं।"

तीक्ष्ण दृष्टि से देखकर मुंजाल ने पूछा, "कैसे ?"

"आपके दण्डनायक बनने से स्थिति सुधर सकती है ।"

बड़ी लापरवाही से मुंजाल ने कहा, "लेकिन यह कोई अपने हाथ की बात है ?"

"महारानी जी से तो इस सम्बन्ध में कहा जा सकता है !"

कृत्रिम स्वर में मुंजाल बोला, "सर्वेसर्वा तो देवी हैं। मुझे उनकी आज्ञा शिरोधार्य है।"

"परन्तु वे आपकी राजनीति से ऊब गई हैं।"

"क्या यह कहने के लिए ही देवी ने आपको भेजा है ?"

यति ने मुंजाल को मात करने की आशा छोड़ दी, "आप जैसे राजनीतिज्ञों को समझ-बूझकर काम करना चाहिए ।"

"आप जैन सत्ता के प्रतिनिधि बन जाएँ तो फौरन दण्डनायक बन सकते हैं।" मुंजाल ने तिरस्कारपूर्ण स्वर में कहा, "यति जी, आप अभी बच्चे हैं। मुंजाल की आन को आप नहीं जानते। जिसने आपको भेजा है उससे कहियेगा फिर मुझे छेड़ने की हिम्मत न करे। जनता का प्यार और मेरी बुद्धि मुझे इस पद पर रख रही है।"

निराश होकर यति चला गया। मुंजाल विचारों में खोकर न जाने कब तक टहलता रहा। कभी सोचता, विद्रोह खड़ा करके पाटन को हस्तगत कर लूं और रानी के पंजे तोड़ दूं; फिर विचार आता, नहीं रानी, रानी है, उसे देवी ही समझना चाहिए, उसके प्यार को नहीं ठुकराना चाहिए। कोई ऐसा उपाय किया जाय कि दोनों बातें बन जायँ। साँप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे।

: १२ :

दूसरी सुबह, प्रातःकाल ही राजमहल व्यक्तियों से भर गया। सामन्त, जागीरदार, मंडलाधिकारी, सब आकर चबूतरों पर बैठने लगे। थोड़ी देर बाद देवप्रसाद आया। मुंजाल भी आ गया। कुछ देर में कुमार जयदेव, यति, शान्तिचन्द्र और राजपुरोहित भी आ गये। और सब लोग जल-दर्शन के लिए

चल पड़े। कुमार, राजपुरोहित और यति आगे-आगे थे और उनके पीछे सिंह समान देवप्रसाद और सौन्दर्यशील गम्भीर मुंजाल थे। सारे पाटन के लोगों पर इन दोनों का रौब था और मुंजाल पर था उनका दृढ़ विश्वास।

जल-दर्शन से लौटने के बाद सब देखने लगे कि अब क्या होता है ? बीच में चबूतरे पर गद्दी लगाई गयी थी। उस पर कुमार जयदेव बैठ गये। निकट ही राजपुरोहित आकर खड़े हो गये। दूसरी ओर सत्ता के अवतार के समान खड़ा था—मुंजाल। उसका सौन्दर्य इस वक्त और भी बढ़ गया था। राजपुरोहित ने जयदेव का तिलक किया और उसके पिता की तलवार उसकी गोद में रख दी। राजपुरोहित लौटे तो आनन्दसूरि इस प्रकार आगे बढ़े जैसे वे भी तिलक करने जा रहे हों। देवप्रसाद के नेत्र लाल हो गये। लोग चौंक पड़े कारण कि राजपुरोहित को तिलक करने के बाद दूसरा अधिकार नगरसेठ का था। यति के जयदेव के निकट पहुँचने से पहले ही मुंजाल ने शीघ्रता से आगे बढ़ यति के हाथ से चन्दन-पात्र लेकर कुमार जयदेव को तिलक कर दिया। घबराकर यति पीछे हट गये। सामन्तों में हँसी फैल गयी। मुंजाल बोले, "महाराज जयदेव की जय !" सभी लोगों ने जय-घोष किया।

इसके बाद एक चारण ने कवित्त पढ़े। फिर जयदेव धीरे से बोले, "मैं दो-एक परिवर्तन करना चाहता हूँ। मेरे परमपूज्य पिताजी स्वर्गवास हो गये हैं, मैं अभी नादान हूँ, अतः कुछ नये प्रबन्ध करना आवश्यक है—मैं अपने विश्वासी और योग्य मन्त्री मुंजाल को मधुपुर की छावनी और चन्द्रावती की सेना का सेनापति नियुक्त करता हूँ।"

अल्प-बुद्धि लोग यह सुनकर प्रसन्न हो उठे। किन्तु मुंजाल इस चाल को समझ तिरस्कार की हँसी हँस पड़ा।

कुमार ने आगे कहा, "पुराने मन्त्री शान्तिचन्द्र को पाटन के दुर्गपाल का पद सौंपता हूँ और साथ ही वर्षों से खाली पड़ा दंडनायक का पद भी उन्हें ही देता हूँ।" कहकर उसने अपनी तलवार शान्तिचन्द्र को दे दी।

मुंजाल के अतिरिक्त सब जैसे आकाश से गिर पड़े हों। पाटनवासी चन्द्रावती से घृणा करते थे और वहीं का शान्तिशन्द्र दंडनायक बने। सब अकुला गये। किन्तु उस समय सबने स्तुति गान गाया और भीड़ छँटने लगी।

सामन्तगण अब मुंजाल का भय न रहने से प्रसन्न ही उठे। देवप्रसाद को यदि शान्तिचन्द्र की नियुक्ति बहुत अच्छी नहीं लगी, तो इतनी बुरी भी न लगी। मुंजाल के न रहने से अब वह आसानी से श्रावकों को दबा सकेगा।

वह महल में आया तो त्रिभुवन ने कहा, "कहिये पिताजी, क्या मालूम देता है?"

"कुछ नहीं। बूढ़े शान्तिचन्द्र को सेना की सहायता से दबाना आसान है। अभी तक तो शत्रुओं ने मुंह की खाई है।"

"एक और बात नहीं सुनी? पाटन के द्वार आज दोपहर के बारह बजे बन्द होने वाले हैं।"

"क्या कह रहे हो? तुमने कहां सुना?" देवप्रसाद ने आंखें फाड़ कर पूछा।

"मुंजाल मामा से।"

"फिर?"

"मामा मेरे कान में यह कहकर चले गये। पर उनकी यह सूचना मुझे विशेष रूप से आपके लिए प्रतीत हुई।"

"क्या मुझे पकड़ने की तैयारियां हो रही हैं?"

"नहीं! परन्तु लगता है, हमें हमारी मेरल वाली सेना से अलग करने की कोशिश की जा रही है।"

मंडलाधिकारी ने बेटे के कंधे पर हाथ मारकर कहा, "हमें यहां बन्द कर हमारी सेना को अपने आधीन कर लेंगे। यह परामर्श मुंजाल के बस का नहीं है, यह तो उस यति की करतूत दीखती है।"

"क्या वही जो हमें रास्ते में मिला था?"

"हां, वही।"

"अब सेना को मेरल में रख, चैन से पाटन में रहने की आपकी योजना नष्ट हो गई है।"

"हां! काकी एक तरफ मुंजाल को और दूसरी तरफ मुझे दुर्बल बना देना चाहती हैं।"

"मामा कुछ नहीं करेंगे?"

"मुंजाल काकी के दास हैं। खैर, इस समय यह बात छोड़ भोजन करके पाटन के बाहर चलते हैं। बेटा, अब तुम्हारी योग्यता और वीरता परखने का भी समय आ गया है।"

: १३ :

असली शिकारी का पता खूंखार जानवरों से लड़ते समय ही लगता है। मीनलदेवी इस समय मुंजाल और देवप्रसाद से भिड़ रही थी। वर्षों से दबायी हुई शक्ति को उसने उभारा, शासन की डोर हाथ में ली और राजमहल से मेरल तक की सेना पर नजर रखने लगी। यति की सहायता उसे मिल ही रही थी। परन्तु आखिरकार वह स्त्री थी। अपनी इस योजना द्वारा वह मुंजाल को पाठ पढ़ा रही थी कि स्त्री भी अबला नहीं होती। मुंजाल से वह बहुत चिढ़ गयी थी और देखना चाहती थी कि अब इस अन्याय को वह कैसे सहता है। सारे दिन वह मुंजाल के फड़फड़ाते मुख को देखने की प्रतीक्षा करती रही, पर वह नहीं आया। उसे चिन्ता हो गई। दासी को आज्ञा दी, "कोई बाहर हो तो बुलाना।"

दासी जाकर समरसेन चोबदार को बुला लायी। रानी ने कहा, "समर, चुपके से जाकर देखो तो, मुंजाल मेहता कहाँ हैं?"

"जो आज्ञा।" समर चला गया। उसके आने तक वह आवेश में झूला झूलती रही। समर ने कहा, "माता जी, मन्त्रीजी ने अभी-अभी सारी बहियाँ हिसाब करके सेठ शान्तिचन्द्र के पास भेजी हैं और, मधुपुर जाने के लिए घोड़ा मँगाया है।"

मीनलदेवी और भी व्याकुल हो गयीं। अगर मुंजाल कर्त्तव्य मानने की जगह विद्रोह करता तो ज्यादा अच्छा था। क्या मुंजाल की स्नेहपूर्ण मुस्कान अब उसे नहीं मिलेगी? मीनलदेवी के हृदय पर मुंजाल ने चोट कर दी थी। वह बेचैन हो गयीं। आतुरता के साथ समर से बोली, "मुंजाल मेहता से कहना, जाते हुए इधर होकर जायें।"

कुछ देर बाद समर लौट कर आया, "माता जी, मुंजाल मेहता ने कहा

है, मधुपुर जाने को देर हो रही है। समय मिला तो आऊँगा।"

रानी ने दांत किटकिटाये, "भाड़ में जाय मधुपुर। कहो, अभी बुलाया है।"

उसका आवेश बढ़ता जा रहा था।

पैरों की आहट से वह पहचान गयी, मुंजाल आ रहा है। अपने ऊपर उसे घमंड होने लगा कि मुंजाल जैसे को भी उसने ठिकाने लगा दिया है।

मुंजाल आया तो बिल्कुल पहले जैसा। केवल आँखें भावहीन और सख्त दीख रही थीं। मुंह नींचा कर, हाथ में हाथ रख वह खड़ा हो गया।

रानी ने स्वस्थता से पूछा, 'क्यों मेहता जी, अभी-अभी जाने की क्या जरूरत पड़ गयी?"

"मुंजाल आज्ञा का पालन करना सीख रहा है।" मुंजाल के स्वर में घमण्ड भरा था।

"क्यों, यह तजवीज पसन्द नहीं आयी तुम्हें?" रानी ने खुश होकर पूछा।

"नौकरों के लिए पसन्द-नापसन्द का प्रश्न नहीं। आज्ञा मानने से मतलब है।"

"तब इतने कठोर क्यों हो गये हो?" रानी ने कृत्रिम हंसी हँसकर पूछा।

"मुझे तिरस्कार पैदा हो गया है।"

"किस पर?"

"अपने आप पर। मूर्ख मुंजाल बचपन से ही अपने को विमलशाह के समान समझ रहा था परन्तु आज वह अपनी क्षुद्रता जान गया है।"

"खैर छोड़ो! मधुपुर जाकर क्या करोगे?"

"जो दंडनायक का आदेश होगा। मैं तो सेवकाई निभाऊँगा।"

"इस समय तुम बिलकुल निकम्मे हो गये हो।"

मुंजाल मौन हो गया। रानी को भी कुछ सूझ नहीं पड़ा।

"तो अब आज्ञा है?" शान्ति से मुंजाल ने पूछा।

"मेरे पास दुर्भाग्य से इस समय कोई भी विश्वासपात्र नहीं है।" रानी ने चिढ़कर कहा, "जाइये।"

सीधा तनकर मुंजाल बोला, "आपको विश्वासपात्रों को रखना ही नहीं

आता। अच्छा एक बात बता दूं—यदि रात को इस महल में रहेंगी तो षडयन्त्रकारी कुमार जयदेव को उड़ा ले जायेंगे।"

रानी बात को कुछ समझती और कुछ कहती कि मुंजाल उठकर चल दिया। रानी बुरी तरह घबरा गई। अब वह बिलकुल अकेली है। यदि इस समय मुंजाल वहाँ उपस्थित होता तो मर्यादा छोड़, वह रो पड़ती। मुंजाल को उसने कुछ सिपाहियों के साथ जाते देखा। दीर्घ विश्वास लेकर वह चुप खड़ी रही। तुरन्त उसे एक विचार आया कि कुमार को कहीं दूसरी जगह छिपा देना चाहिए। सम्भव है, मुंजाल भी कहीं विरुद्ध हो जाये। वह तो मेरा ब्रह्मास्त्र है। सोचती हुई वह भीतर चली गई।

बाजार के लोग मुंजाल को 'जय गोपाल' बोल रहे थे। जगह-जगह टोली में खड़े हुए लोग हड़ताल करने की सोच रहे थे। इसी समय देवप्रसाद और त्रिभुवन भी चार-पाँच आदमियों के साथ मोंढेरी दरवाजे पर जा रहे थे। छोटी-सी गली में दो टुकड़ियों का सामना हुआ और यह प्रश्न खड़ा हो गया कि पहले आगे कौन जाय ? देवप्रसाद ने मूंछों पर हाथ फेरा, तलवार की मूठ पकड़ी और घोड़े को एड़ लगाकर आगे बढ़ाया। पीछे-पीछे त्रिभुवन भी आ गया। मुंजाल राजपूतों के इरादे को भाँप गया और उसने पीछे वाले सवार से तलवार माँग ली। दुकानों पर लोग तमाशा देखने की गरज से भीड़ लगाने लगे।

देवप्रसाद ने घमंड से कहा, "पहले भीमदेव का पोता जायेगा" और उसने मूंछों पर ताव दिया। मुंजाल के सैनिकों ने अस्त्र सम्भाल लिए। मुंजाल शान्तिपूर्वक बोला, "पाटन में, यहाँ का नगरसेठ ही पहले आगे जाता है।" एक क्षण दोनों की आँखें एक दूसरी पर जमी रहीं। बचपन के कट्टर दुश्मन आज आमने-सामने शत्रुता, ईर्ष्या की भावनाएँ लिए खड़े थे।

देवप्रसाद ने तलवार खींचकर कहा, "देखता हूं, पहले कौन जाता है ?"
मुंजाल की बुद्धि ने साथ दिया, "क्या यह समय यों ही कट मरने का है ?"

देवप्रसाद हँसा। धीरे से बुदबुदाया, बनिया।"

मुंजाल ने सुन लिया, उसकी आँखें कठोर हो आयीं, "सोलंकी, सारा जगत मुंजाल के साहस को जानता है, लेकिन इस समय—"

बीच में त्रिभुवन ग्रा खड़ा हुग्रा, "पिताजी, इस बात को जाने दीजिए कि कौन ग्रागे जाता है हाँ, साले-बहनोई साथ-साथ जायेंगे।"

दोनों ने चौंककर तलवारें म्यान में रख लीं ग्रौर त्रिभुवन की ग्रोर ममता से देखने लगे। दोनों के हृदय पिघल गये। देवप्रसाद ने भोलेपन से कहा, "मुंजाल तुम्हारे ग्रत्याचार ने मेरा सारा जीवन राख बना दिया।"

दुःखी स्वर में मुंजाल बोला, "मण्डलाधिकारी, भूल किससे नहीं होती। मैं ग्राज घोर पश्चाताप कर रहा हूं।"

दोनों ने शान्ति के साथ घोड़े बढ़ाये। कुछ देर बाद, देवप्रसाद ने पूछा, "क्या सचमुच ही हंसा मर गई है।

मुंजाल का चेहरा फीका पड़ गया। ग्राँखों में ग्राँसू ग्रा गये, बोला, "एक समय मैंने तुम्हारी हंसा को लिया था, ग्राज उसे लौटाता हूँ। हंसा जीवित है।"

ग्रातुरता से मंडलाधिकारी ने कहा, "कहाँ?"

"राजमहल में, ईशान कोण की ग्रोर पिछली खिड़की के सामने की मंजिल पर।"

"तब मैं वहाँ हो ग्राऊँ?" मण्डलाधिकारी का हृदय धड़क रहा था।

"यह तो जानते हो, पाटन के द्वार दोपहर को बन्द रहते हैं?"

"ग्रभी दो घड़ी बाकी हैं, तब तक लौट ग्राऊँगा।" फिर कुछ रुककर बोला, "मुंजाल ग्राज जैसे हम मिले, ग्रगर पहले ही मिल जाते—"

"तो गुजराज के भाग्य पलट जाते। पर सब विधि का लेख! वैसे ग्रब भी बहुत कुछ करने का समय है।"

"मैं तैयार हूँ। बोलो, कहाँ मिला जाय?"

"कल सूर्योदय के समय मेरल से चार मील दूर, बाघेश्वरी माता के मन्दिर में।"

"ग्रच्छा, कल तक के लिए राम-राम।" जोर से देवप्रसाद ने कहा। ग्रास-पास के लोगों का उसे भान नहीं रहा।

मुंजाल तेजी से ग्रपने सिपाहियों के साथ बाहर की ग्रोर चला गया।

त्रिभुवन बेचारा दूर ही खड़ा था। देवप्रसाद ने पास ग्राकर कहा, "बेटा, दोपहर को ग्रभी समय है, मैं जरा राजमहल हो ग्राऊँ।"

कुछ न समझता हुआ त्रिभुवन बोला, "मैं भी साथ चलूं, शायद जरूरत पड़ जाय।"

"नहीं बेटा, अभी आता हूं।" कहकर उसने घोड़े को एड़ लगायी और घोड़ा हवा से बातें करता हुआ क्षण भर में ही राजप्रसाद जा पहुंचा। वहां चारों ओर शून्य था। ईशान कोण की खिड़की एकदम उजड़े भाग में थी। मंडलाधिकारी ने जंजीर खटखटायी। कुछ देर बाद, एक सुसज्जित पहरेदार ने आधी खिड़की खोलकर झांकते हुए पूछा, "कौन ?"

"खोलो। यह राजमहल है या बन्दीगृह ?"

"क्षमा कीजिए मण्डलाधिकारी, इधर से आने की अनुमति किसी को नहीं है। बड़े दरवाजे से आइये।" और खिड़की बन्द हो रही थी कि देवप्रसाद ने उस पर जोर से लात मारी। खिड़की खुल पड़ी, पहरेदार नीचे गिर गया था। देवप्रसाद तेजी से अन्दर भागा, उसे याद आया, कि इसी जगह पर उसने हंसा को अन्तर्धान होते देखा था। वह सीढ़ियां चढ़ गया। पीछे से धूल झाड़ता हुआ पहरेदार आया और गिड़गिड़ाने लगा, "स्वामी, अन्नदाता, महारानी की सख्त आज्ञा—'

"चुप रहो।" देवप्रसाद ने तलवार खींच ली। उसकी भवें चढ़ी हुई थीं।

उसने पुकारा, "हंसा ! हंसा !" पर कोई उत्तर नहीं आया। कमरे के एकमात्र द्वार को उसने खटखटाया और किसी की आवाज न आने पर लात मारी। अद्वितीय बल ने द्वार खोल दिया। भीतर कोई नहीं था। इधर-उधर एक माला और एक-दो सफेद कपड़े पड़े थे। "हंसा ! हंसा !" उसने फिर आवाज दी पर स्वर गूंज कर ही रह गया। दो-तीन कमरे पार कर उसने आवेश में फिर हंसा को पुकारा।

उत्तर दिया एक परिचित स्वर ने, "कौन ?" दूसरे ही क्षण मीनलदेवी आ खड़ी हुई। चौंक गया देवप्रसाद, कुछ लज्जित भी हुआ।

"क्या हुआ है मण्डलाधिकारी, जो इतने आवेश में दौड़े आये ?" रानी ने कठोर स्वर में पूछा।

मण्डलाधिकारी की सांस फूल गई थी। वह गिड़गिड़ाया, "काकी जी, मेरी हंसा मुझे दे दो।

"तुम्हारा पागलपन अभी तक दूर नहीं हुआ ? क्या मुर्दे भी कभी जीवित हुए हैं ? और सुनो, क्या दे सकोगे ?"

"क्या चाहेंगी ?"

"देहस्थली का मण्डल और मेरल के निकट पड़ी हुई सेना को अपने आधीन करना और तुम्हें महल में नजरबन्द रखना।"

शर्त सुनकर देवप्रसाद के बदन में आग लग गयी। बड़ी मुश्किल से अपने को दबाकर उसने कहा, "तुम्हारी हठ अभी तक वैसी ही है काकीजी। पहली शर्त मैं स्वीकार करता हूँ। मण्डल देता हूं, मुझे दण्डनायक बना दो।"

"अब वह समय तुम खो चुके हो। पत्नि चाहते हो तो केवल यही रास्ता है।"

"तब अपनी और हंसा की इज्जत खोने की अपेक्षा मुझे वियोग ही प्रिय है।" कहते हुए मण्डलाधिकारी के नेत्र भयंकर हो उठे, "ओ रक्षसी काकी, आज तक मैं पाटन के लिए अपनी बलि देने को तैयार था। अब देखना, पाटन का दुर्ग कब तक खड़ा रहता है।"

मीनलदेवी मौन खड़ी रहीं। तभी महल का द्वार बन्द होने का सूचक घंटा बजने लगी। देवप्रसाद को ख्याल आया। "काकी जी, जाता हूँ। अब यमराज के दरबार में मिलूंगा।" कहता हुआ वह तेजी से राजमहल में जा निकला और घोड़े को ऐड़ लगा कहीं-से-कहीं निकल गया।

: १४ :

मुंजाल की शिक्षा को त्यागकर अब मीनलदेवी यति के बताए मार्ग पर चल रही थी। मुंजाल के शासन में वह परतन्त्र थी, अब यति की धार्मिक शिक्षा से प्रभावित होकर वह मुंजाल को सताना चाहती थी और चाहती थी कि वह उसके आगे आकर रूठे और वह मनाए, क्योंकि शुरू से ही उसे मुंजाल से स्नेह था। परन्तु मुंजाल ने वह सब नहीं किया और रानी निराश हो गयी। वह सोचने लगी, मुंजाल पाटन क्यों छोड़कर गया ? लेकिन परिस्थिति रानी के अनुकूल थी। मुंजाल मधुपुर जाकर कुछ भी न करे तो भी मेरल की सेना

पर उसका रौब रहेगा। इधर देवप्रसाद पाटन में बन्दी हो जाएगा। दोनों सेनाओं को इकट्ठी कर रानी पाटन में मण्डलाधिकारी को आधीन करने और मालवराज पर चढ़ाई करने की सोच रही थी। चन्द्रावती से भी उसने सेना बुलवायी थी। रानी यह सब सोच प्रसन्न हुई, परन्तु जाते-जाते मुंजाल जो कह गया था, वह भी रानी को कचोट रहा था।

तभी दासी ने उसकी शांति भंग की, "महारानी जी, सेठ शान्तिचन्द्र आए हैं।"

शान्तिचन्द्र का चिन्तित मुख देख, रानी ने कारण पूछा। शान्तिचन्द्र चन्द्रावती में देवता समान पूजे जाते थे। उन्होंने बहुत धन कमाया था और वे ही पाटन के नरेशों के खजाने की रक्षा किया करते थे।

"कुछ नहीं महारानी जी।" शान्तिचन्द्र बोले, "पाटन के द्वार अब बन्द होंगे। हर दरवाजे पर विश्वासपात्र खड़े कर दिये गये हैं।"

"देवप्रसाद तो निश्चय ही बन्दी हो गया होगा "

"हां! शायद, सूचना आती हो!"

"आप डरते-डरते यह कह रहे हैं। क्या आपको उसके भाग जाने का भय है?"

"नहीं, नहीं। पर मण्डलाधिकारी चतुर बहुत है।"

मीनलदेवी कुछ परेशान-सी बोली, "आप कुछ कहना चाहते हैं, कह दीजिए।"

"कोई विशेष बात नहीं है।"

रानी ने किंचित कठोर मुद्रा में कहा, "जो विशेष न हो वह भी कह दीजिए।"

"जी···जी, मेरा कहना यह है कि मुंजाल मेहता और देवप्रसाद चौक में मिले थे। उनमें यह होड़ लगी कि आगे कौन जाय?"

"फिर क्या हुआ?"

"कुछ क्षणोपरान्त झगड़ा शान्त हो गया और उनमें कल सुबह मिलने की सलाह हुई।"

अधीरतापूर्वक रानी ने कहा, "तो कुछ ज्ञात है, कहां मिलने की बातचीत

हुई ?"

"यह तो मालूम नहीं। फिर तुरन्त ही मण्डलाधिकारी यहाँ आए।"

रानी समझ गयी कि मुंजाल के कहने से ही देवप्रसाद यहाँ आया था और उसी के द्वारा द्वार बन्द होने की खबर मिलने से देवप्रसाद जल्दी चला भी गया। घबराकर उसने पूछा, "फिर आपने क्या किया!"

"क्या करता? तीरन्दाजों से कह आया हूँ कि देवप्रसाद किसी भी प्रकार बाहर न निकलने पाए। अभी पूरा समाचार आता होगा।"

"ठीक है। लेकिन हमें वहाँ किसी ओर से तो खतरा नहीं है?"

"खतरा कैसा? विश्वस्त सैनिक आठों पहर पहरा दे रहे हैं?"

"मैंने सुना है कि कोई षड्यन्त्र रचा जा रहा है?"

शान्तिचन्द्र कुछ घबराए, "ऐसी सामर्थ्य किसकी है?"

तभी लीलाधर वैद्य आज्ञा लेते हुए अन्दर प्रविष्ठ हुए। वे हाँफ रहे थे। रानी से बोले, "मेरे दामाद वाचस्पति एक महत्वपूर्ण खबर लाए हैं। विश्वास करने को जी नहीं चाहता, पर बात सत्य है—कुछ मण्डलाधिकारी कुमार जयदेव को रात में कर्णावती ले जाना चाहते हैं।"

शान्तिचन्द्र ने घबराकर पूछा, "क्या?"

रानी शान्तिपूर्ण ढंग से बोलीं, "मैं जानती हूँ और शान्तिचन्द्र जी, आप दण्डनायक होकर भी नहीं जानते?" लेकिन समझ में नहीं आता, इतने सारे लोग यहाँ करते क्या हैं?"

लीलाधर वैद्य ने फूले हुए शरीर को सम्भालते हुए कहा, "महारानी जी, मैं बूढ़ा हूँ। दवाइयाँ कूटते-कूटते सारी जिन्दगी बीत गई है। परन्तु पाटनवासी इतना अवश्य कहते हैं कि मुंजाल मेहता को अलग करके ठीक नहीं हुआ।"

कृत्रिम कठोरता लाकर रानी ने कहा, "उनसे कहो, अपना काम किए जाएं। मुझे क्या करना है, यह मैं ज्यादा अच्छी तरह जानती हूँ।"

"यह तो सब मानते हैं, लेकिन कोई भयंकर परिस्थिति आ जाएगी तो—"

रानी ने गर्व से कहा, "तो तुम्हारी रानी को तुम्हारी चिन्ता है।"

साहस करके वैद्य ने कहा, "महारानी जी, तीन पीढ़ियों से सोलंकियों का सेवक हूँ, मेरे मुख से कुछ अनुचित निकल जाए तो क्षमा करें। परन्तु, इन सब बातों का फल अच्छा नहीं होगा।"

"ज़रा देखते जाओ, सब ठीक होगा।"

दासी ने कहा, "आनन्दसूरि जी पधारे हैं।"

महारानी शीघ्रता से बोली, "भेज दे। इस समय उन्हीं की ज़रूरत है।"

साफा पहने और बस्तर से सज्जित एक व्यक्ति राजपूत बना अन्दर आया।

रानी एकाएक पहचान न सकी, "कौन ? आनन्दसूरि जी ?"

"हाँ माताजी मैं ! ज़रूरत कुछ ऐसी पड़ गई कि मुझे वेष बदलना पड़ा। अब हमारी घड़ी आ पहुँची।"

तीनों जने बुरी तरह चौंक पड़े, "क्यों, क्या हुआ ?"

"जब मण्डलाधिकारी राजमहल में आये तो मुझे मुंजाल और मण्डलाधिकारी की सलाह की बात मालूम हुई और मैंने वेष बदल मण्डलाधिकारी के पीछे जाने को घोड़ा कस लिया। वे चांपानेरी का दरवाजा बन्द देख चौंके और घूमकर एक टीले को पार कर नगरकोट को लाँघ गये। मैं देखता ही रह गया।"

रानी बोली, "अब वे और मुंजाल अवश्य मिलेंगे।"

वैद्य ने कहा, "मैंने कहा न था, महारानी जी ?"

"अब कहे हुए को याद दिलाने का ज़रूरत नहीं है। लेकिन अब किया क्या जाय ? कल वे मिले और मेरल और मधुपुर की सेना एक हो गयी तो—"

बोला शान्तिचन्द्र, "और, त्रिभुवनपाल कहाँ है ?"

यति ने कहा, "वह तो खैर पाटन में ही हैं।

"उसे हाथ में कर लें ?"

"हाँ।" रानी बोली, "लेकिन वे दोनों किसी प्रकार भी मिलने न पाएँ।"

शान्तिचन्द्र ने सन्देह से कहा, "यह कैसे हो सकता है ?"

समस्या सुलझाई यति ने, बोला, "यदि आप और जयदेव मधुपुर जाएं

तो मुंजाल रुक जाय ?"

"किन्तु महारानी जी को कैसे भरोसा हो ?"

"मैं हूं, चन्द्रावती की सेना मेरे साथ है, फिर डर क्या ? चन्द्रावती से और सेना को भी मैंने बुला रखा है।"

इतनी देर बाद वैद्य बोला, "यह तो ठीक है, पर पाटनवासी न जान पाएँ।"

"यह तो तभी हो सकता है, जब आज संध्या के बाद हम रवाना हो जाएं।" शान्तिचन्द्र ने कहा।

"आपकी बात ठीक है, यति जी, रानी बोलीं, "हमारे हाथ से निकले हुए दो व्यक्ति मिल कर सारा खेल खत्म कर सकते हैं। आपके बताये रास्ते से एक और भी लाभ है।"

"क्या ?" शान्तिचन्द्र ने पूछा।

"वैद्यराज ने जो षड्यन्त्र बताया है, उससे भी हम बच सकते हैं। किन्तु, पाटन का क्या होगा ?"

"यहाँ सेठ शान्तिचन्द्र तो हैं।" यति ने कहा।

वैद्य ने बीच में ही टोका, "पाटनवासी विश्वास योग्य नहीं हैं, उनसे सावधान रहना होगा महारानी जी।"

रानी ने तीक्ष्ण दृष्टि डालकर कहा, "आप बहुत डरते हैं। क्या करेंगे पाटनवासी ?"

"यदि मण्डलाधिकारी मेरल की सेना लेकर आ पहुँचा तो ?"

"तो क्या है ?" यति बोला, "शान्तिशन्द्र जी क्या दो दिन भी पटन की रक्षा नहीं कर सकते ?"

शान्तिचन्द्र ने कहा, "यह आप भूल रहे हैं। यदि सोलंकी चढ़ आए तो पाटनवासी दो घड़ी भी दरवाजे बन्द नहीं रहने देंगे।"

"अच्छा, मैं सोचूंगी। शान्ति मेहता, आप त्रिभुवनपाल को प्यार से ले आइये और वैद्य जी आप घर न जाइए। आपकी आवश्यकता पड़ सकती है।"

तीनों व्यक्ति विदा हो गये। रानी अकेली बैठी सोचती रही, "अगर इस

समय मुंजाल होता कितना काम आता। फिर दूसरे ही क्षण विचार आता, क्या मुंजाल के बिना काम नहीं चल सकता ? विचारों की उधेड़-बुन में रानी इस आकस्मिक विपत्ति को टालने के यत्न सोच रही थी। तभी उसे कुछ महत्वपूर्ण बात याद आई और उसके नेत्रों में एक भयंकर प्रकाश छाने लगा।

"मैं अपने ब्रह्मास्त्र को तो भूल ही गई।" मीनल बुदबुदाई और उठकर पूजा वाले कमरे के पीछे की ओर के कमरे के बन्द दरवाजे को खटखटाया और किसी के द्वार खोलने पर वह अन्दर प्रविष्ठ हुई।

: १५ :

द्वार खोलने वाली स्त्री की अवस्था लगभग तीस वर्ष की थी। सफेद कपड़े, मुख फीका और कान्तिहीन, आंखें स्थिर पर भावहीन और शरीर मुर्दे सा। फिर भी इन सबके भीतर उसका लावण्य झांक रहा था। देखकर हृदय आनन्दित हो जाय। यदि उसमें उपरोक्त कमियाँ न होतीं तो फिर उसके सौंदर्य और प्रभाव का क्या कहना था!

मीनलदेवी ने कृत्रिम मधुरता से हँसकर कहा, "कहो हंसा! अरी बोलती नहीं, क्या नाराज हो मुझसे ?"

पगली-सी हंसा अजीब स्वर में बोली, "मेरी क्या जरूरत पड़ गई ?"

"क्या जरूरत पड़ने पर ही आती ?"

कठोर होकर हंसा बोली, "नहीं तो कोई मेरे पास आयेगा ? आज तक कोई मेरे पास आया भी है ?"

"आज मैं तुम्हें बधाई देने आई हूँ। अब तुम छोड़ दी जाओगी।"

तिरस्कारपूर्ण हँसी हँसकर हंसा बोली, "मेरे से अपना कोई स्वार्थ सिद्ध कराना होगा।"

"मुझे इतना स्वार्थी समझती हो, यह तुम्हारी भूल है।"

"मेरा कुछ कहना बेकार है कोई लाभ न होगा। लेकिन कभी अपने साथ मेरे भाई को लेती आतीं!"

मीनलदेवी कड़वे स्वर में बोली, "तुम्हारे भाई मुझसे रूठ कर चले गये।"

हंसा भी कुछ कठोर हो चली, "यह नई बात नहीं है, मैं पहले ही जानती थी। तुम्हारे कारण मेरा सगा भाई जो मुझे पल भर भी दृष्टि से ओझल नहीं करता था, यहां तड़पती छोड़कर चला गया। आज वह भी तुम्हारे स्वार्थ के आगे हार गया होगा।"

"मैंने तुम्हारे भाई को इधर-उधर के पचड़ों से हटाकर मोक्ष के मार्ग पर ला दिया, और तुम मुझे इतनी बुरी समझती हो?"

'किसका मोक्ष? कैसा मोक्ष?" हंसा थकी हुई-सी बोली, "बरसों से इस बेबसी में पड़ी हुई प्रभु जिनराज की भक्ति करने से मुझे मोक्ष मिलेगा? एकान्त में सोचने का मुझे बहुत समय मिला है। तुम्हारे स्वार्थ ने मुझे यहीं नरक दिला रखा है। मौत ही आ जाती तो इस व्यथा से तो छूट जाती।" आज आंसू बहाने की शक्ति भी हंसा में नहीं रह गई थी।

"ये तुम क्या कह रही हो, हंसा! तुम जैसी परमार्थपरायण को अभी बहुत कुछ करना है।"

"परमार्थपरायण? कौन कहता है!"

"मैं कहती हूँ। हम सब की अपेक्षा तुममें दैवी अंश अधिक हैं। कहते-कहते उन्होंने प्यार से हंसा के हाथ पर हाथ रख दिया। हंसा कृत्रिम हंसी हंसने लगी। हाथ छुड़ाकर वह अलग जा खड़ी हुई, "मेरी व्यर्थ प्रशंसा द्वारा महारानी अपना कौन-सा कार्य सिद्ध करना चाहती हैं, मैं भी तो सुनूं।"

मीनलदेवी ने कृत्रिमता से कहा, "मैं व्यर्थ प्रशंसा कर रही हूँ?" वह किसी तरह हंसा को वश में करना चाह रही थी।

"और नहीं तो क्या? मैं दैवी अंश थी, तभी मुझे मेरे भाई ने जीते जी मुर्दा समान रखा; आज पन्द्रह वर्षों से स्नेह के एक बोल को भी तरस रही हूँ।" हंसा के होंठ और हाथ-पांव आवेश से थर-थर कांपने लगे।

"इस तरह कलपने की जरूरत नहीं। धीरज रखो।"

"धीरज! धीरज! शर्म नहीं आती तुम्हें;" कांपते हुए हंसा ने कहा, "तुम स्वतन्त्र हो। पति का सुख मिला, लड़का है, मेरा भाई जैसा व्यक्ति तुम्हारा सेवक है। अगर पन्द्रह साल पहले तुम्हारा पति स्वर्गवासी हो जाता लड़का गोद से छीन लिया जाता और तुम्हें अकेले में रोने चीखने के

लिए कहीं वीराने में छोड़ दिया जाता, तब मैं तुम्हारा धीरज देखती।"

गुस्सा पीकर रानी ने कहा, "गई-बीती भूल जाग्रो, बहन। मैं इस समय तुम्हारी शरण ग्राई हूं।"

हंसा तिरस्कार से बोली, "वही तो कह रही हूँ, अपना स्वार्थ कहो। मेरे लिए क्या ग्राज्ञा है ?"

"जरा शान्त हो जाग्रो बहन। देखो, राजा चले गये, जयदेव ग्रभी बच्चा है। सोलंकियों का राज्य गिरने की दशा में है, उसे तुम ही बचा सकती हो।"

"मैं कैसे ?" हंसा हैरान हो रही थी।

"तुम्हारा भाई मुंजाल नाराज होकर मधुपुर चला गया ग्रोर देवप्रसाद—"

हंसा चौंक उठी। शरीर में सफेदी के स्थान पर लाली ग्रा गई।

चिन्तापूर्ण स्वर में मीनल ने कहा, "देवप्रसाद मेरल की सेना लेकर गुजरात ग्रा रहे हैं—कल सुबह।"

"तो ग्राने दो। तुम्हारे दिन ग्रब पूरे हो चुके हैं।"

"तुम भी यह कहती हो। जिस राजा के नगरसेठ की तुम बहन हो, जिसकी छत्रछाया में तुम्हारी कितनी ही पीढ़ियों ने सुख भोगे हैं, उसके लिए तुम्हारा यही कहना है ?"

"जिस राजा ने मेरे मण्डलाधिकारी को इतना सताया, उसकी स्त्री को कैद किया, पुत्र को तड़पा-तड़पाकर मारा उसके लिए यह कहना भी कम है। मैं 'उन' के साथ होती तो तुम्हें पता चलता। सास के बाद बहू के भी दिन ग्राते हैं।"

"बहन, जिसने तुम्हारे वियोग में कभी दुःख नहीं माना ग्रोर ग्रनेकों स्त्रियों के साथ भोग-विलास में रत रहा, उसके लिए तुम्हारा प्रेम ग्राज भी—"

"रानी," हंसा गर्व से कठोर होकर बोली, "चौरासी लाख योनियों में भी सती का एक ही पति होता है। तुम्हें उनकी बातें कैसे मालूम हो गयीं ? ग्रोर यदि यह सच भी है तो भी मैं उनके चरणों की धूल हूँ ग्रोर रहूँगी।"

"ठीक है लेकिन वे सेना लेकर गुजरात को उजाड़ने ग्रा रहे हैं।" रानी ने बात का दूसरा पक्ष लिया।

"ता मैं क्या करूं ?" हंसा ने उपेक्षा से कहा।

"तुम जाकर उन्हें यहां आने से रोको।"

"मुझे क्या पड़ी है ? जिसे गर्ज हो—"

"तुम जैसी से यह आशा नहीं है कि इस तरह की बात कहो।"

"अब मुझसे अधिक मत कहलवाओ। मैंने इतने दुःख सहे हैं, तब राजा ने मेरे लिए क्या किया, जो आज इसे बचाऊँ ?"

"प्रत्येक व्यक्ति यों कहने लगे तो राजा की क्या दशा हो ?"

"जब थोड़े से लोगों के सुख-आराम के लिए ही राजा चल रहा हो, वहां मुझे क्या मतलब है ?"

"नगरसेठ की पुत्री से यह बात शोभा नहीं देती।"

"और यह शोभा देता है जो अपने स्वार्थ के पीछे मेरी याचना कर रही हो ? जिन खुशामदियों को दूध का कौर खिलाया हो, उनसे जाकर कहो न ! मेरे लिए मण्डलेश्वर के विरुद्ध चलना पाप है, समझीं ?"

मीनल का ब्रह्मास्त्र निरर्थक सिद्ध हो रहा था। कृत्रिम दशा से वह बोली, "मेरा यह काम कर दो, हंसा तुम्हें आशीर्वाद मिलेगा, कीर्ति मिलेगी, पाटन के लोग तुम्हें देवी मानकर पूजेंगे।"

कठोरता से हंसकर हंसा बोली, "रानी ! हंसा ने एकान्त में बहुत कुछ सीखा है। आज तुम उसे नहीं चला सकतीं। मेरे मण्डलाधिकारी यहां आयेंगे तो पाटनवासियों को ऐसे वीर योद्धा पर गर्व होगा। बस, तुम्हारा सुख-आराम छूट जायेगा।"

"तुम्हें मालूम नहीं, मैं गुजरात के लिए अपना देश छोड़कर आयी हूं और महाराज से ब्याही गयी ?"

"नहीं तो, शायद किसी सामन्त की स्त्री बनतीं। अब गुजरात की स्वामिनी बन एकछत्र राज्य कर रही हो।"

रानी की भवें तन गयीं, "बहुत बोल रही हो, हंसा !"

"आज मुझे किसी की परवाह नहीं है। तुमने मेरा बहुत कुछ कर लिया। आज मैं खूब बोलूंगी। मेरे पूर्वजों के बल से तुम्हारा राज्य खड़ा हुआ है; पति की वीरता से राज्य की आन चली आ रही; माई की बुद्धि से शासन

स्थिर है ; और मैं चुप रहूं ? उलटे तुम्हें मुंह खोलने का कोई अधिकार नहीं है ।"

मीनल देवी के आगे अंधेरा छा गया। आज तक जो कहने का कोई साहस न कर सका था, वे भयंकर बातें आज स्पष्ट रूप से हंसा ने कह दी थीं। इस दुःख से अब वह कैसे बचे ? आज उसके पाप उसके आगे नाच रहे थे। एक बार फिर हंसा को लालच दिया, "अपने मण्डलाधिकारी के साथ रहने की तुम्हारी इच्छा नहीं होती ?"

"क्यों नहीं होती ? परन्तु, दूसरे लोक में। इस समय तुम जो हमें मिलाने की इच्छा प्रगट कर रही हो, उसके लिए मैं क्षमा चाहती हूं। तुम्हारी भलाई मैंने बहुत देख ली है।" इतना कहकर हंसा बहुत थक गयी, उसकी सांस फूल रही थी।

इसी समय राजमहल के पिछले चौक में भारी शोर सुनाई दिया। रानी समझ न सकी। चौक की ओर वाली दो जालियों में से एक में से उसने झांका। नीचे चौक में जयदेव खुले सिर खड़ा था और उसके हाथ से खून बह रहा था। शायद उसके हाथ में तीर लगा था। एक सैनिक पट्टी बांध रहा था। सामने चौक में एक वीर और निडर नवयुवक हाथ में नंगी तलवार लिए खड़ा था और दस-बारह सिपाही उसकी ओर बढ़ रहे थे। नवयुवक की आंखों में उन्माद था। मीनलदेवी ने उसे तुरन्त पहचान लिया। वह त्रिभुवन था।

एक क्षण को रानी की भवें तनीं फिर कुछ सोचकर वह मुस्करायी। स्वार्थी बुद्धि भयंकर रूप लेकर उपस्थित हो गयी। रानी हंसा की ओर लौटी।

: १६ :

लेकिन यह सब हुआ कैसे ?

त्रिभुवनपाल मोंढेरी द्वार पर अपने सैनिकों के साथ पिता की प्रतीक्षा कर रहा था और उनके राजप्रसाद जाने और मुंजाल से बात करने के कारणों को जानने को बेचैन हो रहा था, परन्तु आज्ञाकारी होने के कारण वह विवश होकर

वहीं खड़ा रहा। कुछ देर बाद वह राजमहल की ओर गया और मालूम किया कि मण्डलाधिकारी नगरकोट को घोड़े से लांघकर निकल गये हैं। उस जगह पर वह स्वयं गया और दरबान से चाँपानेरी दरवाजे को खोलने को कहा। दरबान ने इनकार कर दिया तो उसने कोट की ऊँचाई देखी। परन्तु इसे उसका पिता ही लांघ सकता था, दीर्घ निश्वास लेकर वह तेजी से महल में पहुँचा और पिछला रास्ता खुला देखकर अन्दर चला गया। पहरेदारों ने उसे रोक लिया।

"मैं मण्डलाधिकारी का पुत्र त्रिभुवनपाल हूँ, नहीं पहचानते ? मैं महारानी जी से मिलने आया हूँ। जाओ, उनसे कह आओ।"

एक पहरेदार मीनलदेवी को खबर देने गया। तभी आनन्दसूरि नीचे उतरे, "महारनी जी नहीं मिल सकतीं। क्या काम है ?"

"आपको मतलब ? मुझे जरूरी काम है, मिलेंगी क्यों नहीं ? मैं ठहर नहीं सकता।"

"मिलना है तो ठहरना पड़ेगा।" और यति चला गया। त्रिभुवन को प्रत्येक क्षण बहुत मूल्यवान प्रतीत हो रहा था। इसी समय उसने सामने के चबूतरे पर जयदेव को जाते देखा। वह चिल्लाया, काकाजी ! कुमार जयदेव महाराज !"

बाल-राजा जयदेव अभिमान से जा रहा था। उसने भवें तानकर त्रिभुवन की ओर देखा।

"काका जी, दरवाजे बन्द हो गये हैं, मुझे बाहर जाने दीजिए। महारानी जी व्यस्त हैं मिलती नहीं हैं।"

जयदेव कुमार को बहुत कम जानता था, परन्तु परसों रात चारण के यहाँ वह इस लड़के को मीनलदेवी का साहस पूछते देख चुका था। उसने सत्ता के शासक के रौब से पूछा, "कौन हो तुम ?"

"मुझे पहचानते नहीं हैं, यह भाग्य की लीला है। मैं मण्डलाधिकारी का पुत्र त्रिभुवनपाल हूँ। मुझे बाहर जाने दें।"

जयदेव मीनलदेवी का शिष्य था, पर माँ की तरह साहसी नहीं, डरपोक था। त्रिभुवन के शौर्य, साहस को देख उसे ईर्ष्या हुई। तिरस्कार से बोला,

"तुम परसों माताजी की हिम्मत पूछ रहे थे। अब उसका मजा चखो।"

त्रिभुवन ने समझाने के ढंग से कहा, "आपको यह शोभा नहीं देता है। मैं भीमदेव का पोता होकर भीख माँग रहा हूँ।"

जयदेव ने व्यंग किया, "तुम्हारा बाप अपने को सर्वोत्कृष्ट वीर कहता है, और तुम भीख माँग रहे हो?"

बड़ी कठिनाई से त्रिभुवन ने क्रोध दबाया, "बड़ों की बात बड़े जानें, महाराज! मैं तो केवल पाटन से बाहर जाना चाहता हूँ।"

नादान राजा हँसा, "क्यों क्या बहारवटिया बनना है?"

"जयदेव महाराज, सोलंकियों को बहारवटिया बनने में अभी देर है। आपका पद मुझसे बहुत ऊँचा है, पर मैं आपके ताने सहने नहीं आया हूँ।"

"यह प्रार्थना करने आये हो! माताजी क्या कहेंगी, बाद में देखा जायेगा। कल्याणमल्ल, इसे अभी पकड़ लो।"

त्रिभुवन की आँखें तीक्ष्ण हो गयीं। तलवार की मूठ पर हाथ रखता हुआ बोला, "मुझे जीवित पकड़ने का साहस कौन करता है?"

कल्याणमल्ल और अन्य सैनिक आदर के साथ दूर खड़े रहे। भीमदेव के पोते को पकड़ने की हिम्मत किसी ने न की।

"ठहरो, मैं ही पकड़ता हूँ।" कहकर जयदेव ने तलवार खींच ली। खुशामदी सामन्तों के कहने से वह अपने को महारथी समझने लगा था। कदम बढ़ाकर उसने तलवार तान ली और "कल्याणमल्ल" ही कह सका था कि अज्ञात दिशा से एक तीर आकर उसके दाहिने हाथ में घुस गया। सबने पीछे की ओर देखा, त्रिभुवन ने भी पीछे की ओर दृष्टि की। जयदेव की तलवार नीचे गिर पड़ी और हाथ से रक्त बहने लगा। क्रोधित होकर वह चिल्लाया, "इस हरमखोर को पकड़ क्यों नहीं लेते? मारो इसको।"

एक सिपाही राजा के हाथ पर पट्टी बाँधने लगा और सिपाही त्रिभुवन की ओर बढ़े।

कल्याणमल्ल ने त्रिभुवन से कहा, "भैया, इस समय आधीन हो जाइये। महारानी जी को फिर समझ लिया जायेगा।"

"मल्लराज सोलंकियों को दूसरों को पछाड़ देना आता है, आधीन होना

नहीं, देखता हूँ, मुझे कौन पकड़ता है ?"

मीनलदेवी ने यह देखा और हंसा को बुलाकर कहा, "यहाँ आओ, एक चीज दिखलाऊँ।"

हंसा जाली के पास गयी, "क्या देखूं।"

"देखो, उस लड़के को पहचानती हो जो तलवार लेकर खड़ा है और जिसे पकड़ने सिपाही बढ़ रहे है ?"

हंसा ने कुछ क्षण देखा। निद्रा से जागी हुई-सी दशा में उसने कहा, "न जाने कौन है ? मुझे क्या मतलब ?"

"क्या तुम नहीं पहचानतीं ?"

"नहीं। है कौन वह ?" त्रिभूवन का व्यक्तित्व हंसा के हृदय में ममता उत्पन्न कर रहा था।

"वह है तुम्हारा लड़का, त्रिभुवन !"

पागलों की तरह हंसा ने आँखें फाड़ीं, "मेरा त्रिभुवन। तुम तो कहती थीं, वह बचपन में ही मर गया।"

"नहीं, वही जीवित था। अपने पिता के साथ है। देखो, सिपाही उसे मारने को आगे बढ़ रहे हैं। अगर बेटे का जीवन चाहती हो तो मण्डलाधिकारी के पास जाकर उन्हें पाटन आने से रोको। सिर्फ दो दिन रोक रखो, बस।"

हंसा विलख उठी। वह उलझन में पड़ गयी—"मेरा बेटा त्रिभुवन। पन्द्रह वर्षों बाद मिला और वह भी मरने की घड़ी में। देखो कैसा सिंह जैसा लड़ रहा है।" उछलते हुए वक्षस्थल को उसने हाथ से दबा लिया, "नहीं, महारानी उसे बचा लो।"

"पहले वचन दो। पति की सौगन्ध खाओ।"

"चांडालिनी ! राक्षसी ! उसे बचा। मैं तैयार हूं।"

रानी वचन लेकर अगले कमरे में आयी। खुली हुई खिड़की से उसने आवाज दी, "कल्याण ! कल्याण ! ठहरो, रुक जाओ।"

सब रुक गये। त्रिभुवन घायल हो गया था, फिर भी उसमें जोश कम नहीं हुआ था। उसने भी ऊपर देखा और तलवार रोक ली। अर्द्धमूर्छितावस्था में उसने मीनल को पहचानने की चेष्टा की। पीछे दूसरी स्त्री आयी। न जानते

हुए भी त्रिभुवन को वह परिचित-सी लगी। स्त्री त्रिभुवन से लिपट गयी और उसका चुम्बन किया। त्रिभुवन के आगे धरती घूम रही थी, फिर भी वह हँस गया। इस लड़ाई के बीच यह कैसा दुलार! इतने में एक लड़की आयी, त्रिभुवन उसे पहचानने का प्रयत्न करने लगा, तभी उसने एक स्वर सुना—"मेरे बेटे!"

त्रिभुवन हँसा। उसकी माँ तो बचपन में ही मर गयी थी। फिर उसने पूछा, "तुम कौन हो?"

"मैं, हंसा।" स्वर सुनाई दिया।

त्रिभुवन के आगे अंधेरा छा गया। उसे कुछ और सुध नहीं रही।

बहुत देर के बाद त्रिभुवन को होश आया तो उसने अपने को कमरे में पाया। उसके वक्ष पर एक स्त्री का स्नेहपूर्ण हाथ रखा था। त्रिभुवन को लगा, जैसे उस स्त्री को पहले कहीं देखा है। धीरे से उसने कहा, "माँ!" और वह अचेत हो गया। स्त्री उससे लिपट गयी।

मीनलदेवी आकर निश्चल स्वर में बोलीं, "हंसा, यहाँ व्यर्थ समय न गँवाओ। समय जा रहा है, अब तुम जाओ।"

हंसा ने विकलता से कहा, "तुम्हारे पास असीम धन-दौलत है। मुझ निर्धन पर भी दो पैसे रहने दो।"

मीनलदेवी कठोर हो आयी, "यह कैसे होगा? मंडलाधिकारी मेरल पहुंच गये होंगे। चलो, उठो। यति तुम्हारे साथ जायेंगे।"

"केवल एक पल!" दयनीय मुख से हंसा ने कहा।

"अच्छा मैं पालकी तैयार कराती हूँ, तुम तैयार हो जाओ।" अचल दृष्टि से देख रानी चली गयी।

हंसा की स्थिति वर्णन से बाहर थी। पन्द्रह वर्षों से उसके हृदय की सरिता स्नेह-जल से विहिन शुष्क होकर पड़ी है। पति और पुत्र के वियोग में तड़प रही है। आज पति से मिलने की आशा वहाँ जाग्रत हो गई। पुत्र, जिसे वह मृत समझ बैठी थी, आज जीवित रूप में उसके सामने आया है। पुत्र के प्यार की वजह से उसने पति के उद्योग को समाप्त करना स्वीकार कर लिया। वात्सल्य भाव में चूर वह बार-बार बेटे का मुख चूम रही थी। पीछे की

ओर एक परछाईं देख, हंसा ने मुड़कर देखा, पन्द्रह-सोलह वर्ष की एक लड़की सामने खड़ी है।

"आप त्रिभुवन की माता हैं ?"

"हाँ बेटी। लेकिन तुम ?"

"मैं मीनलदेवी की भतीजी हूँ।"

"अच्छा।" हंसा त्रिभुवन की ओर देख काँप उठी।

"आप बिलकुल न घबराइये। बुआजी की अपेक्षा मैं त्रिभुवनपाल की अधिक अपनी हूं।"

"तुम्हारा नाम ?" हंसा ने उसके निर्दोष और सलोने मुख को देखकर पूछा।

"प्रसन्न।"

"बेटी, मुझे पर दैव-कोप है। बेटे को अकेला छोड़कर जा रही हूँ—"

"मेरे रहते त्रिभुवनपाल पर कोई आँच नहीं आयेगी।"

"बिना माँ के बच्चे की इच्छाएँ पूरी करना, बेटी।" हंसा की आँखों में आशा-भरे आँसू आ गये।

प्रसन्न उसके आँसू पोंछते हुए बोली, "आपका आशीर्वाद चाहिए।"

हंसा ने उसे गले से लगाकर कहा, "मेरे दु:ख के बराबर ही तुम्हें सुख मिले।" और त्रिभुवन को चूमा।

तभी मीनलदेवी की पुकार आयी और हृदय में आह दबाये हंसा वहाँ से चली।

: १७ :

मीनलदेवी ने कहा, "आनन्दसूरि आधी दूर तक तुम्हारे साथ जायेंगे हंसा, लेकिन अपने वचन को पूरा करना।"

"हंसा वचन तोड़ना नहीं जानती। मैं अपने हाथों अपने वंश का नाश करने के लिए ही पैदा हुई हूँ।"

इस समय हंसा ने राजपूत वेष धारण कर रखा था।

"यति जी, संध्या समय तक लौट कर चाँपानेरी दरवाजे के बाहर मिलियेगा।" मीनल ने आनन्दसूरि से कहा।

रानी इस समय पूरी कोशिश में थी कि मुंजाल और मंडलाधिकारी किसी भी तरह न मिलने पायें। सोचती हुई वह त्रिभुवन के कमरे की ओर बढ़ी। परन्तु वहाँ जाकर उसका मिजाज बिगड़ गया। पलंग पर नीचे प्रसन्न बैठी हुई त्रिभुवन के हाथ को बार-बार छाती से लगा रही थी।

तीव्र स्वर में रानी ने पूछा, "क्या कर रही हो प्रसन्न ?"

रानी को देखकर प्रसन्न लज्जित हो गयी।

"तू भी बेकाबू होती जा रही है। चल तैयार हो जा। शायद आज रात को तुझे यात्रा करनी पड़ जाय।"

प्रसन्न घबराती हुई बोली, "मुझे ? मैं कहाँ जाऊंगी।"

"तेरा धर्म मेरी आज्ञा का पालन करना है, प्रश्न पूछना नहीं।"

प्रसन्न ने त्रिभुवन की ओर संकेत करके कहा, "बुआजी, मेरा धर्म इनके पास रहना है। इनकी माँ इन्हें मेरे भरोसे छोड़ गयी है।"

मीनल ने कठोर होकर कहा, "यह नहीं हो सकता। तेरा अभी बहुत काम है। याद है, कुछ दिन पहले मैंने तुझ से क्या कहा था ?"

प्रसन्न कुछ साहस करके बोली, "वह मुझे नहीं चाहिये। भाड़ में जाय अवन्ति। ये जब तक ठीक नहीं हो जायेंगे, मैं यहीं रहूँगी।"

कुछ शंका से मीनल ने पूछा, "लेकिन, इनसे तेरा क्या सम्बन्ध ?"

"ये मेरे मायके के ताज हैं।"

"ओह ! क्या मालवा अच्छा नहीं लगा जो इस पर लट्टू हो गयी ?"

"इसका मतलब यह है कि मेरी सारी योजनायें खाक हो जायें ? नहीं। लड़की, अगर तू संध्या तक सीधे-सीधे तैयार न हो गई तो मुझे जुल्म और अत्याचार का सहारा लेना पड़ेगा।" क्रोधित होकर मीनलदेवी चली गयीं।

प्रसन्न मीनल से डरती भी थी। वह उलझन में पड़ गयी कि क्या करे। आतुरता से वह ऊपर गयी और बारहट से सब बातें कह उसे त्रिभुवन के पास

बैठने को विवश किया। बूढ़ा तैयार हो गया, लेकिन एक बात बोला, "बिना आँखों के करूंगा क्या किसी को मेरे पास बिठा दे, बेटी।"

"किसे बुलाऊँ? वाचस्पति जी को बुलादूं?" विचारती हुई प्रसन्न बोली।

"हाँ, उन्हें कह आ और चल मुझे पहुँचा दे।"

कुछ कांपती सी प्रसन्न बोली, "मेरी चिन्ता नहीं है। परन्तु त्रिभुवन की सेवा-सुश्रुषा में कमी न हो।"

"चिंता न कर बिटिया! मैं भी थोड़ा वैद्य हूँ। कल ही त्रिभुवन ठीक हो जायेगा।"

बारहट के बताये दवा के डिब्बे को उठाकर प्रसन्न ने उसे दिया और वाचस्पति को बुलाने चली गयी।

वाचस्पत संस्कृति की कोई किताब पढ़ रहे थे। वे प्रसन्न के साथ चले आये। शाम होने पर एक नौकर प्रसन्न को खाने के लिए बुलाने आया। जयदेव मीनल के कमरे में बैठा भोजन कर रहा था। क्रोधित स्वर में रानी ने प्रसन्न से कहा, "भोजन कर ले।"

प्रसन्न न समझ सकी कि भोजन आज इतनी जल्दी क्यों खाया जा रहा है। थोड़ा-सा भोजन कर वह उठी और त्रिभुवन के पास आयी। उसे चक्कर सा आने लगा। पहले इसे उसने थकान समझा। वह झूले पर बैठी और फिर लेट गयी। उसे लगा कि जैसे कोई नशा चढ़ रहा है। थोड़ी देर में वह गहरी निद्रा में खो गयी।

: १८ :

आज की रात राजमल में सब बेचैन थे। हृदय में एक अज्ञात भय लिए वे चुपचाप अपने माल असबाब को किसी सुरक्षित स्थान पर रखते और अपने शस्त्र तेज कर रहे थे। आधी रात के समय राजमहल के पीछे की ओर तीन मजबूत आदमी आ खड़े हुए और किसी की प्रतिक्षा करने लगे। थोड़ी देर बाद चौथा व्यक्ति आया। चारों के घोड़े कुछ ही दूर पर खड़े थे। नवागन्तुक का स्वर फूटा, "हमारे पहुँचते ही वह खिड़की खोल देना।"

"अब चलिए महाराज, देर न कीजिए।" दूसरा व्यक्ति बोला।

नवागन्तुक ने कहा, "रायमल्ल जी, आप घोड़ों के पास रहें। हम तीनों जायेंगे।"

रायमल्ल बोला, "चलो, ठीक है। मुझे भी ले चलते तो अच्छा रहता।"

"चिन्ता की कोई बात नहीं। कहता हुआ वह व्यक्ति वृक्ष की ओट में दीवार के पास वाली खिड़की खोलने का यत्न करने लगा, पर खिड़की न खुली।"

"रत्नसिंह, कोई गड़बड़ी मालूम होती है।"

"क्यों?"

"इस खिड़की को खुली रखने को कहा था, पर यह बन्द है। निराश होकर उस बूढ़े व्यक्ति ने कहा, "अब क्या किया जाय?"

"चलो, लौट चलें।"

"तुझे प्राण प्यारे हों तो लौट जा। या तो हम अपना कार्य पूरा करेंगे या फिर मर मिटेंगे। हमसे ऐसी बात मत कहना। बूढ़ा विकराल होकर बोला।"

तीसरे ने कहा, "तब क्या किया जाय?"

"इतने बड़े महल में कहीं तो कोई खिड़की खुली होगी।" कहकर बूढ़ा इधर-उधर देखने लगा, परन्तु निराशा ही मिली। कुछ दूर जाने पर रत्नसिंह ने बूढ़े को एक झरोखे से बाहर निकलती हुई रस्सी दिखलाई। यह वही रस्सी थी, जिसे त्रिभुवन के लिए प्रसन्न ने बांधी थी और खोलना वह भूल गयी थी। हर्षित होकर बूढ़े ने छलांग मारी और रस्सी पकड़ सरसराता हुआ ऊपर चढ़ गया। पीछे और साथी भी चढ़ गये। औजारों से उन्होंने दरवाजों में सेंध कर अन्दर से कुण्डी खोल ली और चुपचाप मीनलदेवी के कमरे की ओर चले। इस समय चारों ओर शांति छाई हुई थी।

कुमार जयदेव के पलंग के पास जाकर आवेश में बूढ़े ने उसे टटोला, पर यह क्या पलंग खाली था। बूढ़े की आंखों से आग बरसने लगी। वह दूसरे पलंग के पास जाकर कान लगाये, झुककर देखता रहा, उस पर भी कोई नहीं था।

"रतन, दोनों भाग गए।"

"हाँ ?"

"सच। हमारी बात उन्हें पता चल गयी। अब यहाँ से भाग निकलने के सिवा कोई चारा नहीं।" दोनों साथियों को धकेल वह दरवाजे के पास पहुँचा। लेकिन दरवाजे बन्द। बूढ़ा बड़बड़ाया, "मारे गये।" तेजी से वह दूसरे दरवाजे के पास गया, पर वह भी बन्द था। परेशान होकर वह खिड़की पर गया। कोट से बाहर निकलने वाली खिड़कियाँ इतनी ऊँची थीं कि कूदी नहीं जा सकती थीं। दूसरी ओर की खिड़कियाँ अन्दर के चौक में पड़ती थीं जहाँ, पाँच-छः सिपाही नंगी तलवारें लिये पहरा दे रहे थे।

एक साथी ने कहा, "अब क्या होगा, महाराज ? सब ओर से फँस गये।"

झूठे साहस से बूढ़ा बोला, "अभी तो सारी रात सोचने को मिली है, कोई रास्ता ढूंढ़ निकालेंगे। रतन, जाओ, इन दरवाजों को अन्दर से भी बन्द कर लो।"

रत्नसिंह ने वैसा ही किया। बूढ़े ने कहा, "एक रास्ता सूझा है—इस झूले की छड़ें छत तक गई हैं। इस पर चढ़ कर कुछ तख्ते तोड़ दिए जायें तो काम चल सकता है।" लेकिन झूले के पास जाने से पहले बूढ़े को छत पर कुछ व्यक्तियों के चलने की आवाज़ सुनाई दी।

रत्नसिंह ने पूछा, "मदनपाल जी, अब ?"

कुछ भयभीत होते हुए मदनपाल ने कहा, मीनलदेवी के हाथों में पड़ गये तो वे हाथी के पैरों तले रौंदवा देंगी। अब तो बचने के दो ही रास्ते हैं।"

"कौन-से ?"

"या तो इस खिड़की से कूद पड़ें और नीचे वालों को छका कर उस खिड़की तक जा पहुँचें, या फिर सवेरे कैद करने आने वालों से लड़कर रास्ता निकालें।"

"परन्तु काकाजी, यह तो मृत्यु के मार्ग हैं। इससे अच्छा तो यही है कि कल सवेरे मीनलदेवी के चरण पकड़ क्षमा माँग लें। हमारी जागीर भले ही जब्त हो जाए, पर प्राण तो बच जायेंगे।"

"लड़के, तू पागल हो गया है ? मदनपाल सिर झुकाएगा ?"

"तो महाराज, हम तो इस कच्ची उम्र में ही आप बूढ़े के साथ मारे जाएँगे।"

दाँत किटकिटाता हुआ बूढ़ा बोला, "अब बकवास बन्द करो। जैसा मैं करूँ वैसा ही करना होगा, नहीं तो पहले तुम्हें ही खत्म कर दूँगा।"

दोनों युवक कुछ भय खा गये और सोने का ढंग करने लगे। प्रातः होते ही मदनपाल ने उन्हें एक-एक ठोकर लगाई, "उठो वे। अब सच्चा राजपूती धर्म दिखाने का अवसर आ गया है।"

भतीजे ने कहा, "काका, अब तो मान जाओ। हमें क्षमा मिल जाएगी।"

"कायर! डरपोक! तेरी माँ तेरी जगह पत्थर जनती तो कहीं वेहतर था। अगर जिन्दगी चाहता है तो चल, खड़ा हो।" आवेश से काँपता हुआ बूढ़ा दोनों युवकों को साथ ले, दरवाजे के खुलने की प्रतीक्षा करने लगा।

बाहर से कुण्डी खुली और अन्दर से द्वार बन्द देख दरवाजा तोड़ने का उपाय होने लगा। मदनपाल मरने-मारने पर उतारू हो रहा था। उसने कुण्डी खोल दी और कुछ मशालों और तलवारों को देख वह बाघ की तरह टूट पड़ा, "जय सोमनाथ!"

बीस-पच्चीस तलवारों से वह अकेला लड़ रहा था। दोनों युवक कायर बने पीछे खड़े थे। मदनपाल असीम जोश से तलवार से रास्ता बनाता गया। पन्द्रह तलवारों की नोकों ने उसे वहीं ढेर कर दिया।

सब लोग घबरा गए—रानी क्या कहेंगी? सब काँपने लगे। चबूतरे पर शान्तिचन्द्र तलवार लिये खड़ा था। लोग बातें कर रहे थे कि रात को कुमार और मीनलदेवी पाटन छोड़ गये।

महल के दरवाजे पर शान्तिचन्द्र ने फिर कड़ा पहरा लगवा दिया।

: १६ :

प्रसन्न ने धीरे-धीरे आँखें खोलीं। उसे सिर में दर्द-सा महसूस हुआ। चारों ओर अन्धकार दिखाई दिया। वह समझ गयी कि मीनलदेवी ने कोई नशीली चीज़ खिला कर उसे बेहोश कर पालकी में लिटा दिया। इस समय वह कहीं और भेज दी गई है। कहीं मालवराज के पास तो नहीं ? उसे लगा, जैसे आस-पास घोड़े चल रहे हैं। अपनी पालकी उसे झूलती-सी प्रतीत हुई।

इतने में सब रुक गये। प्रसन्न की पालकी जमीन पर रख दी गई। उसे ऐसा लगा, कि जैसे कोई मशाल लेकर उसके पास आ रहा है। आने वाले ने पर्दा उठाया और झुककर प्रसन्न की ओर देखा और फिर चला गया। प्रसन्न ने अधखुली आँखों से देखा—बुआ जी, मीनलदेवी ! गुजरात की रानी और यहाँ ? प्रसन्न सोचने लगी, पाटन से बाहर कहाँ भगाया जा रहा है मुझे ? तभी उसे त्रिभुवन का ख्याल आया। त्रिभुवन भी कहीं साथ तो नहीं जा रहा है या वहीं तड़प रहा होगा। कैसे लौटकर पाटन पहुँचा जाय ? सोचकर वह इधर-उधर देख पालकी से उठी और एक पेड़ की आड़ में खड़ी हो गयी। कहार दूसरी ओर बैठे हुए पान खा रहे थे।

इसी समय उसने मीनलदेवी को आनन्दसूरि और सामन्त मुरारपाल के साथ आते देखा। वे लोग प्रसन्न की ओर बढ़े। प्रसन्न भय से कांप उठी—अब क्या होगा ? परन्तु वे किसी गम्भीर वार्तालाप में मग्न थे, तो इधर नहीं देख पाये।

मुरारपाल कह रहा था, "महारानी जी, पाटन में उपद्रव होकर रहेगा। आप के वहाँ से निकल आने की खबर सुनकर पाटनवासी चुप नहीं बैठेंगे।"

मीनल गुस्से से बोली, "लीलाधर वैद्य और मुंजाल मेहता भी यही कहते थे और यही तुम कह रहे हो ? क्या रानी परकोटे से बाहर भी न जाए ?"

"अधिक बोलने के क्षमा कीजियेगा, महारानी जी ! किन्तु राजा कर्णदेव और आपके नाम पर पाटन की प्रजा कुछ भी करने को तैयार है, लेकिन अब

उन्हें ऐसा लगेगा कि आप पाटन की शान पर चोट करने जा रही हैं तो—"

कठोरतापूर्वक रानी ने कहा, "तुम सब को यह कहने की टेव पड़ी हुई है।"

"अब नहीं कहूँगा, क्षमा कीजियेगा।"

मीनलदेवी ने नम्र होकर कहा, "मेरा मतलब यह है मुरारपाल कि हम कोई भी ऐसी बात नहीं करेंगे जो पाटन में उपद्रव खड़ा हो जाय। मैं मधुपुर की सेना को आधीन करके लौट आऊँगी।"

अब यति बोला, "मुरारपाल जी, परसों तक आप पाटन मेंही रहें। तब तक महारानी जी मुंजाल को वश में कर लेंगी और देवप्रसाद का सामना करने को चन्द्रावती की सेना भेजकर कुछ सिपाहियों के साथ पाटन आ जायेंगी।"

"लेकिन, मैं पाटन में क्या करूँगा ?"

"तुम चाँपानेरी द्वार की यह चाबी ले जाओ। ईश्वर न करे, अगर कोई संकट आ गया तो यह तुम्हारे बड़े काम आएगी। परसों शाम तक मैं आ ही जाऊँगी। अब हम लोग जाते हैं। सम्भव हुआ तो मधुपुर की कुछ सेना पाटन भेज दी जाएगी, जिससे समय पर काम आए।" कहकर रानी घूमकर चल पड़ी।

सौभाग्यवश रानी प्रसन्न की पालकी की ओर नहीं गयी। सीधे अपनी पालकी में बैठी और मशालों के साथ-साथ पालकी चली गयी। प्रसन्न के हृदय की धड़कन कुछ कम हुई।

मुरारपाल घोड़े पर हाथ फेरता हुआ वहीं खड़ा था। वह वीर था पाटन जाकर चुप बैठे रहना उसे अच्छा नहीं लगा, लेकिन यह रानी का आदेश था। अचानक उसकी विचारधारा टूटी। सामने एक सुन्दरी बाला आ खड़ी हुई। मुरारपाल को लगा, कहीं यह स्वप्न तो नहीं है ?

"इस उम्र में सोच में न पड़ना चाहिए, राजपूतराज।"

"मुरारपाल घबराकर इधर-उधर देखने लगा। उसने तलवार पर हाथ रखा। अभी वह धांड से नया ही आया था, अतः रानी की असीम सुन्दर भतीजी को न पहचान सका। बोला, "कौन ?"

प्रसन्न खिलखिलाकर हँस पड़ी, "पूछने का यह कैसा अशिष्ट तरीका है ?"

मुरारपाल का डर दूर हो गया, "कौन हो बहन ? इस समय यहाँ अकेली

कैसे ?"

प्रसन्न किंचित मुस्कराई, "आपके साथ पाटन चलने के लिए। चलिए, बात-ही-बात में रात न बिताइये।"

"पर तुम हो कौन ?"

'एक निरावलम्ब कन्या।"

हँस कर मुरारपाल बोला, "जब तक मुझ पर विश्वास करके सब हाल न बताओगी, तब तक कुछ न करूँगा। अभी तुम्हें घोड़े पर बिठाऊँ और तुम लेकर गायब हो जाओ ?"

इस लावण्यमयी बाला को देख मुरारपाल मोहित हो गया था। एकान्त जगह, यह मादक नशा, यह मुख पर तेज और आकर्षण—।

"राजपूतराज, क्या यह विश्वास कम है कि मैं तुम्हारे साथ इस समय अकेली चलने को राजी हूँ !"

मुरारपाल ने मजाक की, "मेरे साथ चले बिना कोई चारा भी तो नहीं है। अच्छी बात है, न बताती हो तो न बताओ पर तुम्हें पाटन में जाना कहाँ है ?"

"आप बुरा न मानें। समय आने पर सब बतला दूँगी। इस समय मुझे पाटन ले चलें तो आभार मानूंगी।"

मुरारपाल ने घोड़े की लगाम खींची, 'अच्छा, तो आओ, बिठा दूँ।"

उसका दिल प्रसन्न को निकट आता देख धड़क उठा।

"धन्यवाद ! मुझे बैठना आता है।" कहकर प्रसन्न घोड़े पर जा बैठी।

मुरारपाल ने पूछा, "तुम क्षत्रिय हो ?"

"जी।"

"ब्याही हो ?"

"जी नहीं।" प्रसन्न खिलखिला पड़ी।

मुरारपाल घोड़े पर आगे जा बैठा और घोड़ा पाटन की ओर दौड़ पड़ा।

: २० :

देवप्रसाद जब उठा तो नन्हें बालक के जैसा उत्साह और प्रसन्नता उसके हृदय में उठ रही थी। अब तक मुंजाल की अनोखी नीति ने उसे जकड़ रखा था पर आज बात सीधी पड़ गई थी और देवप्रसाद को हाथ दिखाने का मौका मिला था। इस समय वह मंडुकेश्वर के मन्दिर में ठहरा था। अंधेरे-अंधेरे उठकर उसने महादेव जी के चरणों में विल्व-पत्र चढ़ाये, पूजा की और तैयार हो गया। थोड़ी देर बाद उसे मुंजाल से मिलना था। नीचे, साथ जाने वाले सामन्त अपने घोड़ों को कस रहे थे। देवप्रसाद चाहते थे कि मुंजाल से परामर्श करके दोनों सेनाओं को मिलाकर पाटन के पास पड़ाव डाल दिया जाय। जब तक चन्द्रावती की सेना डेरा डाले हुए थी, तब तक सुलह से काम हो सकता था। उसका विचार था कि मुंजाल की सहायता से या तो चन्द्रावती की सेना उसके साथ हो जायेगी या लौट जायेगी; फिर पाटन के नजदीक जाकर डेरा डालना सरल हो जायेगा और तंग आकर मीनलदेवी कुछ झुकेगी। मुंजाल को अपने पक्ष में पाकर देवप्रसाद निश्चित था। तैयार होकर वह नीचे आया तो कुछ सामन्तों को अपनी प्रतीक्षा में खड़े देखा। मूँछों पर हाथ फेरते हुए उसने कहा, "कहिए गम्भीरमल्ल जी, पाटन की ओर कूच कब होगा?" गम्भीरमल्ल मंडलाधिकारी का सहायक सामन्त था।

"महाराज, वल्लभसेन मेरल से रवाना होने की तैयारी कर रहे हैं। आप मुंजाल से मिल लेते तो कल सवेरे हम लोग चल पड़ते।"

"परन्तु, कहीं वल्लभसेन चन्द्रावती की सेना से लड़ न मरे।"

"नहीं जी! लीजिए, आपकी घोड़ी आ गई। चलिए, उजाला होने लगा है।"

सफेद रंग की सुन्दर-सी घोड़ी अपने मालिक के सामने आकर हिनहिनाने लगी।

देवप्रसाद ने दुलार से उसे थपथपाया, "क्यों बेटी रूपा?" और वह बैठने ही वाले थे कि सामने से पाँच-छः सवार मशाल लिए आते दिखाई दिये। उनके साथ एक पालकी भी थी। देवप्रसाद ने आश्चर्यपूर्ण स्वर में कहा, "कौन?

वस्तुचन्द ? क्यों, क्या बात है !"

"स्वामी, महारानी जी ने आशीर्वाद कहलाया है।"

"अच्छा ! और ?"

"साथ में यह भेंट भेजी है।"

"क्या ?" हैरानी से देवप्रसाद ने पालकी की ओर देखा। वह सोच रहा था कि मीनलदेवी ने यह क्या मजाक की है ! वस्तुचन्द्र ने पालकी का परदा हटा दिया। देखकर देवप्रसाद को कंपकंपी छूट गयी—हंसा पालकी से बाहर निकल रही थी। देवप्रसाद की आंखों के आगे की धरती घूमने लगी। धीरे-धीरे उसने नजरें उठायीं और अपनी पन्द्रह वर्षों से बिछुड़ी हुई प्रियतमा को देखा।

हंसा के आंसू झड़ी लगा रहे थे और शरीर थरथर कांप रहा था। मंडलाधिकारी को कुछ सुध आयी, बोला, "हंसा !"

हंसा ने कुछ बोलना चाहा। प्रेम-विभोर हो उसने ऊपर को हाथ किये और भूमि पर गिर पड़ी। दौड़कर मंडलाधिकारी ने उसे उठाकर बांहों में ले लिया और चबूतरे पर खड़े पुजारी से कहा, "महाराज, दौड़कर अपनी पत्नि को बुला लाओ तो !" कहकर मंडलाधिकारी हंसा को मंदिर में ले गया। सब लोगों में हलचल मच गई। देवप्रसाद चीखने लगा और बहुत से लोग हंसा को होश में लाने की कोशिश करने लगे।

रवि की प्रारम्भिक किरणें आकाश पर छाने लगीं। गम्भीरमल ने आकर देवप्रसाद से कहा, "समय निकला जा रहा है। मुंजाल राह देखते होंगे।"

परेशानी से देवप्रसाद ने कहा, "समय निकल जाने दो। क्या किया जाय !"

"किन्तु महारज, आपकी और मुंजाल की इस समय भेंट पर ही हम सब का भविष्य निर्भर है। आप चलिए तो, हंसा देवी थोड़ी ही देर में होश में आ जायेंगी।"

क्रोधित होकर देवप्रसाद ने पैर पटका, "भले ही राज्य चला जाये, मुझे परवाह नहीं। मेरे लिए मेरी हंसा ही बहुत है।"

"इतनी अधीरता न लाइये, महाराज। कहिए तो मुंजाल मन्त्री से यहीं

ग्राने के लिए कह ग्राऊँ ?"

देवप्रसाद यह कहकर एक ग्रोर को चला गया, "मुंजाल ग्राना चाहें तो यह उनका घर है।"

बाजी बिगड़ती देख गम्भीरमल्ल निराश हो गया। सोचा उसने, नीचे खड़े सामन्त ग्रब खीझ उठेंगे ग्रौर दूसरे, सेनापति के बिना मेरल की सेना भी बिना राजा की प्रजा हो जायेगी। नीचे जाकर सामन्तों से बोला, "मुंजाल मंत्री को यहीं बुला लाने के लिए कहा है।"

सचमुच ही सब लोग यह सुनकर निराश ग्रौर ग्रशक्त हो गये।

मण्डलाधिकारी ने सब लोगों को बिदा कर दिया ग्रौर कमरे का दरवाजा बन्द कर वह ग्रकेला हंसा का उपचार करने लगा।

धीरे-धीरे हंसा को होश ग्राया। ग्राँखें खोलते ही उसे पहले सब कुछ ग्रपरिचित-सा लगा, फिर उसे याद ग्राने लगा। हृदय पर स्नेह की रेखाएँ स्पष्ट होने लगीं। उसने धीमे स्वर में पुकारा, "प्राणनाथ !"

मंडलेश्वर ग्रानन्दमग्न हो हंसा से लिपट गया ग्रौर उस पर चुम्बनों की बौछार कर दी। हंसा विपत्तिकाल को भूलकर क्षण-भर के सुख में प्रफुल्लित हो स्वामी ही के विशाल मस्तक पर हाथ फेरने लगी। एक क्षण को दोनों प्रेम विभोर हो कुछ न बोले। फिर देवप्रसाद को स्मरण ग्राया, "तुम्हें मीनल काकी ने भेजा है ! ग्रोह, काकी कितनी भली हैं ! उनका यह उपकार···"

"स्वामी यह न कहिए। यह एक भारी प्रपंच था जो मुझे यहाँ लाया है।"

"कैसा प्रपंच ?" देवप्रसाद चौंका।

"स्वामी इस समय ग्राप क्या करने जा रहे थे ?"

"मैं तुम्हारे भाई मुंजाल से मिलने जा रहा था। क्यों ?"

"मीनल के पाप ने मुझे यहाँ भेजा है कि मैं ग्रापको उलझाए रखूं ग्रौर ग्राप मुंजाल से न मिल सकें, नहीं तो रानी की सत्ता छिन जाएगी।"

"पर रानी करेगी क्या ? ज्यादा-से-ज्यादा दो दिन की देर होगी। मैंने मुंजाल को बुलाने भेजा है, वह ग्राता ही होगा।" देवप्रसाद रानी के सारे षड्यन्त्र को समझ गया था। "तुम डरती क्यों हो, प्रिये ?"

"क्या कहूँ ? ग्रापके साथ रहती तो साहस कर पाती। किन्तु नाथ, ध्यान

रहे, मेरे लिए अपनी आन और मर्यादा न छोड़ना।"

"पागल हुई हो? मैं अब तुम्हें नहीं छोडूंगा। कितने अरसे के बाद हमारा मिलन हुआ है। अब साथ जियेंगे, साथ मरेंगे।" देवप्रसाद भावुकता में बहुत अधिक बह गया था।

लेकिन हमारा बच्चा; हमारी देहस्थली? मुझे उस राक्षसी का बहुत डर लग रहा है। मेरे पीछे कोई बखेड़ा न खड़ा हो।"

"घबराओ मत हंसा। सबों को ठिकाने लगा दूंगा। हमारा बेटा भी शेर का बच्चा है।"

"मैंने उसे अपने सामने लड़ते देखा है।" आवेश में हंसा ने कहा, "स्वामी वह बिल्कुल आपकी सूरत है।"

"कहाँ देखा? ठीक तो है वह?"

हंसा ने सारी घटना बताई।

"परवाह नहीं। बेटा स्वयं अपनी रक्षा कर लेगा। लेकिन यह लड़की प्रसन्न कौन है? मुझे तो कुछ चक्कर मालूम पड़ता है, तभी तो त्रिभुवन रोज चुपचाप पाटन खिसक जाया करता था" देवप्रसाद ने हँसकर कहा, "भला इसका बाप ही कौन-सा सीधा था।"

"आपको याद है, पहले-पहल हम दोनों भी सोमनाथ के मंदिर में मिले थे?"

मण्डलाधिकारी ने झुककर हंसा को चूमा, "क्यों नहीं? हंसा, तेरे बेटे के घर भी बेटा देखने का वक्त आयेगा।"

"जिन भगवान् की इच्छा। लेकिन आप योंही बैठे रहेंगे तो कुछ उलट-पलट हो जायेगी।"

"होने दो, प्रिये।"

"तब कैसे चलेगा?"

"चलेगा क्यों नहीं? मेरी अपनी आन, गुजरात, पाटन की शान का कुछ हो जाय, मुझे भय नहीं। लेकिन तुम्हारे होते हुए मैं अपने आपको शक्तिशाली महसूस करता हूँ।"

"यह बातें आपको शोभा नहीं देतीं, प्राणनाथ। दुनिया क्या कहेगी?"

"तुम्हारी गोद ही में मेरी दुनिया है।" देवप्रसाद ने उसकी गोद में सिर

रख दिया, "अब मुझे दुनिया की क्या आवश्यकता ?"

हंसा ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से अपने सर्वस्व की ओर देखा। आँसू भरी आँखें हृदय के प्रेम को बाहर प्रगट कर रही थीं। हंसा सुख के सागर में डूबी हुई आगामी विपत्ति से बेखबर हो गई। दोनों प्रेमी आवेश में एक-दूसरे से लिपट पड़े।

सूर्य अपनी गति से आगे बढ़ता रहा, सृष्टिक्रम में भी गतिरोध न हुआ। किन्तु युगल प्रणयी एक-दूसरे के आलिंगन में बंधे लेटे रहे।

रात्रि का आगमन हुआ। चन्द्रमा उन्हें पागल समझ मुस्करा पड़ा और अपनी अमृतमयी ज्योत्सना से उसने उन्हें और भी मादक कर दिया।

तभी हंसा ने कहा, "स्वामी, सेना का क्या होगा भैया तो अब तक आये नहीं।"

"जो होना है, होने दो रानी ! हमारा प्रेम अमर रहे, अटल रहे।"

अत्याचारी चन्द्रमा भूमि पर अपने साम्राज्य की दृढ़ता देखकर पुनः मुस्कराया और उन दोनों के ऊपर पड़ी हुई चाँदनी द्विगुणित हो गयी।

: २१ :

यति की चतुराई पूर्णिमा के चाँद की तरह सोलह कलाओं में विकसित होने लगी। चन्द्रावती की नई सेना की टुकड़ियाँ जगह-जगह मिलती गयीं और रानी को लगी कि वह सत्तावान बनती जा रही है। आनन्दसूरि रानी को तरह-तरह के उपाय बताता रहता। मधुपुर की सेना को कुछ आदेश दे दिये गये थे: नई सेना का कुछ हिस्सा कुछ दूरी पर पड़ा हुआ था और मुंजाल पर पहरा बिठा दिया गया था। दूत जब-तब आकर सूचनायें दे जाते थे।

अँधेरे-अँधेरे रानी मुंजाल का समाचार जानने के लिए बेचैन हो गयी। इसी समय उसे खबर मिली कि मुंजाल कुछ सिपाहियों के साथ द्याधेश्वरी माता के मन्दिर की ओर जाने वाला है। रानी डरी कि वहाँ जाकर मुंजाल देवप्रसाद से जरूर मिलेगा। क्या जीवन-भर का दास उससे अलग होकर शत्रु के पक्ष में हो जाएगा। नहीं, नहीं वह यह नहीं होने देगी। अगर वह इस थोड़ी-सी

सेना को लेकर बाघेश्वरी के रास्ते से मधुपुर जाए तो मुंजाल को रोक सकेगी। वह भी मुंजाल को अपनी सत्ता के आधीन कर सकेगी। यति को बुलाकर उसने कहा, "यति जी, अगर बाघेश्वरी होकर मधुपुर चलें तो कैसा हो?"

"उस रास्ते से देर बहुत हो जाएगी।"

"कोई परवाह नहीं।"

यति समझ गया। उसे यह देखकर तिरस्कार हुआ कि लोग अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं को क्यों धर्म-युद्ध में ले आते हैं। रानी से विवाद करना उसने ठीक न समझा, बोला, "परन्तु अब कुमार जयदेव को पालकी से निकाल कर घोड़े पर बिठाना ही ठीक होगा, इससे लोगों में जोश आएगा।"

"ठीक है।" कहकर रानी ने जयदेव को घोड़े पर बिठा दिया। प्रसन्न होकर जयदेव भी डंके और बाजों के साथ आगे-आगे चला।

अब कुछ उजाला होने लगा था और मधुपुर बिलकुल नजदीक आ गया। इसी समय दूर से घोड़ों की टापें सुनाई दीं। रानी का हृदय धड़क उठा। उसने यति को बुलाया, "यह किसके घोड़ों की टापें सुनाई दे रही हैं?"

"शायद मुंजाल मन्त्री मंडलाधिकारी से मिलने जा रहे हैं।—अब क्या किया जाय?"

किसी तरह उन्हें यहीं रोक दो। पर एक बात ध्यान रखिए, मुंजाल का बाल भी बाँका न होने पाए।"

अज्ञात तिरस्कार से यति ने कहा, "जो आज्ञा।"

आकाश की धूल बता रही थी कि घोड़े अब बहुत निकट आ गये हैं। मशालों का प्रकाश भी कुछ-कुछ दिखाई दे रहा था। रानी ने सब से आगे सफेद घोड़े पर सुशोभित मुंजाल को देखा। वह काँप उठी। उसका मुंजाल आज उसके विरुद्ध!

यति ने अपने सिपाहियों को सारे रास्ते पर फैला दिया था। मुंजाल ने यह देख घोड़ा रोक लिया। "रास्ता छोड़ दो।" उसने कठोर स्वर में कहा।

एक नायक ने उत्तर दिया, "यहाँ से कोई भी नहीं जा सकता।"

मुंजाल ने तीक्ष्ण दृष्टि से आगे खड़े सैनिकों की ओर देखा। वे पचास-

साठ रहे होंगे जब कि उसके पास कुल बीस सिपाही थे। उसने तिरस्कार से नायक की ओर देखा, "क्यों नहीं जा सकते ? तुम कौन हो ?"

"चन्द्रावती का नायक।"

"मुझे पहचानते हो ?"

"नहीं।"

"मैं चन्द्रावती की सेना का सेनापति हूँ। हटो, रास्ता छोड़ दो।"

नायक हंस पड़ा और उसने मुंजाल को हाथ की नंगी तलवार दिखलाई। मुंजाल की आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। उसने जोर से भाला नायक की छाती में भौंक दिया और पीछे अपने सैनिकों को देख चिल्लाया, 'जय सोमनाथ !"

उत्तर में उसके सिपाही भाले खींचकर विरोधी दल पर आक्रमण करने की तैयारी करने लगे। यति यह सब देख रहा था। धर्म के जोश में वह भी अंधा हो गया। उसे धर्म-विजय के दो विरोधी दिखाई पड़े—मुंजाल और देवप्रसाद। उसका बस चलता तो वह एक तीर से मुंजाल को समाप्त कर देता, परन्तु उसने रानी की मुंजाल के प्रति स्नेहपूर्ण दृष्टि भांप ली थी। अतः जयदेव को साथ लेकर वह आगे आ गया।

मुंजाल ने यति को देखा, जयदेव को पहचाना और फौरन उसका भाला नीचे झुक गया। उसके सिपाहियों ने उसका अनुसरण किया।

कुमार जयदेव अल्पावस्था में होते हुए भी कई बार बड़ी चतुराई से काम लेता था। आगे बढ़ उसने कहा, "कौन ? मुंजाल मेहता ? मेरा सामना कर रहे हो ?"

"क्षमा करना, कुमार। मैंने पहचाना नहीं। आप यहाँ कैसे ? मुझे सूचना तो भिजवायी होती ?"

यति ने मजाक के लहजे में कहा, "इतनी जल्दी कहाँ जा रहे हैं ?"

तिरस्कारपूर्वक मुंजाल बोला, "आपको मतलब ? आप बताइये यह छद्मवेष कब से धारण करने लगे हैं ?......किन्तु, महाराज क्षमा कीजिए। आप इधर से मधुपुर जाइए। मैं अभी लौटकर आता हूँ, बहुत जरूरी काम है।" कहते हुए मुंजाल ने घोड़े का मुँह फेर दिया।

मुंजाल से डरते हुए भी जयदेव उसका आदर करता था। परन्तु इस समय मुंजाल के दाँव-पेंच देखकर उसकी समझ में न आया क्या करे।

परन्तु यति बहुत योग्य और चतुर था। मुंजाल को रोक कर बोला, "मन्त्री जी, महारानी जी भी साथ हैं। उनसे तो मिलते जाइए।"

मुंजाल ने मुँह बिगाड़ कर कहा, "अभी तो जा रहा हूँ, फिर मिलूंगा।

जयदेव ने कहा, "नहीं, नहीं, माता जी से मिल लीजिये।"

"फिर···फिर···।"

इसी समय पीछे के सिपाहियों की कतार तोड़कर रानी की पालकी आ गयी। मुंजाल के आने और लड़ाई-सी हो जाने की खबर सुन उसकी उत्सुकता बढ़ गयी थी। मुंजाल ने रानी को आते देख बड़ी मुश्किल से अपना क्रोध दबाया। रानी का मुंजाल को योद्धा के वेष में देख जी भर आया परन्तु अपने को सँभाल वह आगे बढ़ आयी, "कौन ? मुंजाल मेहता ! तुम इस समय कैसे ?"

मुंजाल ने स्वस्थ होकर घोड़ा पालकी के पास बढ़ाया।

रानी ने सत्ता-अधिकार से धीमे से कहा, "मुंजाल, मैंने नहीं सोचा था कि तुम ऐसे निकलोगे। इस समय तुम कहाँ जा रहे हो ! यहाँ तुम मेरी रक्षा के लिए आए हो या दुश्मनी बढ़ाने के लिए ? तुम क्यों इस तरह मुझे देख रहे हो !"

मुंजाल गम्भीरता से रानी के मुख पर देखता रहा। अब तक उसे आशा थी कि रानी सीधे-सच्चे रास्ते पर आ जाएगी, परन्तु रानी स्वयं भयंकर परिणाम वाले कार्य कर रही थी। अकेला पाटन; उसकी अनुपस्थिति से क्रोधित देवप्रसाद; शोक को छोड़ पाटन से बाहर निकली हुई रानी के प्रति जनता को रोष; इन सब बातों से मुंजाल को लगा कि अब इस शासन का विनाश का समय आ गया है; अब सोलंकियों का पतन शुरू हो गया है। यही सोचकर उसने कहा, "देवी, इस समय आप अपने काम पर विचार नहीं कर रही हैं। अगर अब भी मुझ पर कुछ विश्वास हो तो मुझे जाने दीजिये, मैं दोपहर तक लौट आऊँगा।"

"कहाँ ? मेरे भतीजे से भेटने के लिए। मुंजाल, तुम मेरे वंश को नष्ट

कर अपने बहनोई को गद्दी पर बैठाना चाहते हो। है न यही बात ?"

बिल्कुल धीमे से मुंजाल ने कहा, 'देवी, पाटन की गद्दी पर या तो जयदेव बैठेगा या इसका बिल्कुल पतन हो जायेगा। मैं अपने जीते जी इसके अलावा कुछ नहीं होने दूंगा। पर, दुःख है कि आपकी बुद्धि उलटी हो गयी है।"

रानी ने अभिमान से सिर ऊपर उठाया। इस व्यक्ति पर उसे क्रोध हो आया। अधिकार के उन्माद में उसने भयंकरता से कहा, "मुंजाल तुम अपने बनियेपन पर ही उतर आये न ! मैंने इतने दिनों तक तुम्हें स्वतंत्रता दे रखी थी, क्या उसी का अनुचित लाभ उठा रहे हो ? जानते हो मैं कौन हूँ ?"

मुंजाल भयानक हँसी हँसा, "आप राजामाता हैं, मैं भूला नहीं हूँ। आप मेरे सामने बड़ी हुईं, शक्तिवान बनीं, चन्द्रपुर की कुमारी है और मेरे उपायों और बुद्धि के सहयोग से बनीं पाटन की रानी।" कहते हुए मुंजाल सिर झुकाकर धीरे से बोला, "और, इस समय···इस समय आप सोलंकियों के राज्य को राख में मिला देने वाली योगमाया हैं। मेरे विचार से कृतघ्न, अविश्वसनीय, स्नेह से दूर···। कुछ और कहूँ ?"

एक क्षण को रानी को ऐसा लगा कि उसे इस समय असहनीय क्रोध आ रहा है और शायद मुंजाल को वह अभी कच्चा चबा जायेगी। उसने आस-पास यति और अन्य सिपाहियों को खड़ा देखा। मुंजाल चौकन्ना हो गया। किसी तरह वह इस विपत्ति से बचना चाहता था। हाथ के भाले और धनुष-बाण को उसने भूमि पर रख दिया और जयदेव की ओर घूमकर बोला, "ये मेरे शस्त्र ले लो, महाराज ! इसका सदुपयोग करने से अमर हो जाओगे। मुझे अब इसकी जरूरत नहीं रही है। आनन्दसूरि, मुझे बन्दी बना लो।"

सब लोग हकबक से देखते रहे।

मीनलदेवी बोल उठीं, "हाँ आनन्दसूरि, मुंजाल को पकड़ लो। ये सब राजद्रोही पूरी सजा पायेंगे।"

कुछ देर सोचकर यति ते आगे बढ़ मुंजाल के घोड़े की लगाम पकड़ हाथ में ले ली। रानी ने कहा, "सूरज काफी चढ़ गया है। जल्दी से मधुपुर को चलो।"

सब लोग चल पड़े। कुछ देर बाद रानी ने यति को बुलाकर कहा, "यह काम तो पूरा हो गया, अब दूसरा बच गया। आप कुछ सिपाहियों के साथ मण्डुकेश्वर के रास्ते पर रहिये। किसी तरह मण्डलाधिकारी को वहीं रोक लेना चाहिए जिससे वल्लभसेन से न मिल सके। तब वह भी हार कर छिप जायेगा।"

"अच्छा, मैं पच्चीस-तीस सिपाही लेकर जाता हूँ।"

"हो सके तो दो-एक दिन मण्डलाधिकारी को बाहर न निकलने देना। तब तक मैं पाटन की ओर प्रस्थान कर लूं।"

"ठीक है। हमारा सेनापति मधुपुर सीमा पर आपकी पतीक्षा कर रहा है, वह आपके आदेश को मानेगा। आज पड़ाव तो विखराट के पास ही पड़ेगा न ?"

"हां, उस जगह से पाटन निकट भी रहेगा और दूर भी। अच्छा, अब देर न करो।"

यति वेग से मण्डुकेश्वर की ओर चला गया।

: २२ :

सारी रात अपने छज्जे पर बैठा हुआ उदा सोचता रहा कि ऐसे समय में उसके द्वार के आगे से जो दो पालकियाँ गयी हैं, वे कौन हैं ? इस समय तो एक पंछी भी पाटन के द्वार से बाहर नहीं जा सकता। उदा को लगा, इस अवसर से लाभ उठाकर अपना भाग्य उदय कर सकता है।

उदा मारवाड़ का निवासी था। सत्रह वर्ष की अवस्था में अनाथ उदा एक कमीज-धोती पहन कर अपने गाँव से निकल पड़ा था, परन्तु उसे अपने पर बहुत विश्वास था ; साथ ही वह बहुत परिश्रमी भी था। तरह-तरह के विचार उसके मन में आते। वह सोचता कि झूठे वैराग्य से वह आदर मान और धन प्राप्ति कर सकता है, परन्तु भूखे-प्यासे उदा को यह मौका भी नहीं मिला।

कई दिन भटक कर उदा अन्त में नई नगरी कर्णावती की सीमा पर आ पहुंचा। तीन दिन से उसने अनाज का दाना भी मुंह में नहीं डाला था।

मूर्छित होकर वह नीचे गिर पड़ा। होश आने पर उसने अपने को एक भले घर में पड़ा पाया। एक धर्मनिष्ठ जैन विधवा लाखी उसे अपने घर ले आयी थी। पास बैठा हुआ एक साधु उसकी नाड़ी देख रहा था। उस दिन से उदा का भाग्य पलट गया। विधवा लाखी ने उसे अपना बेटा बनाकर रख लिया। वह नम्र, और सीधी थी। चतुर उदा उससे लाभ उठाने लगा। लाखी का धन भी उसका ही था।

लाखी मर गयी, तो उदा ने कर्णावती में रहना बेकार समझ मकान को बेच दिया और पाटन में एक छोटा-सा व्यवसाय कर रहने लगा। धन से उसे अधिक प्यार नहीं था और मुंजाल, शान्तिचन्द्र आदि धनी और प्रतिष्ठित लोगों से बड़ी चिढ़ थी। पाटन में उसे आत्मज्ञान हुआ।

उदा ने बहुत धीरे-धीरे अपना कार्य करना शुरू किया। वह पाटन में उपद्रव की राह देख रहा था, तभी उस जैसे नये आदमियों को मौका मिलेगा। गरीब, लेकिन समय पर काम आने वाले राजपूतों को वह कर्ज देने लगा। बड़े-बड़े लोगों को प्रसन्न करने का उपाय भी वह ढूँढ़ने लगा। राजमहल में उसके मित्र थे, यति की उस पर अनुकम्पा थी, ब्राह्मण भी मिष्ठभाषी श्रावकों से प्रसन्न रहते थे। राजपूत भी उसकी खुशामदों से सन्तुष्ट रहते। मीनलदेवी कर्णदेव, मुंजाल, शान्तिचन्द्र सब उसे विश्वासपात्र समझ उस पर दयादृष्टि रखने लगे, परन्तु उसके आन्तरिक विचारों तक कोई नहीं पहुँच सका था।

कर्णदेव की मृत्यु होने पर उदा ने पाँव फड़फड़ाये। घर का सोना-चाँदी भूमि में गाड़ कर वह इधर-उधर आँखें फिराने लगा। मुंजाल मधुपुर चला गया और देवप्रसाद नगरकोट कूदा कर भाग गया, सोच कर उदा को लगा कि अब उसका समय आ गया है; तभी रात में उसने दो पालकियाँ जाते देखीं। विचारते हुए उसे सारी रात बीत गयी। प्रातः होने वाली थी। तभी चाँपानेरी द्वार की खिड़की खुली, बाहर से बात कर दो-एक आदमी अन्दर आये जिनमें एक पुरुष था और एक स्त्री। मन्द प्रकाश के कारण उदा उन्हें पहचान न सका। उसने कपड़े पहिने, द्वार पर ताला लगाया और उन दोनों के पीछे-पीछे चला।

पुरुष का स्वर सुनाई दिया, "तुम मेरे यहाँ चलोगी ?"

मधुर-सा हँसता उत्तर मिला, "नहीं।"

लड़की का यह स्वर उदा को पहचाना-सा मालूम दिया पर कहाँ, उसे याद नहीं आया।

भावनाओं को दबाकर पुरुष ने काँपती आवाज में पूछा, फिर, इस समय अकेली कहाँ जाओगी ?"

"अकेली कैसे ? पाटन तो मेरा घर है। बस, आप राजमहल तक पहुंचा दीजिये।"

"फिर जाओगी कहाँ ?"

"यह नहीं कहा जा सकता। जब इतना विश्वास किया है, तो थोड़ा बहुत और कर लीजिये।" और एक मस्ती-भरी हँसी सुनायी दी।

उदा चौंक गया। मीनलदेवी की भतीजी और यहाँ ? देखें, और क्या बातें होती हैं ?"

"तुम मेरा तो विश्वास करती नहीं और अपना विश्वास करने को कह रही हो। अच्छा, वचन दो, फिर मिलोगी ?"

"बस, यही। मंजूर है और कुछ ?"

"कहना तो है, पर फिर किसी दिन कहूँगा।"

प्रसन्न हँस पड़ी। न जाने कितनी देर वे चुपचाप चलते रहे। पीछे-पीछे उदा भी हैरान-सा चलता रहा। अन्त में राजमहल का चौक आ गया।

"अब आप जा सकते हैं, मुरारपाल जी।"

"लेकिन, अगर गढ़ बन्द हुआ तो ?"

"भले ही बन्द हो, किन्तु आप अपना वचन पूरा कीजिए। अधिक न लुभाइये।"

प्रसन्न पीछे की ओर अकेली जाने लगी। मुरारपाल बहुत देर तक उसकी ओर देखता रहा और प्रातः की बेला होता देख एक निःश्वास छोड़कर घर की ओर घूम पड़ा।

उदा इस रहस्य में पड़ा हुआ काफी देर तक प्रसन्न के पीछे चलता रहा उसे विचार आया, कहीं मीनलदेवी ही तो रात पालकी में पाटन छोड़ कर

नहीं चली गयीं। तब तो पाटन में उपद्रव खड़ा हो जायेगा।

पिछले द्वार पर प्रसन्न ने खिड़की बहुत खटखटाई परन्तु कोई उत्तर न मिला। सेठ शान्तिचन्द्र की आज्ञा की वजह से किसी ने द्वार नहीं खोला।

घबराकर प्रसन्न ने दूसरी खिड़की पर जाने के लिए पैर उठाये पर साथ में कोई न होने से वह कुछ निराश हो गई।

उदा ने पूछा, "क्यों प्रसन्न बहन, कहाँ जा रही हैं इस समय ?"

प्रसन्न उदा को देख हर्षित हो गयी, "उदाजी ! तुम कहाँ जा रहे हो ?"

"मैं तो दर्शन करने जा रहा था। पर तुम यहाँ कैसे ? कोई साथ में भी नहीं है।"

"छोड़ो इस बात को उदाजी, मुझे अपने घर ले चलो। इस समय मुझे किसी ने देख लिया तो आफत आ जायेगी।"

उदा यही चाहता था। बोला, "जरूर। मेरे अहोभाग्य कि तुम मेरे घर चलो। बस यह रहा मेरा घर, आओ। परन्तु तुम इस समय कहाँ से आ रही हो। किसी विपत्ति में पड़ी हो तो मुझे बताओ, मैं मदद करूँ।"

प्रसन्न उदा पर विश्वास करती थी। बोली, "उदा सेठ, सचमुच मैं इस समय विपत्ति में हूँ। मैं बुआजी के पास से भाग आई हूँ।"

'लेकिन, वे तो पाटन से बाहर गई हैं न ?" चतुराई से उसने मालूम करना चाहा।

"तुम्हें कैसे पता ?"

"क्यों, चाँपनेरी द्वार के सामने ही तो रहता हूँ मैं। रात को मैंने उन्हें जाते देख लिया था। लेकिन तुम कैसे भाग आयीं ?"

"भैया, तुम मेरे संकट को नहीं समझ सकते।"

"बहन, अच्छा किया कि भाग आयीं, नहीं तो पाटन की नाक कट जाती। उदा यों यह बात कह गया पर यह स्वयं भी नहीं समझ सका कि नाक कैसे कटती ?

"बुआजी को न जाने क्या-क्या सूझा करता है। आवन्ति की अपेक्षा मेरा पाटन क्या बुरा है ?"

"अरी, पाटन तो पाटन ही है। भारत का मुकुट !"

"भला, ऐसे समय पाटन को कहीं छोड़ा जा सकता है। क्या कहूं ? चारण सामल ठीक ही कहते थे कि पाटन अब सत्ता हीन होने जा रहा है। कितनी बुरी बात है, पाटन छोड़कर बुग्राजी मधुपुर गई हैं।"

उदा को राज्य के दांव-पेचों की थोड़ी खबर थी। प्रसन्न से बात सुनते ही उसे ज्यादा समझने में देर नहीं लगी। बोला, "पाटन की रानी और पाटन के विरुद्ध ! मैं भी तो श्रावक हूं पर इससे क्या पाटन को भुलाया जा सकता है, पर किया क्या जाय ?"

"क्या किया जाय ? तुम्हारे पाटन के वीरों ने चूड़ियां पहन रखी हैं, नहीं भला चन्द्रावती की चल सकती थी ? और आज पाटन का दण्डनायक शान्तिचन्द्र हो सकता था ?"

उदा ने प्रसंग बदल दिया, "लो बहन, मेरा घर आ गया।" उसने द्वार खोला और दीपक जलाकर दोनों ऊपर गये। फिर वह बोला, "समय बहुत कम है, बहन ! पाटन में इस समय कोई ऐसा नहीं है जो कुछ कर सके। मुंजाल मेहता साथ हो तो पाटन का डंका सारे संसार में बज जाय।"

"मुंजाल मेहता को तो पहले ही दूर कर दिया गया और मंडलाधिकारी को—अरे हां, मैं तो भूल ही गई उदा सेठ, महल में त्रिभुवन घायल अवस्था में पड़े हैं। सुबह होने से पहले उनके कुछ समाचार ले आओ तो मुझे चैन मिलेगी।"

उदा त्रिभुवन के बारे में इस लड़की की चिन्ता को समझ गया। बोला, "जरूर, बहन, यह दतौन और पानी रखा है। सूर्य निकलने तक मैं जाता हूं। लेकिन सुबह ही लोगों को मीनल देवी के बाहर जाने की खबर मिलजाएगी।"

"नहीं। शान्तिचन्द्र के महल में पहरा रहते कौन जान पायेगा ? और सम्भव है, कल रात तक रानी लौट भी आएं।"

"ये बातें हवा के साथ उड़ती हैं।" अच्छा, मैं अपनी दुकान खोल आऊं, मन्दिर हो आऊं और त्रिभुवन के समाचार भी लेता आऊं। हां, उससे कुछ कहना तो नहीं है ?" दूसरे के दिल की बात समझने की शक्ति उदा में अद्भुत थी।

"हाँ लीलाधर वैद्य से बतला देना, मैं यहाँ हूँ और त्रिभुवन पूछे तो वैद्य से कहना, उनसे कह दें कि मेरी आवश्यकता हो तो मैं आ जाऊँगी। लेकिन, उदा सेठ, किसी और से कुछ नहीं कहना।"

"यह बात किसी से कहने की है ? तुम निश्चिन्त रहो।"

उदा नीचे उतरा। उसे किसी ज्योतिषी की कही हुई उसके विषय में शुभ वाणी याद आ रही थी। इस अवसर से लाभ उठाये तो वह भी नगर सेठ बन सकता है। ऐसा अवसर सौ साल में भी नहीं आता। उसके अलावा पाटन भर में किसी को नहीं मालूम कि मीनलदेवी बाहर गई हैं। इस समय वह कौन-सी बाजी फेंके ?

: २३ :

उदा बाहर निकला था कि रास्ते में सेठ वस्तुपाल चाबियों का गुच्छा हिलाते हुए दिखाई पड़े। वे साहूकारों के एक प्रकार से नेता थे। उदा ने उन्हें नमस्ते की। सेठ जी बोले, "कौन ! उदा सेठ ?"

"जी हाँ। कहिए, मोती चौक जा रहे हैं ? दुकान खोलनी है आज ?"

"भाई, बिना दुकान खोले मुक्ति भी नहीं।"

"दरजी का बेटा जब तक जिये तब तक सिये।" उदा ने झुककर कहा, "सेठजी, आप तो मेरे अपने हैं। अगर किसी से कहो नहीं तो एक बात बताऊँ ?"

कुछ घबराते से सेठ जी ने पूछा, "क्या ?"

"किसी से कहियेगा नहीं-नहीं तो मेरा सिर न बचेगा। कुछ भी हो, आप असली पाटनवासी हैं, सो जितनी चिन्ता आपको होगी, उतनी किसी और को नहीं। पाटन में अब राज्य-शासन नहीं रहा।"

वस्तुपाल चौंक उठा "क्या ?"

"धीरे-धीरे बोलिए सेठजी, महारानी जी रात को चन्द्रावती चली गयीं।"

"क्या कह रहे हो ? तब शासन कौन करेगा ?"

"चन्द्रावती के आढ़तिया सेठ शान्ति मेहता तो हैं ?"

"अजी जाओ भी। कहीं से गप्प सुन आये होंगे।"

"झूठ समझते हैं तो लीजिए, मैं चला। पर बुद्धिमान हो तो गहना-गठरी ठिकाने से रख देना। मैंने मित्र समझकर आपको बता दिया। अच्छा, जय राम जी की।"

"जय राम जी की।" धड़कता हुआ दिल लेकर वस्तुपाल चौक की ओर चला। इस समय वह चिन्ता में पड़ा हुआ था।

उदा वहाँ से चावड़ी बाजार में आ गया और एक दरवाजे की कुण्डी खटखटाई।

कुछ देर बाद एक भारी और नींद से जागा हुआ स्वर सुनायी दिया, "इस समय कौन आ मरा ?"

"नायक जी, मैं हूँ, मैं।"

"मैं कौन ? कल आना।"

"मैं उदा हूँ दरवाजा खोलिए, जरूरी काम है।"

"फिर रुपये माँगने आया होगा। क्यों ?"

"नहीं डूंगर नायक। यह तो और रुपये मिलने वाली बात है।"

इस पर नायक का स्वर सुनाई दिया, "अरी कुब्जा ! सुनती नहीं है, दरवाजा खोल नहीं तो चीर कर दो कर दूंगा।"

तुरन्त एक औरत ने दरवाजा खोला और हाथ जोड़ती हुई बोली, 'उदा सेठ, पैर छूती हूँ, लेकिन इन्हें यहाँ से ले जाओ। कल रात मेरी कमर इन्होंने पीट-पीटकर दोहरी कर डाली। कहते हैं, गांजा उधार ले आ, पर उधार कौन देता है ?"

"चिन्ता न करो भाभी, अभी सीधे किये देता हूं।" कहकर उदा ऊपर चढ़ गया।

बिस्तरे पर पड़ा डूंगरसिंह हुक्के के कश ले रहा था। आँखें नशे में लाल और डरावनी हो रहीं थी। बाहों के नीचे उसने एक बड़ा तकिया दबा रखा था।

"इस तरह क्या पड़े हुए हो, नायक जी। बाप-दादों की इज्जत धूल में मिलने जा रही है।" कहते हुए उसने उसके गोबर दिमाग पर गौर किया।

"देखूं तो किसकी छाती में इतने बाल है ?"

"बस रहने दो। चन्द्रावती की सेना सीमा पर आ खड़ी हुई है और राजपूत गीदड़ बने अपनी मांदों में पड़े हैं।"

"क्या बकता है बे ?" उछल कर डूंगरसिंह सीधा बैठ गया।

झूठी घबराहट दिखाते हुए उदा ने कहा, "जरा धीरे नायक जी। किन्तु वक्त बहुत नाजुक आ गया है। मीनलदेवी पाटन छोड़ चन्द्रावती चली गयी हैं। वहाँ से सेना दरवाजा खोलने आयी है। अब भी सोते ही रहोगे ?"

"मैं···मैं···बैठा हूं और पा···पाटन···जाय ?" नशे में हिचकी लेते हुए डूंगर नायक बोला।

"जाये क्या गया ? शान्तिचन्द्र के हाथ में पाटन कुछ देर रखके देख लेना। हम सब श्रावक तो मोती चौक में एकत्र हो रहे हैं।"

"बाहर के लोग पाटन में घुस आएँ और हम देखते रहें ? नहीं ! आप राजपूत लोग डरपोक बन रहे हैं नहीं तो किसी की मजाल थी कि—"

"क्या बात करते हो ? कौन आएगा ?" फिर उसने जोर से आवाज लगाई, "अरी, सुनती है ? तेरा बेटा कहाँ मर गया ?"

नीचे से उसकी पत्नी का स्वर आया, "क्यों ?"

"उससे कह दे कि अखाड़े में जाकर सबको सूचना दे दे कि मैंने बुलाया है। जल्दी। नहीं तो एक का सिर साबुत नहीं बचेगा।"

उदा ने कहा, "अच्छा, मुझे तो काम है। मैं चला।"

"चन्द्रावती पाटन पर चढ़ आये; श्रावक राजपूतों को सतायें। नहीं, मारो, काटो। ओ कुब्जा, जल्दी अपने लाल को भेज—"

उदा के पास समय बहुत कम था, क्योंकि सवेरा हो गया था। उदा सेठ चौराहे पर पहुंच कर शान्तिचन्द्र के घर गया। बड़े-बड़े घरों में उसने गृहस्वामिनियों का स्नेह और विश्वास प्राप्त कर रखा था। सेठ शान्तिचन्द्र की सेठानी मानकुंवर देवी का उस पर विशेष स्नेह था। उस समय मानकुंवर देवी अपनी बहू-बेटियों के साथ सब्जी सँवार रही थी। उदा ने पूछा, "कहिये, सेठानी जी, आनन्द से हैं ?"

"उदा जी ? इस समय कहाँ से।"

"जरा इधर सुनिए, एक बहुत आवश्यक बात कहनी है।"

"क्या बात है ?" कहकर मानकुंवर मुंजाल को लेकर पास के कमरे में गई।

'सेठानी जी, मैं कसम खाकर कहता हूं, अगर सेठ जी समझ जायें तो ठीक है नहीं तो पाटन की नाक कट जायेगी।"

"क्या चन्द्रावती की ही बात है ? इस बुढ़ापे में तो सेठ जी पर पागलपन सवार हो रहा है।"

धीरे से उदा बोला, "मीनलदेवी कल चन्द्रावती चली गयी, और सेठ जी यहीं रहे।"

पागल हो गये हो क्या ! अभी तो मैं स्यापे से लौटी हूं। इस शोकावस्था में महारानी कहीं जा सकती हैं ?"

परन्तु आपने अभी तो बताया था कि महारानी जी को आपने नहीं देखा। कोई और रहा होगा। मैंने स्वयं उन्हें जाते देखा है। वे प्रसन्न को भी ले गयी थीं पर वह लौट आयी और इस समय मेरे घर पर है। आप चाहें तो पूछ लीजिये।"

"हाय अम्मा !" मानकुंअर घबरायी, "विमल ! ऐ विमल !"

सेठानी की लाड़ली छोटी बेटी आ खड़ी हुई, "क्या है ? क्यों इतना चीख रही हो ?"

"अरी, तेरी सखी संकट में पड़ी है—उदा जी के घर पर। बहू के साथ जाकर उसे ले आ। जल्दी, बेचारी अनाथ बच्ची। हां, उदा जी, अब किया क्या जाय ?"

"क्या बताऊं ? सारा नगर कह रहा है कि हम दरवाजा बन्द रखेंगे और अगर शान्ति सेठ ने खुलवाया तो हंगामा मच जायेगा। डूंगर नायक भी अभी यही कह रहा था। रक्त-पात से बचना है तो जाकर अभी सेठ जी को रोक दो।"

चिन्ताकुल होकर सेठानी बोली, "मैं अभी राजमहल को जाती हूं। अरे कोई है, पालकी लाओ तो। मरा डूंगर तो हत्यारा है, सारे नगर में त्राहि मचा देगा। तुम वहां जा रहे हो ?"

"मुझे इस समय बहुत काम है। यह तो मैंने आपको अपना समझ कर बताया है, पर मेरा नाम कहीं न लीजियेगा।"

"नहीं-नहीं। लेकिन उदा जी, मेरे ये नये कर्णफूल नहीं देखे? अरब या मुश्रा ऐसा ही कोई नगर है, जहाँ से मोती लाकर इनमें जड़वाये हुये हैं। भामदेव महाराज के समय में आये यवनों के नगर से ही इनके मोती लाये गये हैं।"

"बहुत सुन्दर बने हैं। लेकिन अब आप जाइये, मुझे भी जाना है।"

मानकुंवर देवी शान्तिचन्द्र के पास महल में आने की तैयारी करने लगीं।"

: २८ :

मोती चौक के पास जाकर उदा ने वहाँ कुछ हलचल देखी। व्यापारियों की टोलियाँ हाथ बढ़ा-बढ़ा कर बातें कर रही थीं। कोई कह रहा था, "सेठ शान्तिचन्द्र मर गये।" दूसरा कहता, मुंजाल मारे गये।" कोई कहता, मीनल-देवी भूमि में समा गयी है—सीता की तरह।" आदि-आदि। परन्तु एक बात सब कह रहे थे कि पाटन में अब कोई राजा या रानी नहीं है, अब संसार का अन्त आ गया।

एक सम्पन्न सेठ अपनी दुकान के चबूतरे पर खड़ा कह रहा था, "भाइयो, मैं तो यह पहले ही जानता था कि मुंजाल मेहता पहले ही कोमल स्वभाव के हैं और फिर सेठ शान्तिचन्द्र सब को साधु बना देने वालों में से हैं। अब पाटन में शर्म ही कहाँ रही है। अब मर जाओ, सब मरो।"

उदा ने उस भीड़ में प्रविष्ट होकर कहा, "तिलकचन्द, इन सब बातों का कोई महत्त्व नहीं है। यह बताओ, अब क्या किया जाय?"

चारों ओर से आवाज आयी, उदा सेठ ठीक कह रहे हैं।"

उदा बोला, "भाइयो, मैं एक निर्धन, छोटा-सा आदमी हूँ और मेरा कहना भी छोटा ही है। आप लोगों में शक्ति हो तो आज पाटन को अधीन कर लो, नहीं तो सेठ शान्तिचन्द्र के वश में रहने से तो अच्छा है कि दरवाजा खोलकर हर आने वाले को स्वच्छन्दता से आने दें।"

"कैसे आने दें ?" तिलकचन्द भड़क उठा, "तू कर्णावती का है। हमारे पाटन में पराई सेना घुस आये ! क्या बात करता है !"

"उदा बोला, "तभी तो कहता हूँ, केसरिया बाना पहनो और द्वार बन्द करके लड़ने को तैयार हो जाओ। बोलो, जय सोमनाथ !"

'जय सोमनाथ' की इस गूंज ने सोरठ पर पाटन की विजय पताका फहराई थी; महमूद गजनवी के नाकों दम किये थे और उसके चले जाने पर फिर से गुजरात का राजा सोलंकियों को बना दिया था; मालवा, सोरठ लाट, घौंड आदि प्रान्तों को आतंकित किया था। यह सारी पाटनवासियों की आत्मा थी; उनकी साँस और प्राण थी, जिसे सुनकर उनमें असीम बल और उत्साह का संचार हो जाता था; कायरों में हिम्मत आ जाती; वीरांगनाओं के हाथ अपने पतियों के विजय-तिलक करने को विकल हो जाते थे।

इसी नाद ने सबसे कहला दिया, "हाँ, जल्दी से सब तैयार हो जाओ। जय सोमनाथ ! लेकिन, पहले यह सोच लो, करना क्या है ! और कैसे करना है ?"

सबके चुप हो जाने पर उदा बोला, "देखो भाइयो जैसा कि सेठ तिलकचन्द ने कहा है, वह ठीक है। अपने धन-दौलत को सुरक्षित रख, शान्तिचन्द्र को सीधा करो और लड़ने-मरने को तैयार हो जाओ। हमारे रहते पाटन में आने की किसी की हिम्मत नहीं है।"

एक नया व्यक्ति आगे बढ़ा और कहा, "हम तो पहले ही कहते थे कि अब पाटन पहले जैसा मान-इज्जत वाला नहीं रह गया है। हमें अपनी रक्षा तक करनी नहीं आती। गजनी के यवनों के आने के समय में पूर्वजों ने डेढ़ महीने तक पाटन की रक्षा की और अब हम उसे यों ही दूसरों के हवाले कर दें ! चलो, राजमहल चलकर सेठ शान्तिचन्द्र को सबक पढ़ा आयें, वह अपने को क्या समझता है !"

इतने में दो-एक व्यापारी दौड़ते हुए आए और बोले, "मर गए।"

अन्य व्यापारी घबरा गये। उदा ने पूछा, "क्या हुआ ! बात तो बताओ।"

एक व्यापारी ने हाँफते हुए बताया, "वह सेना आ पहुंची है। भागो, नहीं

तो जान की खैर नहीं।"

"किसकी सेना है ? पूरी बात कहो।"

"वह जो गदा घुमाता हुआ आ रहा है राक्षस-सा, उसकी।" और उसने रास्ते की ओर संकेत किया। उदा ने देखा, आगे-आगे डूंगरसिंह भीम की तरह लोहे की गदा घुमाता हुआ झूमता-सा चला आ रहा था, पीछे सौ-दो-सौ आदमी और थे। सब के हाथों में कोई न कोई हथियार थे, कुछ एक के हाथों में मुग्दर थे।

सब व्यापारी घबरा गये और भागने का रास्ता खोजने लगे। तभी उदा ने कहा, "अरे, यह तो अपने डूंगर नायक हैं, डरो नहीं। मैं उनसे अभी मिलकर आता हूँ, तुम लोग ठहरो।" और वह आगे बढ़ गया।

उदा जब डूंगर नायक से घर में मिलकर आया था तो डूंगर नायक के हृदय में एक विचार आया कि उसके जीते जी पाटन में श्रावकों का शासन नहीं हो सकता, सो श्रावकों को चूर-चूर कर देना चाहिए। डूंगर नायक का सारा जीवन श्रावकों से कर्ज लेते और चुकाते बीत गया था और उनके प्रति बहुत चिढ़ हो गयी थी। "पाटन में चन्द्रावती का अधिकार', नहीं! यह वह जीते जी नहीं देख सकता। पाटन उसका है, उसकी रक्षा उसे करनी है। सोचते-सोचते उसकी धमनियों का रक्त दौड़ने लगा; नसें तन गयीं। उसे विश्वास हो गया कि चन्द्रावती की सेना कोट के दूसरी ओर पड़ी हुई है और शान्तिचन्द्र द्वार खोलने जा रहा है: श्रावकों को कैद करने को कमर कस कर वह चल पड़ा। अपनी पत्नी से उसने बड़ी सहानुभूति से कहा, "सती, मैं लड़ने जा रहा हूँ। पाटन के कंगूरे अटूट रखने के लिए। बच्चे को संभालना।"

सती चौंक पड़ी। इतने प्यार से पति ने उसे आज पुकारा था। पति को किसी नई धुन में मस्त देख उसने बड़ी लापवाही से कहा, "अच्छी बात है, जल्दी लौटना।"

"न लौटा तो उस लोक में मिलूंगा।" कह कर डूंगर नायक निकल पड़ा। सती भौंचक-सी देखती रह गयी।

सामने से सात-आठ राजपूत आकर डूंगर से मिले, कहिए नायक जी क्या सेवा है!"

"कायर कहीं के। चूड़ियाँ पहन कर बैठ जाओ। घर लुटवाने की फिराक में हो।"

"कुछ बात तो कहिए। क्या हुआ?"

"मीनलदेवी चन्द्रवती गयी हैं और चन्द्रावती की सेना यहाँ पड़ी हुई है।"

"पाटन में पराई सेना? क्या कहते हो?"

"शाम तक शान्तिचन्द्र तुम्हें बन्दी बना लेगा। अब श्रावकों के यहाँ पानी भरना, पानी।"

"वाह यह कैसे हो सकता है?"

"हो क्यों नहीं सकता? अगर कुछ दम बाकी रहा हो तो चलो मेरे साथ। पाटन के द्वार बन्द कर दें। दूसरे लोग यहाँ आ जायें और एक भी राजपूत बच्चा उन्हें न रोके। मैं या तो मार डालूंगा या मर जाऊंगा।" नायक गदा घुमाने लगा, "आओ मेरे साथ। सारे श्रावकों को बांधकर मार डालेंगे। देखें चन्द्रावती कैसे आती है।"

सब इस बात से सहमत हो आगे बढ़े।

"चलो, लक्ष्मण रावत निकलो बाहर।"

एक वृद्ध ने खिड़की से सिर बाहर निकाला, "क्यों डूंगर, क्या बात है?"

"पटन में परदेशी घुस रहे हैं। उन्हें बाहर फेंकना है। फिर से दादा भीमदेव का वक्त आ गया है। बोलो लड़को, जय सोमनाथ!"

"जय सोमनाथ!" सबने कुछ न कुछ हाथ में लेकर आगे कदम बढ़ाये।

रास्ते में किसी ने हँसते हुए कहा, "माना कोठारी इसे डूंगर का पागलपन बता रहा है।"

डूंगर से माना कोठारी जलता था, सो इसे वह चिढ़ाना चाह रहा था।

डूंगर उबल पड़ा, "कौन मुझे पागल कहने की नादानी करता है? कौन कायर है वह जो घर में छिपा है।...वह नामर्द है।"

माना कोठारी इस सब बातों से अनभिज्ञ अपने चबूतरे पर बैठा चिलम फूंक रहा था। परन्तु डूंगर के यह शब्द सुन कर उसने आँखें तरेर कर अपेक्षा से कहा, "किसी को आना है तो आये, मुझे क्या मतलब?"

डूंगर जोर से बोला, "कायर, अपने को पाटनवासी कहता है। थू है तेरे मुंह पर।"

और उसने थूक दिया। साथ ही कुछ और आदमियों ने भी थूका, "कृतघ्न ! कुत्ते ! कायर ! दास !" आदि विशेषण उसके लिए प्रयोग होने लगे।

माना पर खून सवार हो गया। उसका हुक्का न जाने किधर जा पड़ा उसने तलवार उठायी ही थी कि चार-पांच व्यक्तियों ने उसे पकड़ लिया, "पाटन में पराये लोगों को बुलायेगा ! चन्द्रावती का आदमी है, मारो !" और उसे रस्सी में बांध दिया गया।

लोगों में इस हो-हल्ले से और आवेश बढ़ गया था। शोर मचाते सब लोग मोती चौक में आ पहुंचे।

उदा ने पास पहुंच कर कहा, "नायकजी बहुत ठीक है।"

नायक बोला, "उदा सेठ, पाटन के उस किनारे पर पराई सेना पड़ी हुई है और तुम यहां घूम रहे हो ?"

"लेकिन तुम कहां जा रहे हो ?"

"सब द्वारों पर अधिकार करना है। बोलो लड़को, जय सोमनाथ !"

"जय सोमनाथ !" लोगों ने उत्तर दिया।

"लेकिन तुम्हारे सेठ क्या कर रहे हैं ?"

"सब अपनी जान लड़ाने को तैयार हैं। उन्हें भी साथ ले लो।"

"अगर श्रावकों ने विश्वासघात किया तो ?"

उदा बोला, "पहले महल में जाकर देख लो। न जाने क्या खबर मिले।"

"वहीं जा रहे हैं।" डूंगर नायक ने कहा। वह राजमहल में अब तक दो बार गये थे—एक बार नौकर के रूप में और दूसरी बार अपराधी के रूप में। इस समय पाटन के रक्षक के रूप में महल में जाना उनके लिए स्वर्ग जाने के बराबर था।

वह उदा से बोला, "चलो राजमहल में। देखें, शान्तु मेहता क्या कर रहे हैं। तुम्हारे सेठ लोग चल रहे हैं या नहीं ?"

"हां हां, जरूर।" कहकर उदा अपने साथियों के साथ लौटा, "भाइयो,

डूंगर नायक भी पाटन की मान की रक्षा करने आये हैं। आओ, राजमहल के क्रिया-कलाप देखें चलकर।"

"चलो, चलो।" कहते हुए अधिकांश लोग पाटन के महल की ओर चल दिये। धीरे-धीरे भीड़ बढ़ती गयी। चारों ओर हलचल मच गई कि पाटन पर परदेशी लोग चढ़ आये हैं। घोड़ों पर, पालकी में बड़े-बड़े सामन्त और जागीरदार भी आने लगे और भीड़ एकत्रित हो गई।

इस भीड़ का मुख्य कारण था कि लोगों में पाटन के प्रति प्रेम था, श्रद्धा थी, चाहे आपस में कितना भी झगड़ते थे। पाटन के दुर्ग और राजा को वे अजय समझते थे। यह अभिमान उनमें संकट काल में साहस उत्पन्न कर देता था और इसके लिए वे जान की बाजी लगा देने को भी तैयार रहते थे। मूलराज के समय से ही पाटन उनकी राजधानी थी और इसे जीवित वस्तु मान वे इसकी पूजा करते थे। राजा, सेठ, उनका धन, इस राजधानी के पीछे सब नगण्य था। भीमदेव, मूलराज और कर्णदेव उनके गौरव थे। इस कारण मुंजाल के प्रति भी लोगों का स्नेह था। उनके गुण-दोष, अभिमान, शक्ति सबसे ने प्रभावित होकर उसका आदर करते थे। परन्तु इस समय उनका अपमान हुआ था और वे चाहते थे कि पाटन का मान जाने से पहले दुनियाँ रसातल को चली जाय तो बेहतर है।

: २५ :

पाटन-वासियों को इस उपद्रव का वास्तविक कारण मालूम नहीं था, परन्तु उन्हें यह अवश्य मालूम था कि मीनलदेवी चन्द्रावती से बाहर गई हुई हैं और शान्तिचन्द्र चन्द्रावती का आदमी होने से वह विश्वासपात्र नहीं है। इसलिए वे जोश में भरकर पाटन के महल की ओर चले। कुछ तो तमाशा देखने की गरज से ही भीड़ लगाने लगे। यह अफवाह हर व्यक्ति फैला रहा था कि उसने स्वयं रानी को बाहर जाते देखा है। कुछ लोगों का विश्वास था कि चन्द्रावती अब गुजरात की राजधानी बन जायेगी, और मीनलदेवी के रहते पाटन सुखी नहीं रह सकता।

पहले स्त्रियाँ ज़रा घबरायीं और उन्होंने दरवाज़े बन्द कर लिए, फिर धीरे-धीरे बात समझ उन्होंने अपने घरों की खिड़कियाँ खोल दीं और अपने पतियों को लड़ने भेजने लगीं। सब लोग बाहर आकर इनमें शामिल होने लगे। हालार का बूढ़ा मंडलाधिकारी चन्द्रावती की सेनाओं का आना सुनकर उबल पड़ा। तुरन्त ही खेंगार भी आकर भीड़ में सम्मिलित हो गया। वह पुराने जमाने का वीर और उत्साही राजपूत था। यह देखकर उदा उसके पास पहुँचा।

"महाराज, देखा आपने? अब आप जैसे के हाथ में ही पाटन की लाज है।"

"अजी, चिन्ता मत करो। शान्तु मेहता को अभी सीधा किये देता हूँ। देखता हूँ, कौन पाटन में आता है? चलो, राजमहल की ओर जा रहे हो न? चलो।"

उदा ने बढ़ते हुए जलूस को देखा। वह जानता था कि डूंगरनायक जैसे का जोश क्षणिक है और लोगों में बिना जोश पैदा किये कुछ नहीं हो सकता। उसे एक उपाय सूझा। धीरे से खिसक कर वह राजमहल के द्वार पर पहुंचा। दरवाज़े और खिड़कियाँ बन्द थीं। दौड़ते हुए वह पिछले दरवाजों पर गया और उनके दरार से उदा ने झाँका। अन्दर पहरेदार दिखायी दिया।

उसने ज़ोर से आवाज़ लगायी, "ओ भाई!"

पहरेदार दरार से झाँकता हुआ बोला, "कौन?"

"मैं उदा हूँ। ज़रा खिड़की खोलो।"

"नहीं खुल सकती। महारानी जी की सख्त आज्ञा है।"

"पगले, तुझे कुछ मालूम भी है? जल्दी से खोल दे नहीं तो कचूमर बन जायेगा।"

"उदा सेठ, बुद्धि कहीं चरने चली गयी है क्या? चले जाओ कोई जान लेगा तो रानी जी सिर कटवा देंगी।"

"अरे मूर्ख! रानी तो कभी की उड़न छू हो गयी हैं और सारा पाटन उलट कर यहाँ आ रहा है।"

"क्या कह रहे हैं? महारानी···।"

"हाँ हाँ महारानी जी तो कभी की चन्द्रावती पहुँच गयीं। तुम जल्दी से खिड़की खोल दो। कहो तो कुछ रुपया दूँ या कल सुबह कोई पद दिला दूंगा।"

"लेकिम अब क्या होगा ? महारानी जी तो चली गयीं।"

"अरे त्रिभुवनपाल सोलंकी तो है भीतर। मुझे लौट आने दो, तुम्हें नायक बना दूंगा या कोई जागीर दिला दूंगा।"

"ये सब बाद में होगा। अभी तो अपने कान की बालियाँ दे दो।"

"ठीक है, यह लो।" कहकर उदा ने बालियाँ निकाल कर दे दीं।

सिपाही ने खिड़की खोलकर कहा, "देखो, कल जागीर जरूर मिलनी चाहिए।"

"जरूर।" कहकर उदा भीतर हो लिया और जल्दी से लीलाधर वैद्य के कमरे की ओर गया। कर्णदेव की बीमारी के समय से वे महल के अन्दर ही रहते थे।

उदा बोला, "लीललाधर काका !"

एक स्त्री का स्वर आया, "कौन, ?" और उसने दरवाजा खोल दिया।

"कौन ? मात्रा बहन ? मैं उदा हूँ। तुम्हारे पिता जी कहाँ हैं ?"

"पिता जी तो त्रिभुवनपाल के पास हैं।"

"और त्रिभुवनपाल कहाँ है ?"

"उस तरफ, जहाँ वे···"कहकर नव-बधु कुछ लजा गयी।

"जहाँ वे पंडित जी खड़े हैं। अरे तो शरमा क्यों रही हो ?" उदा कुछ विनोद करता हुआ वहाँ से चला गया।

"वाचस्पति, तुम्हारे ससुर कहाँ है ? त्रिभुवनपाल सोलंकी कहाँ हैं ?"

अन्दर से वैद्य जी का स्वर आया, "कौन ?" उदा उस ओर चला गया।

लीलाधर वैद्य निश्चिन्त होकर पान चबा रहे थे; चारण सामल अपनी मन्द-ज्योति आँखों से आकाश की ओर देखते हुए हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। त्रिभुवन पलंग पर बैठा था। कल के घावों से बहुत खून बहा था। परन्तु सामल की दवा से बहुत आराम हो गया था और सारी रात चैन से सोने के कारण उसकी तबियत इस समय बहुत हल्की थी। उसका मुख आकर्षक प्रतीत होता था और वहाँ चिन्ता व्याप्त थी। उसके पिता चले गये थे; सखी

कृतघ्न हो गयी थी और वह असमर्थ-सा मीनलदेवी के हाथों बन्दी बना पड़ा था।

उदा ने कमरे में प्रवेश किया, "नमस्कार महाराज! नमस्कार वैद्यराज! राम-राम चारणजी!" तीनों ने उसकी ओर देखा। त्रिभुवन की भौंहों पर बल आ गये।

"क्षमा कीजिए, महाराज। पाटनवासियों का एक निवेदन लेकर आपके पास आया हूँ।"

त्रिभुवन हैरान होकर बोला, "पाठनवासियों का निवेदन ? मेरे पास ?" लीलाधर वैद्य और चारण चुपचाप उसकी ओर देखते रहे।

"जी! नगर के रक्षकों और प्रतिपालकों में केवल आप ही बचे हैं। लोग आपकी शरण आ रहे हैं।"

वैद्य बोले, "पागल हो गया है उदा ? क्या बक रहा है ?"

"आपको भी ज्ञात नहीं, महाराज ? मीनलदेवी और कुमार जयदेव पाटन छोड़कर चन्द्रावती चले गये हैं। चन्द्रावती की सेना पाटन को आधीन करने आ रही है।"

त्रिभुवन आवेश में उठ खड़ा हुआ, "क्या कहते हो उदा सेठ ? पाटन पर चन्द्रावती का आधिपत्य है ?"

वैद्य बोले, "अवश्य आयेंगे, भैया। वह यति तो कभी से उन्हें यहाँ लाने को कह रहा था।"

एकाएक चारण सामल गरज उठा, त्रिभुवनपाल सोलंकी, बैठे क्या हो।" उसके हाथ से हुक्का छूट पड़ा, "तुम सब बच्चे हो। प्रसन्न गयी । अवन्ति और चन्द्रावती यहाँ चढ़े आ रहे हैं। है कोई माँ का लाल, जो उठ खड़ा हो ?" और वह सिर धुनने लगा।

उदा ने कहा, "महाराज, सारे पाटन में खलबली मची हुई है और सब लोग महल के बाहर आकर खड़े हुए हैं और आपसे मिलने को बेचैन हैं। आइये, चलिए।"

"मैं क्या करूँ। मेरे हाथ अशक्त हो गये हैं।"

चारण ने कहा, "सावधान! त्रिभुवनपाल सोलंकी! तुम्हारे हाथों में

अपार शक्ति है। उठो, खड़े हो। 'जय सोमनाथ।' सब लोग कहाँ हैं? जब यवन आये थे तो मेरा भीवदेव अपनी शक्ति या निर्बलता भूलकर उछल कर खड़ा हो गया था।"

"चारण जी! सब लोग बाहर के चौक में हैं और शान्तु मेहता से मिल रहे होंगे। सब लोग उन्हें भी चन्द्रावती का मानते हैं।"

त्रिभुवन बोला, "आइये चारण जी, चलें।"

चारण ने कहा, "चलो। वैद्य जी मेरे वीर शेर के साथ हो जाओ। जुग-जुग जियो मेरे सोलंकी! जय सोमनाथ!"

: २६ :

सेठ शान्तिचन्द्र मदनपाल की लाश को ठिकाने लगाने की व्यवस्था करने लगे। कुछ सैनिकों से लाश को श्मशान भिजवाया और उसी अंधेरे में अग्नि-दाह करवा दिया। इधर, सभी दरवाजों और खिड़कियों पर कड़ा पहरा लगवा दिया और सुबह के स्यापे की तैयारी करने लगे जिससे किसी को यह मालूम न हो कि रानी महल में नहीं है। स्यापे में आई स्त्रियाँ जब घर वापस चली गयीं तब उन्हें कुछ चैन पड़ा। वे यह सोचते हुए नित्यकर्म से निबटने चले कि किसी तरह दो दिन शान्ति से बीत जाएँ और रानी जी वापस आ जाएं।

कुछ देर बाद द्वारपाल यह कहने आया कि मुरारपाल आये हैं।

शान्तिचन्द्र ने उन्हें बुला लिया, "कहिये, मुरारपाल जी कहाँ से लौट आये?"

"विखराट से कुछ दूर जाकर मुझे लौटा दिया। यहाँ के क्या रंग-ढंग हैं?"

"यहाँ? सब ठीक ही है।"

"कल संध्या समय मुझे चाँपानेरी द्वार पर आने के लिए कहा है। महारानी जी उसी समय आयेंगी।"

"ठीक है। तब तक तो सब काम शान्तिपूर्वक चल जायेगा। लेकिन, एक बात ध्यान रखना, महारानीजी के आने का पता किसी को न लगने पावे।"

"नहीं जी, कौन जान सकता है ?" मुरारपाल का हृदय प्रसन्न में रम रहा था अतः उसके सम्बन्ध में उसने कुछ न कहा।

"ठीक है। कल चांपानेरी द्वार पर आप ही जाइयेगा। अगर मैं गया तो लोगों में खलबली मच जायेगी।"

"कल मैं महारानी जी को सुरक्षा से महल में ले आऊँगा। आप जरा भी चिन्ता न करें। पर दरवाजे की चौकी पर पहरा—"

"हाँ हाँ वह तो है ही। बस कल तक पाटन का शासन रह जाय, फिर कुछ चिन्ता नहीं।"

बाहर से एक चोबदार को आया देख शान्तिचन्द्र ने कठोर स्वर में पूछा, "क्या काम है ?"

"काम क्या ? मैं आयी हूँ।" कहते हुए मानकुँवर देवी अन्दर आयी, "चोबदार तुम बाहर जाओ। क्यों जी, तुम यह क्या करने बैठे हो ? मुझे भी कुछ बताओ।"

शान्तिचन्द्र ने शान से मुरारपाल से कहा, "आप अब जाइये। मेरी बात भूल न जाइये।"

"नमस्कार।" मुरारपाल वहाँ से चला आया। पति-पत्नी की बात के बीच खड़े रहना उसने ठीक न समझा। बाहर निकलते ही, बगल के छज्जे पर उसने तीन-चार युवा स्त्रियों को खड़े देखा। एक आध को परिचित-सा जानकर वह उनकी ओर घूम पड़ा। पर जिसका मुख कल साथ में आयी लड़की के समान मालूम दिया, उसने तो घूंघट निकाल रखा था। मुरारपाल निराश हो गया।

इधर सेठ शान्तिचन्द्र मानकुँवर देवी की तेजी शान्त करने की चेष्टा करने लगे, "बात क्या है ? क्यों इतनी परेशान हो रही हो ?"

"परेशान न होऊँ ? सारा नगर तुम्हारे प्राणों के पीछे पड़ा हुआ है। कुछ मालूम है ?"

दण्डनायक की छाती धड़कने लगी, "क्यों ? कारण क्या है ?"

"चन्द्रावती के यति को तुम यहाँ बुल रहे हो, इस कारण। जरा बताओ, मीलनदेवी कहाँ हैं ?"

सेठ और ज्यादा घबराते हुए बोले, "जरा धीरे बोलो। कोई सुन लेगा।"

"कौन नहीं जानता कि मीनलदेवी कल रात चन्द्रावती चली गयी हैं और चन्द्रावती की सेना पाटन के दरवाज़े पर पड़ी हुई है? अब भी धीरे बोलूँ!"

सेठ की हालत बुरी हो गयी, "तुमसे एक बात कहता हूँ। किसी को भी यह बात नहीं बताना, महारानी जी यहाँ से सबका समाधान करने के लिये गयी हैं और कल शाम तक लौट आयेंगी, सो घबराने की बात नहीं है।"

"और चन्द्रावती की सेना क्या तुम्हारी सगी लगती है?"

"परन्तु, है भी कहीं चन्द्रावती की सेना? किसी ने गप उड़ा दी है।"

"हाँ जी, तुम ही तो हो एक राजा हरिश्चन्द्र, हो और तो सब झूठे हैं न! अब सीधे से घर चलो। हमें यह दण्डनायकी नहीं चाहिये। क्यों इस बुढ़ापे में सफेद बालों में धूल डलवाने बैठे हो?"

शान्तिचन्द्र कुछ कठोर हुए, "सेठानी, मेरा कर्त्तव्य इस समय पाटन की रक्षा करना है, और इस पैंसठ साल की अवस्था में मैं पीठ नहीं दिखाऊँगा। महारानी जी की आज्ञा का मै कभी निरादर नहीं कर सकता। कुछ समझीं?"

"क्यों करोगे निरादर? तुम तो बाप-दादों की इज्जत को गँवाने बैठे हो। सारा नगर आकर यहाँ टूट पड़ेगा तब क्या करोगे? कोई पाटन में पराई सेना घुसने देगा?"

"यों ही बक रही हो। तुमसे किसने कह दी यह अफवाह? लोग आयेंगे तो मैं उत्तर दे दूंगा?"

"क्या ऊत्तर दे दोगे?"

"यही कहूंगा कि जो कर सको, कर लो। राजमहल में घुसने की किसी की सामर्थ्य नहीं है। मुझे अपना कर्त्तव्य पूरा करना है। अरे चोबदार! यहाँ नायक कौन है?"

इसी समय लोगों का हो-हल्ला सुनायी दिया। शान्तिचन्द्र ने कहा, "यह हल्ला कैसा है?"

सेठानी बोली, "ये तो वे ही सब लोग हैं।"

बड़ी भयंकर, जोशभरी आवाजें सुनकर शान्तिचन्द्र घबराये। अब कैसे होगा, क्या होगा? आज पाटन की हवा बदल गयी थी। महारानी, यति और

शान्तिचन्द्र की योजनाओं को भूमिसात् करने समाज आगे बढ़ रहा था। उस समाज की प्रलयकारी तरंगों ने ताण्डव नृत्य करना आरम्भ कर दिया था और यह देख शान्तिचन्द्र गम्भीर सोच में पड़ गया था। उसने चोबदार को बुलाया, "चोबदार, कल्याण नायक को बुलाओ।"

कल्याण नायक वहीं था। वह आ गया।

"कल्याण ! यह सब क्या सुनायी पड़ रहा है ?"

"मैं भी यही सोच रहा हूँ, महाराज। भारी आवाज़ें आ रही हैं।"

"नायक, तुम स्वामिभक्त हो। इस समय तुम्हारी परीक्षा का समय आ गया है। तुम्हें मालूम तो होगा, कल रात जरूरी काम से महारानी जी पाटन से बाहर गयी हैं। उनके वापस आने तक हमें हर प्रकार से राज्य की रक्षा करनी है। तुम महल के अगले दरवाजे पर रहो और समय आने पर उसे बन्द करने के लिये भी तैयार रहो। मैं भी तैयार होकर चौक में आता हूं।"

"परन्तु महाराज, हमारे सिपाहियों के बारे में कुछ भी ठीक नहीं है। कल रात से सब को महारानी के यहाँ न होने का सन्देह हो गया है और इससे वे लोग बदल गये।"

"कोई हर्ज नहीं, तुम दरवाजा सम्भालो। मैं अभी सबको समझाये देता हूं। सेठानी तुम्हें जाना हो तो जाओ। मैं तो यहीं रहूँगा।"

मानकुँवर देवी पति की इस दृढ़ता को देखकर प्रसन्न हुई, बोली, "और क्या, इस उमर में मैं तुम्हें छोड़कर चली जाऊँगी ?"

"तो ठीक है।" कहकर शान्तिचन्द्र तैयार होने लगे और कल्याण नायक पहरे पर चला गया।

मानकुँवर देवी चुपचाप बाहर चली गयी।

'जय सोमनाथ' की आवाज धीरे-धीरे और साफ और तेज आने लगी। शान्तिचन्द्र ने महल की ऊँची खिड़की से उमड़ते जन-समूह को देखा और उसके नेताओं को पहचानने की कोशिश की। उसे ऐसा लगा कि जैसे दूर से एक विशाल नदी पहाड़ से पहली बार निकलकर समुद्र में मिलने जा रही हो। दण्डनायक परेशान हो सिर थामकर बैठ गया।

दो-तीन घण्टे बीते होंगे कि कल्याण नायक दौड़ता हुआ आया।

"महाराज, मंडलाधिकारी खेंगार जी आये हैं और आपसे तथा महारानी जी से मिलना चाहते हैं।"

शान्तिचन्द्र घबराहट को छिपाते हुए बोले, "तुमने क्या उत्तर दिया?"

"यही कि महारानी जी शोक के कारण किसी से नहीं मिलतीं। और शातिचन्द्र जी ध्यान में बैठे हैं।"

"फिर।"

"वे बोले कि मैं सेठ के खाली होने तक प्रतीक्ष करूंगा। सो, लाचार होकर मैं उन्हें अन्दर ले आया हूं और नीचे सभा-भवन में बिठा दिया है।"

"ठीक है। मैं आ रहा हूं। हमारे पास सिपाही कितने हैं?"

"करीब डेढ़-सौ।"

"लेकिन उपद्रव मचने पर आज्ञा-पालक कितने होंगे?"

"तब तो शायद पचास-साठ ही साथ दे पायेंगे।"

"अच्छा तो, बाकी लोगों को किसी बहाने अभी महल से बाहर निकाल दो; पिछले द्वार से। हमारे यहां और जरूरत का सामान तो है न?"

"जी हां।"

उस समय का राजमहल महल होने के साथ रक्षा के लिए छोटा-मोटा दुर्ग भी हुआ करता था और वहाँ सब तरह का आराम रहा करता था। विपक्षी के घेरे को सहने की क्षमता वहां रखी जाती थी। शान्तिचन्द्र ने कहा, "तुम चार-पांच विश्वासपात्र सिपाहियों को लेकर अगले दरवाजे पर जाओ और यह प्रबन्ध रखो कि बिना मेरी आज्ञा के दरवाजा न खुले।"

शान्तिचन्द्र सभा-भवन में गये। सभा-भवन विशाल, रत्न जटित और शानदार था! एक कोने में खड़े हुए खेंगार आतुरता से अपनी मूंछों पर ताव दे रहे थे। शान्तिचन्द्र ने पूछा, "कहिए, मंडलाधिकारी जी, इस समय कैसे आगमन हुआ?"

"मैं महारानी से मिलना चाहता हूं।"

महारानी जी का मिलना तो मुश्किल है, वे शोक में हैं।" 'महारानी' पर शान्तिचन्द्र ने जरा जोर दिया।

"कोई बात नहीं। मैं अन्दर जाकर ही उनसे बात कर लूंगा।"

"परन्तु इस समय वे मिलेंगी ही नहीं, ऐसा मालूम होता है। तुम्हें अभी क्या जरूरत पड़ गयी ?"

"क्यों नहीं मिलेंगी ?"

"उनकी सख्त आज्ञा है कि कोई उनसे मिलने न आये।"

"अच्छा तो कुमार जयदेव तो मिलेंगे ? वे तो शोक में नहीं है ?"

"परन्तु ऐसा क्या आवश्यक कार्य आ पड़ा है ?"

"देखिये सेठ शान्तिचन्द्र जी, लोग कह रहे हैं कि महारानी जी और कुमार जयदेव पाटन से भाग गये हैं, और मुझे इसका निश्चय करना है।"

"खेंगरसिंह जी ! आप अभी तक महाराज कर्णदेव के अभिन्न मित्रों में से रहे हैं। आज आप मित्रता का भाव लेकर आये हैं या शत्रुता का ?"

"सेठ जी। महाराज का पुत्र मेरे सर का ताज है। परन्तु इस वजह से मैं पाटन को डूबते नहीं देख सकता। आप कुमार जयदेव को बुला दीजिए। उनसे मिलकर मैं चुपचाप चला जाऊंगा।"

"अच्छा तो सही बात सुन लीजिये मंडलाधिकारी—मुंजाल और देवप्रसाद मिलकर पाटन पर चढ़ायी करने वाले थे, अतः उन्हें रोकने के लिये वे मुझे यहाँ महल सौंपकर चन्द्रावती गये हैं।"

"सेठ जी, मुझे धोखा देना चाह रहे हो !"

"नहीं यह बात नहीं है।"

"आप यह बहाना क्यों बना रहे हैं ? स्पष्ट कहिये न कि आपका वह यति रानी को चन्द्रावती ले गया है और वहाँ से सेना को लेकर रानी अब पाटन को हस्तगत करने आ रही हैं।

"वाह ! महारानी के भला ऐसा करने का कोई कारण भी हो ?"

"कारण यह कि इससे मंडलाधिकारियों को घबराहट मे डालकर वश में कर सकें। सच पूछिये शान्तिचन्द्र जी, तो यह गुर आपके ही सिखाये हुए हैं। लेकिन अब बाहर जोश में भरे हुए लोगों को तो कोई उत्तर दीजिये।"

"कौन हैं बाहर, और वे क्यों यहाँ आये हैं ?"

"कौन हैं ? अरे यह पूछिये कि कौन नहीं हैं ? मेहता जी, महारानी ने पाटन की नाक नीची कर दी है, अब पछताना पड़ेगा। लोग प्राण लेने पर

उतारू हो रहे हैं।"

"खेंगार जी, लोगों से मैं तो चुपचाप बैठने को कहूँगा। आखिर, रानी राज्य की स्वामिनी है। उन्हे सब कुछ करने का अधिकार है।"

"पागल हो रहे हैं, सेठ जी! पाटनवासी दरवाजे पर खड़े खून के प्यासे हो रहे हैं। ऐसी बात भूलकर भी मुँह से मत निकालियेगा। पाटन में दूसरे का घुस आना कितना मुश्किल है, यह अभी आपको मालूम हो जायेगा। हम दरवाजे बन्द करके बैठेंगे। अगर आपने बीच में बाधा डाली तो आपके भले बुरे के हम उत्तरदायी नहीं।"

शान्तिचन्द्र उलझन में पड़ गये। इस मौके पर क्या करना चाहिये, उन्हें कुछ नहीं सूझा एक ही विचार उनके मस्तिष्क में घूम रहा था कि इस समय लोगों के आगे न झुकें और किसी तरह रानी के आने तक सत्ता बचाये रखें। अतः उन्होंने खेंगार से कहा, "मंडलाधिकारी मेरा कर्त्तव्य तो इस समय शासन की रक्षा करना है। बहुत होगा तो मैं गढ़ में ही बैठा रहूँगा। बाहर से लोग जो चाहें करें।"

"लोग अभी महल में आ जायेंगे। शान्तिचन्द्र जी, आप हट छोड़ दीजिये और पाटन के द्वार हमें सौंप दीजिये। बस, हमें और कुछ नहीं चाहिए।"

"आप जैसे कितने ही मंडलाधिकारी भी मुझे मेरे रास्ते से नहीं हटा सकते।"

"अब भी मेरी सलाह मान लीजिये। आप भी पाटनवासी हैं। पाटन की इज्जत पर पानी मत फेरिये।"

"मेरा कर्त्तव्य अपने राजा की इज्जत रखना है और अगर चन्द्रावती के जैन आ जाते हैं तो वे भी कौन से पराये हैं?"

मंडलाधिकारी ने पीछे लौटते हुये कहा, "आपके लिये वे सगे होंगे हमारे लिये तो पराये ही हैं। आप नहीं मानते तो न मानिये। मैं तो चला।"

"मंडलाधिकारी, अब तुम बाहर नहीं जा सकते। महल के दरवाजे बन्द हैं।"

खेंगार घमंड से पीछे लौटा और गुस्से में बोला, "मुझे कैद करते हो।"

उसने अपनी तलवार की मूठ पर हाथ रखा।

"क्षमा करें। इस समय राजमहल का द्वार नहीं खुल सकता।"

"उन सब लोगों का क्या होगा जो बाहर मेरी राह देख रहे हैं?"

"हार-थक कर वे अपने घर लौट जायेंगे। पर दरवाजे किसी हालत में नहीं खुल सकते।"

"क्यों? एक कोमल और अधिकारपूर्ण स्वर आया। दुर्बल, किन्तु तेजस्वी मुख लिये त्रिभुवनपाल द्वार पर खड़ा था। उसके पीछे उदा उसकी पीठ पर एक हाथ रखे खड़ा था। साथ में लीलाधर वैद्य और सामल बारहट भी थे।

शान्तिचन्द्र और खेंगार त्रिभुवन का भव्य मनोहर रूप देखते ही रह गये।

सामल ने उच्च स्वर से कहा, "शान्तु मेहता, पाटन की प्रजा बाहर खड़ी चिल्ला रही है, ये द्वार बन्द क्यों कर रखे हैं? गो-ब्राह्मण रक्षक के द्वार कभी बन्द हुए हैं?"

"शान्तिचन्द्र गुस्से से बोले, "चारणजी, मैं किस-किस को उत्तर दूं? मुझे राज्य की रक्षा करनी है। किसकी सामर्थ्य है कि द्वार खोले, मैं उसे काटकर फेंक दूंगा।"

त्रिभुवनपाल ने दाँत पीसे। अपने को शान्त करने का प्रयास करता हुआ वह बोला, "मेरी सामर्थ्य है, मेहता जी! पिता जी नहीं हैं, कुमार जयदेव नहीं हैं, अतः आज मुझे पाटन की लाज रखनी है। मैं स्त्रियों की तरह न छुपकर, दरवाजे खोलूंगा।"

शान्तिचन्द्र और खेंगार ने त्रिभुवन को पहचान लिया। पहला घबरा गया और दूसरा हर्षित हो उठा, "वाह! मेरे मंडलाधिकारी के लाल! चिरंजीव रहो मेरे सोलंकी वीर!"

शान्तिचन्द्र ने गिड़गिड़ाते हुए कहा, "लेकिन, जरा मेरी भी तो सुनो।"

"नहीं। सुनने का समय नही है। पाटन की प्रजा के स्वागत में देर नहीं की जा सकती। मैं जाकर दरवाजा खोलता हूँ। रोको मुझे कोई?" कहता हुआ त्रिभुवन चौक में आ गया। चबूतरे से महल का कोट कुछ ही दूर था।

और दोनों चौक किसी विशेष अवसर पर काम आते थे। खेंगार भी त्रिभुवन के पीछे-पीछे हो लिया। शान्तिचन्द्र की सारी दृढ़ता चली गयी। खेंगार को रोक लेना आसान था, पर त्रिभुवन—!

वह बोला, "कुमार, तुम्हें मेरी आज्ञा का पालन करना चाहिए, मैं यहाँ का दंडनायक हूँ।"

त्रिभुवनपाल कुछ न बोल, कोट के द्वार पर जाकर कल्याण नायक से कुछ कहने लगा। कल्याण नायक उलझन में पड़कर शान्तिचन्द्र की ओर घूमा तो उसने दंडनायक को निराशा से सिर नीचा किये देखा। वह भी चुपचाप खड़ा रहा। खेंगार ने खिड़की खोली और जिस तरह बड़ी कठिनाई से बाँधे हुए बाँध में अगर एक छोटा-सा छेद हो जाये तो उसमें से सारा पानी निकलने लगता है, उसी प्रकार उस छोटी-सी खिड़की में से पाँच-पाँच, सात-सात व्यक्ति अन्दर घुस आये। उन्होंने अर्गला हटाकर द्वार खोल दिया।

खुले हुए द्वार से एक भारी समूह अन्दर आया और सारे चौक में फैलने लगा।

: २७ :

त्रिभुवन लीलाधर का हाथ थामे लौट पड़ा और सभा-भवन मे आया। यहाँ पहुँचकर उसकी दृष्टि अन्दर की ओर एक दरवाजे पर गयी। वहाँ उसने एक चिन्ताकुल और परिचित मुखड़ा देखा और चौंक गया। उसने होठ दबा लिए मुट्ठियाँ भींच लीं और हृदय को कड़ा कर लिया। प्रसन्न उमंग से भरी मुद्रा में दरवाजे से बाहर निकल रही थी। उसे त्रिभुवन से असीम स्नेह की आशा थी, पर सामने कठोर पत्थर की तरह खड़े त्रिभुवन को देख उसे झिझक हो गई। त्रिभुवन थक गया था, सो सुनहले सिंहासन के पास जाकर उसके तकिये के सहारे बैठ गया।

लोगों की भीड़ महल के अन्दर घुस तो आयी, परन्तु उनमें से कुछ आज पहली बार महल में आए थे, उनके हृदय में बहुत हिचक और सम्मान था। बहुत से लोगों की दृष्टि में राजमहल भगवान के मन्दिर के समान था, उसकी

शान्ति भंग करने की उन्हें हिम्मत न हुई। डूंगर नायक जैसे व्यक्ति भी सब लोगों को आदर के साथ दूर खड़ा रखने का प्रयत्न करने लगे। मात्र सामन्त, सेठ-साहूकार और अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति ही आगे बढ़कर सभा-भवन में पहुँचे। डूंगर नायक आदि दरवाजे के पास ही खड़े होकर देखने लगे। उदा अच्छे-अच्छे माननीय लोगों को ही अन्दर ले जाने का जिम्मा लेने लगा। सब को यह विश्वास हो गया कि सचमुच उदा मारवाड़ी पाटन की इज्जत बचाने वालों में है। सब के आने के बाद उदा त्रिभुवनपाल के नजदीक गया और इसके पहिले कि उसकी इस अशिष्ठता को कोई देखता, वह बड़े-बड़े सेठ-साहूकार और प्रतिष्ठित व्यक्तियों से भी आगे जा बैठा और दुपट्टे से त्रिभुवन पर हवा करने लगा। लीलाधर ने सब को बैठने को कहा। अब तक शातिचन्द्र के आगे अन्धेरा छा रहा था और वे त्रिभुवन से कुछ दूर पर खड़े शोकाकुल हो रहे थे कि रानी को क्या उत्तर दिया जायेगा?

सब के शान्त हो जाने पर खेंगार कहने लगा, "त्रिभुवनपाल जी! अब आप हमारे सरताज हैं। इस परिस्थिति में आपको कुछ कहना ही होगा।"

"खेंगार काका, बड़े होने के नाते पाटन की लाज रखना आपके हाथ है। आपका क्या कहना है शान्तिचन्द्र जी?"

सेठ शान्तिचन्द्र जैसे नींद से जागे हों। बड़ी कठिनता से बोले, "महाराज कुछ मेरी भी सुन लीजिए। इतने सालों की सफेदी पर क्यों धूल डाल रहे हैं?"

"पाटन के आप जैसे शुभचिन्तक हैं, वैसा ही मैं भी हूं। मैं जीवन भर यह प्रयत्न करता रहा हूं कि सोलंकियों का सूर्य सदा निकला रहे। मेरी बात भी तो मानिये।"

दो-चार नायक एक साथ बोल उठे, "क्या कहना है, कहिए।"

वृद्ध शान्तिचन्द्र के मुख पर गौरव झलक रहा था।

त्रिभुवन ने कहा, "पहले आप बैठ जाइये सेठजी! फिर जो कहना है शान्ति से कहिये।"

बैठते हुए दंडनायक ने कहा, "भाइयो, आप लोग क्यों उतावले हो रहे हैं? रानी जी पाटन में शान्ति स्थापित करने के लिए ही यहाँ से गयी हैं।

एक ओर क्रोधित मुंजाल घेरा डाले हुए है, दूसरी ओर मंडलाधिकारी की सेना मेरल में पड़ी है। इन दोनों को समझाकर, मनाकर रानी जी कल शाम तक पाटन लौट आयेंगी। आप व्यर्थ सन्देह न करें। कल शाम तक उनकी राह देख लो, फिर जो चाहे कीजियेगा। तब तक ईश्वर के लिए शासन-तन्त्र को हानि मत पहुँचाइये। एक दिन की तो बात है।"

यह बात सुनकर कुछ लोग पिघल गए। उन्हें दंडनायक का कहना उचित मालूम हुआ।

उदा ने शंका प्रकट की, "अगर हम धोखा खा गए तो ?" वह सोच रहा था कि इस हंगामे के शान्त होने से उसकी सारी मेहनत निष्फल हो जायेगी।

एक-दो आदमियों ने उसका समर्थन किया। लीलाधर वैद्य ने पूछा, "अगर हम सब द्वार बन्द रखें तो कैसे धोखा खा जायेंगे ?"

दंडनायक बोले, "निस्सन्देह। आप ऐसा करें। मैं सौगन्ध खाने को तैयार हूँ, किसी भी शत्रु को अन्दर नहीं आने दूंगा। मैंने सभी दरवाजों पर तो पहरा लगा रखा है।"

"यह बात तो सच है।" सेठ वस्तुपाल ने कहा।

त्रिभुवनपाल, खेंगार आदि को लगा कि घबराने या चिन्ता की कोई वजह नहीं है। परन्तु उदा के पेट में खलबली मच रही थी। उसने धीरे से पूछा, 'लेकिन, चन्द्रावती की सेना कहाँ तक आ पहुंची है, यह पता लगाया ? संभव है, सीमा पर ही आ पहुंची हो ?"

शान्तिचन्द्र ने विश्वास दिलाया, "यह बिलकुल झूठ बात है। मुझ पर विश्वास नहीं ? चन्द्रावती की सेना मधुपुर है और वहाँ से आगे नहीं बढ़ेगी।"

"तब कोई हर्ज नहीं।" कहते हुए तीन-चार आदमी उठे। उनका आवेश ठंडा पड़ गया था। शान्तु महता को कुछ धैर्य बंधा।

तभी बाहर खड़ा हुआ जन-समूह एकदम चिल्ला उठा और 'जय सोमनाथ' का नारा लगाने लगा। खेंगार, त्रिभुवन और अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों को साधारण लोगों का योंही चिल्लाना अच्छा नहीं लगा। त्रिभुवन ने कड़े स्वर में पूछा, "कल्याण नायक, यह क्या धांधली है।"

कल्याण कुछ उत्तर देता कि तभी डूंगर नायक अन्दर आता दिखलायी पड़ा। उसके हाथ में एक पत्र था।

दो-तीन आदमियों ने पूछा, "क्या है?"

डूंगर नायक ने प्रणाम किया और बोला, "अन्नदाता? विखराट से दूत आया है और महारानी जी के नाम पत्र लाया है।"

त्रिभुवन ने दरवाजे पर खड़े दूत को देखा, जो उतावली और आवेग के कारण हाँफ रहा था। त्रिभुवन ने कहा, "लाओ देखूं।" पत्र पढ़ कर उसकी भौंहों में बल पड़ गये। जोश में वह खड़ा हो गया। दंडनायक की ओर क्रोधित दृष्टि से देख उसने कहा, "क्यों, शान्तु मेहता, किसे बहका रहे थे आप? चन्द्रावती की सेना तो सीमा पर आ पहुंची है।"

सब लोग आवेश में खड़े होकर पूछने लगे, "क्या हुआ? क्या हुआ?"

"शान्तु सेठ हमें बहका रहे थे। देखिये, विखराट से वहाँ के मुखिया ने यह सन्देश भेजा है।" और वह पत्र पढ़ने लगा, "चन्द्रावती के सैनिकों ने विखराट में पड़ाव डालना शुरू कर दिया···।"

यति ने कुछ टुकड़ियों को विखराट की तरफ भेज दिया था, क्योंकि लौटते हुए रानी वहाँ पड़ाव डालना चाहती थी। परन्तु विखराट के मुखिया को इसकी कोई पूर्व सूचना नहीं मिली थी, अतएव घबराकर उसने महारानी के पास यह सन्देश भेज दिया था।

पत्र सुनकर सब ऐसे खड़े रह गये जैसे उन पर बिजलियाँ गिर गयी हों।

शान्तिचन्द्र बुरी तरह घबराकर दैवी सहायता की याचना कर रहा था। उसने अन्तिम उपाय सोच कर कहा, "क्या बात है? हम दूत को बुलाकर ठीक-ठीक मालूम करें।"

उदा आगे आकर जोर-जोर से कहने लगा, "आपका दिमाग तो नहीं खराब हो गया है, मेहताजी? हमें बातों-ही-बातों में उड़ा देना चाहते हैं? सोलंकी महाराज, आप शीघ्र ही कुछ कीजिए।"

चन्द्रावती की इतनी सेना बिलकुल निकट आ गयी है, सोचकर सब लोगों का दिल धड़क रहा था। शान्तिचन्द्र बोलने में चतुर था। उसने कहा, "उदा सेठ, जरा शान्ति से काम लो।"

"शान्ति, शान्ति, कौन बोल रहा है यह ? जरा मैं भी तो उसका नाम जानूं। सामल बारहट अब तक घुटनों से पट्टी बांधे शांति से बैठे थे। अब वे भी धीरे-धीरे खड़े हो गये, "शान्ति का नाम लेते इसकी मां का दूध नहीं लजाता ? क्या यहां ऐसा कोई मां का लाल नहीं है जो इसकी जीभ खींच ले ?"

शान्तिचन्द्र अपनी रक्षा में बोले, "जरा शान्त हो जाइये बारहट जी। मुझे पूरी बात कहने दीजिए।" वे इस सभा में अपने पक्ष के अकेले थे और उन्हें सूझ नहीं रहा था कि क्या, करें ? हालांकि बिखराट से आये दूत ने सब मामला बिगाड़ दिया था, फिर भी उन्हें आशा थी कि अभी तरकीब से सब को समझा कर वे शान्त कर देंगे। मुरारपाल पर उन्हें पूर्ण विश्वास था कि वह कल सांझ तक महारानी को राजमहल में ले जायेगा और तब उनका दायित्व भी पूरा हो जायेगा। सामल की जीभ से वे काफी परिचित थे, और इसीलिए उन्हें किसी तरह चुप करना चाहते थे। परन्तु बारहट क्या योंही मानने वाले थे ?

तेज होकर बारहट बोले, "शान्त हो जाऊं ? बहुत समय तक शान्त पड़ा रहा, और तुम जैसों की चलने दी। मेहता तुम्हारे बाप ने चार बेटों को साथ लेकर सोमनाथ के आगे केसरिया किया और आज उसी बाप के बेटे तुम पाटन को नष्ट करने निकले हो ? और ये सब लोग कायर बने देख रहे हैं ? वनराजदेव के पाटन में ऐसे डरपोक !"

सामल्ल चारण की ख्याति सारे पाटन में थी। स्त्रियां तक उसके यशोगान गाया करती थीं। किन्तु बहुत कम लोगों ने उसे अपनी आंखों देखा था, आज सभी उसे चकित होकर देखने लगे। इस समय तो उसकी आवाज दूर-दूर तक गूंज गयी। पहले उसने सिर हिला-हिलाकर आधा कवित्त और आधा गद्य कहा, धीरे-धीरे उसका स्वर तेज और प्रभावशाली होता गया। कंपकंपी दूर हो गयी, शरीर तन गया और मन्द ज्योति आंखों में अनोखा प्रकाश छा गया। जिन शब्दों ने कभी भीमदेव के जीवन को उत्साहित किया था, वे आज फिर से गरज उठे और वीरता की दावानल प्रकट करने लगे। त्रिभुवन ने उसे शान्त करने की गरज से कहा, "बारहट जी।"

परन्तु आज वह किसी की नहीं सुनने वाला था, बोला, "मेरे सोलंकी वीर ! कुमार ! आज कहाँ मेरा वीर पाटन ? कहाँ मेरे शूरवीर सोलंकी ? ये दिन देख मेरा हृदय फटा जाता है। मैंने पाटन में शौर्य और साहस की सीमायें देखी हैं; मैंने आन के पीछे पिता को बीस-बीस बेटों की आहुतियाँ देते देखा है; कली रूपी बालकों को गुजरात के गौरव के पीछे केसरिया करते देखा है; प्रेमान्ध पतियों को, युद्ध में भेजने के लिए पत्नियों को आग में सती होते देखा है। मैं भीम और विमल के साथ घूमा हूँ। डेढ़-डेढ़ महीने तक हमने इस कोट के पीछे रहकर अफगानों को हैरान किया है। इस समय वही मंत्र सामने होना चाहिए और उसके साथ प्रभु की आराधना करनी चाहिए, बस।"

बारहट के शब्द कभी धीमे हो जाते, कभी तेज हो जाते। सब सुनने वाले एकाग्र चित्त सुन रहे थे। तभी बारहट ने बुलन्द आवाज में कहा, "जय सोमनाथ।" और सबको मालूम हो गया कि वह कौन-सा मंत्र है जिसका जिक्र अभी बारहट कर रहे थे।

क्षण-भर मरघट की-सी चुप्पी रही, फिर वहाँ खड़े और बाहर खड़े लोगों का जोर का स्वर आया, "जय सोमनाथ।" इसके साथ ही अनेक तलवारें म्यान से बाहर निकल आयीं।

त्रिभुवन आगे आकर कहने लगा, "पाटन के बहादुरो, बारहट जी ने आज दूसरी बार पाटन को बचाया है। अब एक ही रास्ता है। द्वार बन्द करके हमें लड़ने के लिए तैयार हो जाना चाहिए। खेंगारसिंहजी आप बड़े-बूढ़े और अनुभवी हैं, अतः इस काम को आप ही पार लगाइये।"

वस्तुपाल सेठ शान्तिचन्द्र की ओर घूमकर बोला, "शान्तिचन्द्र सेठ का अब क्या होगा ? वे बोलते क्यों नहीं ?" शान्तिचन्द्र इस समय तिरस्कृत और अपराधी बने खड़े थे।

उदा ने तपाक से कहा, "होना क्या है ? ये अब अलग बैठें और ईश्वर का भजन करें।"

वस्तुपाल को कोषाध्यक्ष बनने की बड़ी इच्छा थी। परन्तु अपने मुँह से वह कैसे यह कह सकता था। अजीब-सी दृष्टि से उसने उदा की तरफ देखकर

कहा, "उदा सेठ इस समय खजाने की रक्षा कौन करेगा ? यह तो एक बहुत जरूरी बात है ।"

उदा हाथ में आयी बाजी को योंही गँवा देने वाला नहीं था। वह त्रिभुवन की ओर घूमा, "महाराज, मेरी सलाह मानिये तो इस समय किसी को कोषाध्यक्ष नियत करना बेकार है । घड़ी-भर में क्या हो जायेगा, इसका किसी को कुछ मालूम नहीं है । सो, अच्छा तो यही रहेगा कि खजाने पर ताले डालकर पहरा बिठा दिया जाय, जिससे कोई झंझट ही न रहे ।"

खेंगारसिंह ने कहना चाहा, "लेकिन, रुपयों के बिना—"

उदा बोल उठा, "क्या रुपया-रुपया लगा रहे हैं । चलिये, जब तक उपद्रव रहेगा, मैं अपने पास से रुपया दूंगा ।"

सारे सेठ लोग देखते रह गये । इस मारवाड़ी की बुद्धि कहाँ चरने चली गयी ? परन्तु राजपूत लोग उदा की प्रशंसा करने लगे और सब व्यापारियों में उसी को ज्यादा उदार समझने लगे ।

इसी समय सामल चरण धम् से भूमि पर गिर पड़े । इतना बोलने के बाद वे अपने को काफी अशक्त और वृद्ध महसूस कर रहे थे और छाती पर सिर झुकाए खड़े-खड़े हिल रहे थे । सब लोग उनकी ओर घूम पड़े । लीलाधर वैद्य ने उनकी नाड़ी सम्भाली और उनके मुख से निकल गया, "शिव ! शिव ! शिव !"

सारी सभा में शोक छा गया । जिस बारहट ने प्राचीन वीरता को सजीव करके उसमें सच्चे जीवन की ज्योति प्रकट की थी, आज वह इस संसार को छोड़ गया था । पाटनवासियों को उनके पूर्वजों के गुण-साहस को याद दिला कर वह परलोक सिधार गया था । पहली बार सामल ने भीमदेव के साथ लड़ते हुए अपने बाहुबल से पाटन को बचाया था और दूसरी बार उसके प्रपौत्र को पूर्वजों का सन्देश देकर ।

: २८ :

शासन के अतिरिक्त प्रसन्न को और बातों का भी ख्याल रखना था । उसका दिल बेचैन था । इतनी सारी भीड़ में वह बारहट की तेज बातों की

उपेक्षा कर त्रिभुवन की राह देख रही थी। बाहरट के गिरते ही वह निकट गयी और मात्रा से बोली, "बहन अपने पिता जी को बुलाओ तो ?"

"क्यों पेट में दर्द हो रहा है अथवा किसी का दर्द मिटाना है ?"

"बड़ी मुंहजोर हो गई है मात्रा तू। ठहर जरा अच्छा, देख तो, गजानन दादा क्या बारहट जी को उठाने वालों के साथ हैं ?"

"लेकिन काम क्या है ?"

"तेरा सिर। चली जा बहन शाबाश !"

"पहले काम बता।"

"अच्छा तो मैं ही जाती हूँ। बिना आप मरे स्वर्ग नहीं मिलता।" प्रसन्न वेग से पिछले कमरे में गयी और लीलाधर वैद्य से बोली, वैद्य जी, मरने वाले तो मर गए, अब जीवितों का भी कुछ ध्यान है ?"

"क्यों ? क्या बात है ?"

"मुझे कोई नहीं खाता, पर त्रिभुवन कल ही तो बीमारी..."

बीच में ही लीलाधर बोल उठे, "अरे हाँ। मुझे भी बुढ़ापे की वजह से कुछ ख्याल नहीं रहता। लेकिन वह सोलंकी सिंह तो लड़ने को तैयार बैठा है अच्छा, मैं उसे ले आता हूँ, तुम बिछौने का प्रबन्ध कराओ।"

"आप ले तो आइये।" कहकर प्रसन्न त्रिभुवन के कल वाले बिछौने को ठीक करने चली गयी।

मात्रा आयी और प्रसन्न से कहने लगी, "क्यों ? पकड़ी गयी न चोरी ?"

"कैसी चोरी ?"

"अरी री, लजा क्यों रही है ? जरा अपना मुंह तो दिखा। भला प्रसन्न कुमारी को कभी किसी ने बिछौना बिछाते देखा है।"

"चुप रह, नहीं तो पिटेगी। देख, तेरे बाप की आवाज सुनाई पड़ रही है, भाग यहाँ से।" कहकर प्रसन्न दूसरे दरवाजे से बाहर चली गई पर आगे नहीं बढ़ी। मात्रा सब समझकर मुस्कराती हुई चली गयी।

प्रसन्न ने वैद्य जी का स्वर सुना, "अब दो घड़ी आराम करो। अभी कुछ देर तुम्हारी जरूरत नहीं पड़ेगी।"

त्रिभुवन का थका हुआ स्वर सुनाई दिया, "लेकिन···लेकिन मैं—"

"लेकिन—वेकिन कुछ नहीं। चुपचाप सो जाइये। सम्भव है, कल लड़ाई का अवसर आ जाए, तब क्या करोगे? आज थकावट मिटाकर ही कल के लिए तैयार रह सकोगे।"

"अच्छा, आप जैसे राजी हों। मैं सोता हूँ, पर नींद न आये तो?—"

"शिवशंकर का नाम लेते रहना। यह दवा पी लो। ठहरो, यह पट्टी तनिक ठीक कर दूं। अच्छा, अब मैं चलूं, पर मुझसे बिना पूछे यहां से हटना मत।"

"अच्छी बात है। और कुछ?"

प्रसन्न को ऐसा लगा कि त्रिभुवन सो गया है। दो-एक क्षण यों ही खड़े रह कर उसने कमरे में झाँका। निश्चिन्त-सा त्रिभुवन पलंग पर पड़ा था, पर उसकी आँखों में नींद कहाँ। पिछले दो दिनों से वह बड़ी उलझन में पड़ा हुआ था। उसने एक गहरा निःश्वास छोड़ा।

प्रसन्न आकर सिरहाने खड़ी हो गयी। उसकी छाया पड़ते ही त्रिभुवन चौंक गया और सिर ऊपर उठाकर देखने लगा। एक क्षण को उसका हृदय उमंगपूर्ण हो गया किन्तु तुरन्त ही उसकी मुद्रा कठोर हो आयी। प्रसन्न से बिछुड़ने का मौका सोचकर उसके मुख पर और भी सख्ती आ गयी। प्रसन्न की भी हिम्मत पस्त हो गयी। कुछ झिझकते से उसने पूछा, "त्रिभुवन तुम्हारी …आपकी तबीयत कैसी है?"

त्रिभुवन के मस्तिष्क में एक विचार कौंधा—उसने प्रसन्न को उस दिन के बाद कहीं देखा है। उसके साथ एक अन्य स्त्री भी थी। उसकी याद आते ही हृदय क्यों द्रवित हो उठा? थके हुए त्रिभुवन का दिमाग और भी उलझन में पड़ गया था। प्रसन्न को कहाँ और किसके साथ देखा था वह यही सोचने लगा।

प्रसन्न ने मधुरता से कहा, क्यों माथा दुखता है? दबा दूं?" त्रिभुवन को चुप रहते देख प्रसन्न का हृदय फटने लगा। क्यों वह इतना हृदयहीन हो गया है? क्यों पहले की तरह नहीं बोलता?

त्रिभुवन बोला, "प्रसन्न, मेरा मस्तिष्क ठिकाने नहीं है। मुझे याद नहीं आ रहा है, मैंने तुम्हें कहाँ देखा था। या मेरा भ्रम था? नहीं, मुझे लगता

है, मैंने तुम्हें किसी स्त्री के साथ देखा था। कौन थी वह स्त्री !"

"मेरे साथ ? मीनल बुआ थीं। हां—" प्रसन्न बीच में ही रुक गयी।

"क्यों, और क्या कहना चाहती थी ?"

"कुछ नहीं।" प्रसन्न का स्वर दयनीय हो उठा, त्रिभुवन, क्यों मुझसे इतने नाराज हो ? क्यों इस तरह आंखें फाड़ रहे हो ?"

उत्तर में त्रिभुवन कुछ न कह कठोर मुद्रा में उसकी ओर देखने लगा।

"त्रिभुवन, तुम्हें अवन्ति का वहम हो गया। मुझे बुआ जी ले गयी थीं परन्तु मैं तुम्हारे कारण भाग आयी। यहाँ आने के लिए पूरी रात दौड़ना पड़ा, फिर भी तुम्हें विश्वास नहीं होता। अनेक वार तुम रूठे और मनाने से माने और आज फिर तुम अलग-के अलग हो।"

उसकी बातों का त्रिभुवन पर कोई असर नहीं हुआ, बोला, "प्रसन्न, मेरे प्रश्न का क्या उत्तर है ?"

प्रसन्न कुछ रूठी-सी बोली, "कौन-सा प्रश्न ?"

त्रिभुवन ने कुछ सख्ती और तिरस्कार से कहा, "तेरे साथ कौन था ?"

"सच कह दूं ? तुम अधीर तो न हो जाओगे ?" और फिर कुछ रुककर कहा, "मेरे साथ तुम्हारी माता जी—हंसा देवी थीं।"

त्रिभुवन ने आंखें फाड़ते हुए पूछा, "ऐं, वह कहाँ से आयीं !"

"तुम बेचैन मत होओ। मैं सब बतला दूंगी। इस समय तुम शान्त होकर सो जाओ। वैद्य जी अभी-अभी कह गए हैं।"

त्रिभुवन की सख्ती दूर हो गई, "प्रसन्न तू जो कहेगी मैं करूंगा। पर तू मुझे सब कुछ बता दे। इस समय धैर्य रखने का साहस मुझमें नहीं है। तू जो मांगेगी, मैं दूंगा।"

प्रसन्न का हृदय हर्ष और लज्जा से पागल हो उठा। उमंगों से भरी हुई वह दुनियादारी को भूल गयी, "त्रिभुवन मेरी एक बात मान लो, फिर जो कहोगे करूंगी।"

"जल्दी बोल, मेरे प्राण निकले जा रहे हैं।"

"मुझे अपने साथ रहने दो।" कहकर अनुराग में मस्त प्रसन्न घुटनों के बल बैठ गयी और हाथों से त्रिभुवन के पैर स्पर्श करने लगी।

त्रिभुवन का चित्त इस समय किसी ओर ही तरफ था। शीघ्रता से उसने प्रसन्न को उठाया, "प्रसन्न तेरा कहना मुझे स्वीकार है। लेकिन जल्दी से मुझे बता दे कि माता जी कहां थीं ? कैसे आयीं और अब क्यों नहीं दिखाई पड़तीं ?"

प्रसन्न ने उसके हाथ को वक्ष से लगा लिया और खड़ी होकर कहा, "त्रिभुवन हमें मालूम नहीं था, किन्तु माता जी महल में ही थीं। जब कल तुम पर सिपाही हमला कर रहे थे तो उन्होंने तुम्हें देखा और बुआ जी से तुम्हें बचाने की प्रार्थना की। बुआ जी बहुत देर से उन्हें तुम्हारे पिता जी के पास जाने को कह रही थीं पर वे न मानीं। तुम्हारी रक्षा के बहाने बुआ जी ने उनसे वचन ले लिया और लाचार उन्हें स्वीकार करना पड़ा और तुम बच गये।"

'प्रसन्न, ये सब तुझे कैसे मालूम हुआ ?" आतुरता से त्रिभुवन ने पूछा।

"मैंने पीछे खड़े-खड़े बुआजी और आनन्दसूरि को बातें करते सुना था और तुम्हारी माता जी ने भी मुझसे कहा था।"

"मां, मेरी मां। आयीं और इस प्रकार चली गयीं।" त्रिभुवन रो पड़ा, लेकिन इतने साल बाद मीनल काकी ने उन्हें पिता जी के पास कैसे भेज दिया ? पिता जी और मुंजाल काका आज मिलने वाले थे, क्या मीनल काकी को इस बात की खबर थी ?"

"अवश्य होगी। क्योंकि उन्हें ठीक करने के लिए ही तो बुआ जी पाटन से गयी हैं।"

"वे मामा जी और पिता जी को अलग करना चाहती होंगी, अब मैं समझा। धन्य है, काकी तुम्हारी बुद्धि को ?" कहकर त्रिभुवन मुठ्ठियां बांधकर खड़ा हो गया और इधर-उधर टहलने लगा।

प्रसन्न ने डरते-डरते पूछा, "सेना विखराट में गई, तो तब तो मुंजाल को वश में कर ही लिया होगा ?"

अचानक ही त्रिभुवन ने प्रसन्न की ओर घूर कर कहा, "प्रसन्न तू मेरे साथ विवाह करना चाहती है ?"

प्रसन्न ने पलकें झुका दीं, "कितनी बार पूछोगे ?"

त्रिभुवन ने कठोरता से दबे जोश से पूछा, "क्या आशा कर रखी है ?

प्रश्न न समझकर प्रसन्न बोली, "तुमसे पहले स्वर्ग जाने की।"

मंडलाधिकारी और मीनल काकी के बीच सन्धि करने के लिए मुझसे विवाह करना चाहती है क्या ?"

त्रिभुवन, यह क्या ? जहाँ तुम हो, वहीं मैं। तुम्हारी सन्धि और झगड़े मेरे भी सन्धि और झगड़े हैं।"

'मेरे व्रत को तू भी ग्रहण करेगी न ? तेरी बुआ जी के दिन अब पूरे हो चुके हैं। मैं यदि अपने जीते जी उन्हें पाटन में पैर रखने दूँ तो मुझे सोमनाथ की कसम है। यह मेरी प्रतिज्ञा है। बोल, तैयार है मेरी जीवन-संगिनी बनने के लिए ?"

प्रसन्न ने सोचकर सिर ऊपर उठाया, "तुम्हारी प्रतिज्ञा मेरी प्रतिज्ञा है। अब तो सन्तुष्ट हो ? लेकिन तुम्हारा शरीर स्वस्थ नहीं है।"

"मेरे हाथ तड़प रहे हैं, प्रसन्न। देखता हूँ, मीनल काकी कब तक इस भूमि को अपने भार से दबाये रहती हैं। मैं जाता हूँ।" कह कर त्रिभुवन लम्बे-लम्बे कदम बढ़ाता हुआ सिंह की भाँति चला गया, जैसे उसके शरीर में तनिक भी निर्बलता न आयी हो।

प्रसन्न निराश, खिन्न-सी खड़ी रही। उसने त्रिभुवन से समझौता किया, उसकी पत्नि बनने का वादा किया और उस अनाथ को पालने वाली बुआ को जड़ से उखाड़ने की शपथ ली, फिर भी उसका हृदय रो रहा था। हाथ के सहारे सिर टेककर वह देर तक रोती रही।

: २९ :

आनन्दसूरि रानी से अलग होते हुए अपने को बहुत थका हुआ व पागल-सा महसूस कर रहा था। उसका मस्तिष्क भी पूर्णरूप से कार्य नहीं कर रहा था। बस, केवल श्रावकों की उन्नति ही उसे हर घड़ी दिखाई देती थी। वह सोचता, रानी जैन हैं, दंडनायक जैन है, वह स्वयं सलाहकार है, चन्द्रावती की सेना है; जहाँ जरा-सी स्थिरता आयी कि समूचे भारत में जैन मत के नाम से

दीपक जलेंगे; दसों दिशाओं में जैन मन्दिर दिखायी देंगे।

परन्तु बाद में बाजी उल्टी पड़ी दिखाई दी। रानी को जैन-धर्म की अपेक्षा शासन सत्ता अधिक प्रिय थी। शान्तिचन्द्र में नमक नहीं था। उधर देवप्रसाद और मुंजाल जैसे सामना कर रहे हैं। यति ने सोचा, शीघ्रातिशीघ्र एक पासा सीधा फेंकना चाहिए। सैनिकों को पीछे छोड़ वह बाघेश्वरी माता के मन्दिर में जा पहुँचा। वहाँ किसी को न देख, वह प्रसन्न हो गया। मन्दिर के चबूतरे पर बैठा वह सिपाहियों की राह देखने लगा। रानी के साथ जो विचार हुआ था उसके अनुसार मंडुकेश्वर का नाका ही घेर लेने का उसका निश्चय था। पर इतना समय कैसे बीतेगा। इस समय उसकी रग-रग में उत्साह भरा हुआ था।

मन्दिर का पुजारी हाथ में त्रिशूल, कन्धे पर दुपट्टा, पैरों पर खड़ाऊँ पहिने नारियल की गिरी लेकर सामने आकर बोला, "महाराज, यह प्रसाद लीजिये।"

आनन्दसूरि ने तिरस्कार से ऊपर देखा और हाथ उठा दिये। इस समय किसी भी भगवान का आदर करने को वह तैयार नहीं था, बोला, "क्षमा कीजिये, पुजारी जी। आज मेरा व्रत है।

पुजारी हँसा, "महाराज, माता के प्रसाद के लिए व्रत बाधक नहीं होगा। इसे लेने से तो और भी मंगल होता है।"

'पुजारी जी, यतियों के साथ विवाद करके किसी ने कोई सार निकाला है?"

पुजारी जी ने ज़रा कटाक्ष से कहा, "आप यति हैं? इस वेष से तो मालूम नहीं देते। फिर भी वाद-विवाद की क्या बात है। मैं तो अपनी माता का दास हूँ, उसकी पूजा ही मेरा जीवन है। बाकी सब कुछ मैंने आप जैसों को सौंप दिया है।"

"धीरे-धीरे यह सब भी सौंप देंगे। ये मन्दिर भी अब जाने वाले हैं। अब कर्णदेव नहीं हैं, मीनलदेवी हैं।"

पुजारी जी सिर हिलाते हुए बोले, "मीनल देवी आयें या जो चाहे आये, यह भरत-खण्ड बाघेश्वरी माता का है और रहेगा। आपको विद्वान होते हुए भी चाहे कुछ न दीख रहा हो, पर मुझे तो सारे पंथ माता के चरणों में नत

होते दिखायी पड़ रहे हैं।"

यति हँसा, "यह तो सभी कह सकते हैं, पर सच्ची बात तभी मालूम होगी जब जैनों का डंका सारी पृथ्वी पर बजेगा।"

"ठीक कहते हैं, महाराज। पर भारत में भोलानाथ की पूजा होगी और अम्बा भवानी की। एक रूप में या दूसरे रूप में; एक काल में या दूसरे काल में।"

यति फिर हँस पड़ा, "इस समय तो भोलानाथ पहुँचे हैं गजनी और अम्बा भवानी पहुँच गयी हैं पावागढ़।" सोमनाथ की मूर्ति को गज़नवी द्वारा ले जाने की याद यति दिलाने लगा।

"मुझे तो आज भी उन दोनों का प्रभाव आप तक के अन्दर दिखलायी पड़ रहा है।"

"किस प्रकार ?"

"आपको यों मिथ्या अभिमान न हो तो आपको सबका सामना न करना पड़े। सारा गुजरात आपके अभिमान को चूर करने के लिए एक हो जायेगा, समझे ? अब मेरा पाठ का समय हो रहा है।" कहता हुआ पुजारी शान्त-भाव से चला गया।

पुजारी के दो वाक्य ही यति के कानों में गूंजने लगे, "सारे भारत में भोलानाथ और अम्बा भवानी की पूजा होगी।" "और, 'आपके अभिमान को चूर करने के लिए सारा गुजरात एक हो जायेगा।" यति को अँधेरा-सा महसूस हुआ। क्या यह पुजारी भविष्य को जानता है ? क्या यह बात सत्य होगी। यति को क्षणभर के लिए लगा कि उसकी इच्छायें पूरी नहीं होंगी। जैन धर्म को अन्य अनुयायी इतनी श्रद्धा या आदर नहीं देते। अनेक लोग जो ब्राह्मण धर्म को ही समर्थन देते आये हैं, अब कैसे इस नये धर्म वाले साम्राज्य को सहन करेंगे ? भारत में भोलानाथ और भवानी पुजेंगी, क्या यह सच है ?

यति मन्दिर में गया और वहाँ वाघेश्वरी की विकराल प्रतिमा देखकर वह काँप उठा। उसे लगा, जैसे माता के त्रिशूल की नोकें उसे चीरने आ रही हैं; माता के पैरों के नीचे का वाघ मुंह फाड़े खाने आ रहा है। उसे अपने मनोरथ, संकल्प, सब तुच्छ से जान पड़े। उसे ऐसा लगा जैसे विश्व को

नियन्त्रित करने वाली महाशक्ति उसे भी दबाये दे रही है। भयभीत-सा हो वह वहीं खड़ा रहा, हिला नहीं। इतने में किसी ने पास के शंकर के मन्दिर का घंटा बजा दिया। यति को वह घंटा-स्वर अपनी विजय पर एक चोट-सा लगा। क्रोधित होकर वह उस मन्दिर की ओर घूमा। अपने मन से उसने पूछा, क्या यह टंकार देवताओं की विजय प्रकट कर रही है ?" उसका हृदय बैठा जा रहा था। यह भोलानाथ, यह भवानी, यह घंटानाद क्या जन्मजन्मान्तर से चलते आ रहे हैं और चलते रहेंगे ? नहीं, नहीं, यति पागल हो उठा।

तभी किसी का स्वर सुनाई दिया, "महाराज !"

यति जैसे नींद से जगा हो। "क्या बात है ?" उसने क्रोधित होकर पूछा। देखा, एक नायक हाथ जोड़े खड़ा है।

नायक ने कहा, "महाराज, हमारे लिये अब क्या आज्ञा है ? आज्ञा हो, तो यहीं पड़ाव डाल दिया जाय ?"

"पागल तो नहीं हो गये हो ? चलो, मंडुकेश्वर चलें। इस समय भी हमारा बैरी वहाँ आनन्द कर रहा है।" कहकर यति मुड़ा और घोड़े पर बैठ कर आगे चला गया। कुछ दूर पर गम्भीरमल्ल और दो-तीन सिपाही मिले। उन्हें भी साथ ले लिया गया और मंडुकेश्वर का नाका रोककर बैठ गये।

सुबह से रात हो गयी। बैठा-बैठा यति ऊबने लगा। पर रुद्रमहालय में कोई हलचल न जान पड़ी। देवप्रसाद अब तक बाहर न आया था। अधीर होकर यति सैनिकों को आगे कर रुद्रमहालय के द्वार तक आया। वहाँ पूर्ण शान्ति छायी हुई थी। रुद्रमहालय के द्वार को बहुत खटखटाया, तो कुछ देर बाद एक सिपाही ने खिड़की खोली, "कौन हो भाई ? इस समय दरवाजा क्यों खटखटा रहे हो ?"

"यहाँ मंडलाधिकारी देवप्रसाद हैं ?"

"हाँ हैं। उनसे तुम्हें क्या काम है ?" कहते हुए वह सिपाही खिड़की को खोल रहा था कि इतने में एक उच्च पद वाला सिपाही आगे बढ़ आया। उसने पहले सैनिक को एकदम खींच लिया और स्वयं खिड़की से सिर बाहर निकाल कर पूछा, "क्यों, क्या बात है ?"

"मैं उनसे मिलना चाहता हूँ।"

आनन्दसूरि जी, मण्डलाधिकारी से मिलने के लिए तुम्हारे हाथ-पाँव बाँधने पड़ेंगे समझे ?" सैनिक ने खिड़की बन्द कर दी और यति को अन्दर से कुण्डी बन्द होने की आवाज सुनायी दी।

यति दाँत पीसकर खड़ा रहा। राजपूत वेश में भी वह पहचान लिया गया था। उसका क्रोध और बढ़ गया। अपने सैनिकों को पास के खाली झोंपड़ों में पड़ाव डालने का आदेश देकर वह अकेला पेड़ के नीचे ऐसे घूमने लगा जैसे मन्त्र-तन्त्र से भैरवनाथ की आराधना कर रहा हो। थोड़ी देर बाद वह रुद्रमहालय के कोट के पीछे सरस्वती नदी के तट की ओर चला गया। आधी रात होने को आयी। गम्भीरमल्ल वगैरह से वह कुछ मालूम नहीं कर सका था। कहीं देवप्रसाद चला न गया हो ? परन्तु जायगा कहाँ ? देहस्थली ? तो फिर उस सैनिक ने क्यों कहा था कि देवप्रसाद यही हैं।

सरस्वती के किनारे पहुँचकर उसने ऊपर की ओर देखा। महालय की सबसे ऊंची छत ठीक कोट के बराबर थी और उसके नीचे पानी लहरा रहा था अचानक चौंक पड़ा। छत पर एक लम्बे से व्यक्ति की छाया दिखाई दी और उसी आकृति से यति ने उसे पहचान लिया। मंडलाधिकारी के साथ एक जरा छोटी छाया थी। यति हँस दिया। उसे गुरुदेव की भविष्यवाणी स्मरण हो आयी, 'देवप्रसाद, अब तेरे दिन पूरे हो चुके। अब तू भी आनन्द-सूरि के हाथ का मजा चखेगा।" यति ने आवेश में मुट्ठियाँ हिलायीं। कुछ देर वहाँ ठहर कर वह लौटा। थोड़ी दूर आने पर उसे घोड़ों की टापें सुनाई पड़ीं। वह चौंक गया, "इस समय कौन ? मित्र या शत्रु ?" यद्यपि उसके सैनिक दूर खड़े थे, फिर भी वह अकेला साहस करके वहाँ खड़ा रहा। तेजी से चलते हुए घोड़े निकट आ गये। सिर्फ दो-तीन घुड़सवारों की आहट सुनायी दी, अतएव उसमें अधिक साहस आ गया। ज्योंही घोड़े पास आये, उसने पूछा,

"कौन है ?"

अगला घुड़सवार बोला, "महाराज जयदेव की जय !"

"कौन ? चित्रविजय ? इस समय कैसे ?"

"महाराज, वल्लभसेन मण्डलाधिकारी इस ओर आ रहा है।"

घबराहट से यति ने पूछा, "अकेला, या कोई और साथ है ?"

"साथ में कोई पांच-सात घुड़सवार हैं। सुनते ही मैं आपसे कहने को निकल पड़ा।"

"अभी कितनी दूर होंगे ?"

"तीन-चार घड़ी में ही वे यहां आ पहुंचेंगे। यहां से जाना हो तो अभी रवाना हो जाइये।"

"अच्छी बात है। तुम यहां से कुछ दूरी पर हमारे सैनिकों के साथ ठहरो। मैं अभी आता हूं।" कहकर यति ने चित्रविजय को विदा कर दिया।

यती का पागलपन बढ़ गया। क्या बिल्कुल अन्तिम घड़ी में मंडलाधिकारी उसके चंगुल से निकल जायगा ? नहीं, नहीं। वह सोचने लगा कि किसी तरह वह वल्लभसेन के आने से पहले अपना कार्य सिद्ध कर ले। कोट के ऊपर बड़ी-बड़ी कीलें जड़ी हुई थीं, सो वहां से चढ़ना मुश्किल था। वह फिर उस जगह पर पहुंचा, जहां कोट से सट कर सरस्वती बह रही थी। बहुत गहरी दृष्टि डालने पर उसने देखा, कोट में एक बड़ी-सी मोरी बह रही थी। एक क्षण का भी विलम्ब किये बिना वह एक कटार के अतिरिक्त सब शस्त्र अलग फेंक कर नदी में कूद पड़ा। तैरते-तैरते वह मोरी की तरफ गया। मोरी से गन्दा पानी बह कर नदी में आ रहा था, लेकिन उस गन्दे पानी की परवाह किये बिना वह शरीर को सिकोड़ता, कष्ट सहता, मोरी में से अन्दर जा पहुंचा। पास ही एक कुआं था। उसके थले में थोड़ा-सा पानी था। उस पानी से उसने मुंह-हाथ धोया, गन्दगी साफ की और महालय में घूमने लगा। वहां मरघट की सी शान्ति थी। लेकिन थोड़ी ही देर में उसे ऐसा मालूम दिया जैसे ऊपर कोई है और अभी वह हंसा है। उसी हंसी ने यति के जोश को और भी बढ़ा दिया।

ऊपर जाकर लड़ने में यति को कोई समझदारी नहीं मालूम दी। बिना जाने कि यहां कितने सैनिक है, अपने सैनिकों को अन्दर भेजना उन्हें मृत्यु के मुंह में डालना था। इधर क्षण-क्षण में वल्लभसेन आ रहा था। तेजी से इधर-उधर घूमकर वह मंडलाधिकारी को नष्ट करने के उपाय सोचने लगा। इसी समय दूर से घोड़ों की टापें सुनायी पड़ीं। उसे आभास हुआ कि वल्लभसेन निकट

आ पहुंचा । अब क्या किया, जाय ? उसने आस-पास देखा । सामने रुद्रमहालय की गोशाला और इमारत से सटा हुआ ऊंचा घास का ढेर दीख पड़ा । एक राक्षसी विचार उसे सूझ गया । वह इधर-उधर दौड़ने लगा । एक दालान में एक ग्वाला सुलगता हुआ हुक्का छोड़कर सो गया था, उसकी चिलम की गन्ध यति तक पहुँची । दौड़कर उसने चिलम उठा ली और उसकी आग घास के ढेर पर डाल दी और फूंक मारने लगा ।

प्रसन्न होकर वह दूर हट कर तमाशा देखने लगा । फिर छिपते हुए वह महालय के द्वार तक पहुंचा और कुण्डी खोलकर बाहर निकल गया । उसकी प्रसन्नता की सीमा नहीं थी, उसके जीवन का उद्देश्य पूर्ण हो गया था । अहिंसा परमोधर्म है, मानते-मानते आज वह नीच कोटि की हिंसा करने तक पहुँच गया था । चलते-चलते वह फिर नदी के तट पर आ गया और परिणाम की प्रतीक्षा करने लगा । थोड़ी देर तक कुछ न दिखलाई पड़ने के कारण वह कुछ निराश-सा होने लगा, पर शीघ्र ही महालय की खिड़की तेजी से सुलग उठी और भी दो-एक खिड़कियों से धुआं उठने लगा । यति आनन्दमग्न होता गया ।

: ३० :

लोगों की चीख-पुकार और जलती हुई लकड़ियों की चटख सुनकर अपनी प्राणेश्वरी के समीप सोया हुआ मंडलाधिकारी जाग पड़ा और आस-पास देखने लगा । हंसा भी उठकर नेत्र मलने लगी । आग की वजह से गर्मी आ रही थी । हंसा का हाथ पकड़े देवप्रसाद एकदम छत पर जा पहुँचा । नीचे की ओर देखने पर चारों तरफ भयंकर लपटें दिखलाई पड़ीं जिसकी छाया सरस्वती के जल में दीख रही थी । मंडलाधिकारी सब समझ गया, बोला, "हंसा, अब प्राण गये । किसी षड्यन्त्रकारी ने महालय में आग लगा दी ।"

हंसा कुछ न समझ, घबड़ाकर देखती रह गयी । किन्तु देवप्रसाद साहस खोने वाला नहीं था, "प्रिये, घबराओ मत । वह शाल ओढ़ लो और मेरा हाथ पकड़ लो, हम अभी नीचे पहुंच जाते हैं ।" कह कर वह वेग से हंसा को नीचे

ले चला। नीचे का कमरा लाल हो रहा था।

"स्वामी, मुझसे दौड़ा नहीं जाता। आप जाइये, मुझे छोड़ दीजिए।"

"छोड़ कैसे दूं ? ठहरो।" कहकर देवप्रसाद ने हंसा को फूल की तरह उठा लिया। आगे बढ़कर उसने जीने का द्वार खोल दिया। तभी लपटें आगे बढ़ने लगीं, साँस लेना भी कठिन हो गया। साहस के साथ वह नीचे उतरने लगा। नीचे सब जल चुका था, अतः कोई मार्ग नहीं सूझ पड़ा।

हंसा चिन्ताकुल होकर बोली, "अब क्या करोगे नाथ ?"

"घबराओ नहीं मंडुकेश्वर की कृपा चाहिए।" हंसा को ढाढ़स बँधाता हुआ वह वापस लौटा। क्षण-क्षण में वह आकुल होकर हंसा को हृदय से चिपटा लेता। अभी केवल ऊपर का हिस्सा अग्नि से बचा था। वह दौड़ता हुआ उसी कमरे में गया, जहाँ पहले सोया था।

"प्राणेश्वर ! मैंने तुम्हारे प्राण ले लिए। अब क्या होगा !"

"पगली, कल का दिन तो ऐसा था कि उस अकेले के लिए अगर मेरे दस सिर भी हों, तो मैं देने को तैयार हूँ। इन कायरों ने औरतों की तरह आग लगाकर मुझे मार डालने का यत्न किया है, लेकिन कोई चिन्ता नहीं हंसा मेरा और तुम्हारा खून फिर भी इस भूमि पर मौजूद रहेगा। कुछ लोग जीवित अवस्था में विजय प्राप्त करते हैं, हम मर कर विजय और यश प्राप्त करेंगे। आओ, तुम्हें ऊपर ले चलूं।"

मंडलाधिकारी छत पर पहुँच गया। चारों तरफ से आग की लपटें बढ़ रही थीं। उसने देखा बचने की अब कोई आशा नहीं है। उसने प्यार से हंसा को चूमा। बोला, "देवप्रसाद सोलंकी के ही लायक यह चिता है। पूज्य पिता जी का भी इसी जगह पर अग्नि-दाह हुआ था। हिम्मत नहीं हारनी चाहिए। आओ हंसा, नीचे सरस्वती माता बह रही हैं, तुम कहो तो नीचे कूद जायें।"

"स्वामी मुझे तो कुछ नहीं सूझ रहा। मरना तो है ही। जो आपकी कीर्ति के योग्य हो वही कीजिए।"

"तो आओ, मेरी पीठ से लिपट जाओ।"

अत्यन्त स्नेह के साथ हंसा देवप्रसाद से लिपट गयी। धोती के अतिरिक्त

सब कपड़े उतार कर देवप्रसाद उछल कर छत की पाल पर खड़ा हो गया। उसने चारों ओर की आग पर दृष्टि डाली, शिखर पर फहराती हुई ध्वजा को देखा, पूर्व की ओर दृष्टिपात किया, कोट और नदी की ओर देखा और वह बचपन का वीर, साहसी, मृत्यु से खेलने वाला, 'जय सोमनाथ' की आवाज के साथ हंसा को जकड़ कर ऊँची छत पर से नदी में कूद पड़ा।

उधर यति महालय की प्रतीक्षा में प्रसन्न हो रहा था। महालय की छत से लपटों के प्रकाश में उसने दो व्यक्तियों को देखा। वह अपने शत्रुओं को जीवित जलता देख हर्षित हो उठा, किन्तु दूसरे ही क्षण उसकी प्रसन्ना विलीन हो गयी, वह विकल-सा-चिल्ला पड़ा और उसकी साँस रुक गयी। दो व्यक्तियों को उसने पानी में कूदते और फिर एक व्यक्ति के हाथ पानी में आगे बढ़ते देखे। मन्दिर के आस-पास खड़े अपने सैनिकों में से एक को उसने आज्ञा दी। "चित्रविजय सैनिकों को घोड़े लेकर दूसरे किनारे पर भेजो और उस तैरने वाले को बाहर निकलते ही समाप्त कर दो।"

"जो आज्ञा।"

यति स्वयं भी बिना देरी किये नदी में कूद पड़ा और अगले व्यक्ति के पीछे तैरने लगा।

: ३१ :

वल्लभसेन सुबह-सुबह मेरल के पास देवप्रसाद की राह देख रहा था। वल्लभसेन एक छोटे-से मंडल का मंडलाधिकारी था और बचपन से ही देवप्रसाद ने बेटे की तरह उनका लालन-पालन किया था और वह भी देवप्रसाद को पिता के समान मानता था। वह गम्भीर, कम बोलने वाला, सीधा और साहसी वीर था। देवप्रसाद की आज्ञा और संकेत पर वह जान तक न्योछावर करने को तैयार रहता था। इस समय भी वह देवप्रसाद की आज्ञानुसार मेरल के निकट सेना लेकर पड़ा था और उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। ज्यों-ज्यों देर होती गयी उसका मुँह चढ़ता गया और वह गम्भीर होता गया। दोपहर को सामन्त विश्वपाल अपने घुड़सवारों के साथ मधुपुर आया और वल्लभसेन

से मिला।

वल्लभसेन ने कहा, "आप किसलिए आये हैं ? मुझे तो बिल्कुल अवकाश नहीं है।"

"देखते हो, गुजरात में इतनी सेनाएँ ! अभी तो हमें मालवराज को पराजित करना है। अगर हम इस तरह बिखरे रहे तो कैसे काम चलेगा ?"

वल्लभसेन चित्रलिखित-सा बैठा रहा। विश्वपाल समझाने लगा कि वह रानी को मना सकता है। इस समय रानी को खुश रखने में लाभ है, अतः अच्छा है कि उनसे जा मिलें।

वल्लभसेन ने छोटा-सा उत्तर दिया, "यह मण्डलाधिकारी की आज्ञा नहीं है।"

विश्वपाल ने देवप्रसाद की स्थिति बतायी। यह बताया कि देवप्रसाद बन्दी हो गया होगा और अब देहस्थली का पतन हो जायगा। फिर उसने वल्लभ को लालच दिया, "रानी देहस्थली का मण्डल भी तुम्हें दिला देगी।"

किन्तु वल्लभ के चेहरे पर किंचित भी परिवर्तन नहीं हुआ। विश्वपाल की बात को निरर्थक-सा जान वह उठ खड़ा हुआ, बोला, 'विश्वपालजी' मण्डलाधिकारी महाराज से आज्ञा ले आइये, मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ।"

"बिना उनके—"

"सब बेकार है।" कहता हुआ वल्लभसेन विश्वपाल को छोड़कर चला गया। हार-थककर विश्वपाल वापस लौट गया।

विश्वपाल की चिन्ता बढ़ गई। मण्डलाधिकारी का कोई समाचार नहीं आया था, इससे सिपाहियों में असन्तोष बढ़ने लगा। सन्ध्या के समय मधुपुर से समाचार आया कि वहाँ की सेना पाटन को रवाना हो रही है और सम्भवतः रानी भी उनके साथ हैं। वल्लभ को डर हुआ कि बिना कारण मण्डलाधिकारी सेना से अलग रहने वाले नहीं हैं। रात्रि में उसके भेजे हुए गुप्तचर वापस आये और उन्होंने बताया कि मण्डलाधिकारी का रास्ते में कहीं भी पता नहीं है। उसने स्वयं स्वामी की खोज में जाने का निश्चय किया। तुरन्त उसने पाँच सौ चुने हुए सवार तैयार किये और मुण्डकेश्वर की ओर कूच करने का आदेश दिया। वह स्वयं और पच्चीस चुने हुए योद्धा साँड़नियों पर सवार

होकर आगे बढ़े। शेष सेना एक योग्य और विश्वासपात्र सामन्त के आधीन कर दी गई। कुछ सवार बाघेश्वरी माता के मन्दिर की ओर भी भेज दिये गये कि कहीं मंडलाधिकारी वहीं न हों।

वेग से साँड़नियों को दौड़ाकर मण्डुकेश्वर के समीप आ गये। चाँदनी रात के उजाले में वल्लभसेन ने क्षितिज के एक भाग को बिल्कुल लाल देखा। उसने दाँत पीस लिए, "मण्डुकेश्वर की ओर यह आग कैसी ?' न जाने क्यों, किसी आशंका से उसका हृदय धड़क उठा। साँड़नियों को और भी तेज दौड़ाने का आदेश दे वह आग की ओर टकटकी लगाये देखता रहा। वृक्षों के झुण्डों से बाहर निकलने के बाद आग स्पष्ट दिखायी दी। मालूम हो गया, मण्डु-केश्वर का मन्दिर जल रहा है। इसी समय सामने से तीन-चार घुड़सवार आते दिखाई दिये।। वल्लभसेन ने पुकारा, "कौन है ठहरो।"

घुड़सवारों ने वल्लभसेन का स्वर पहचान लिया, "वल्लभसेन !"

"कौन ? गम्भीरमल्ल ? क्या बात है ? महाराज कहाँ हैं ?"

"महाराज तो महालय में जल मरे। अब हम लोगों को भाग निकलना चाहिए।"

साँड़नी से उतर वल्लभसेन गम्भीर के पास पहुँचा, "महाराज मर गये, फिर तुम कैसे जीवित हो ?"

"आपको मालूम नहीं। सुबह हम मुंजाल से मिलने जा रहे थे कि इतने में हंसादेवी आ पहुँची।"

"क्या ?..."

"हाँ, वे जीवित थीं और अवसर देखकर महारानी जी ने उन्हें भेजा था। मंडलाधिकारी जी ने उन्हें देखकर जाना स्थगित कर दिया और हमें मुंजाल को बुलाने भेजा। मार्ग में हमें यति ने पकड़कर यहाँ भेज दिया। इसी समय महालय के जलने से यति के सैनिकों में भगदड़ मच गई और मौका पाकर हम भी भाग निकले।"

कुछ क्षण वल्लभसेन मौन देखता रहा। फिर बोला, "आओ गम्भीरमल्ल, पीछे लौटें। जरा देखें तो सही। इस साँड़नी पर आ जाओ।"

सब तेजी से महालय की ओर चले। मन्दिर कितना जल गया है, यह

देखने के लिए उन्होंने नदी की ओर का मार्ग पकड़ा।

महालय धू-धू करके जल रहा था और नदी के तट पर खड़े अनेक लोग उस ओर देख रहे थे। वल्लभसेन अपने साथियों के साथ वहीं उतर गया। उन्हें देख वहाँ खड़े हुए कुछ लोग भागने लगे वल्लभ ने एक को मजबूती से पकड़ लिया और पूछा, "किसके आदमी हो ?"

उस व्यक्ति ने हाथ जोड़े, "महाराज वल्लभसेन, यह तो मैं हूं।"

वल्लभसेन ध्यानपूर्वक देखने लगा, "कौन ? रामसिंह ?"

"जी हाँ, महाराज।"

"यह सब क्या है ?"

"महाराज, मैं मंडलाधिकारी महाराज के साथ महालय में ही था और ज्योंही आग लगी, मैं और साथियों के साथ उन्हें जगाने गया, पर वे जीने का दरवाजा बन्द करके सोये थे, इसलिए न सुन सके। आखिर हम लोग बाहर निकल आये। किन्तु महाराज, लोग कह रहे हैं कि मंडलाधिकारी महाराज ऊपर से कूद पड़े हैं।"

"कौन लोग ?"

"चन्द्रावती के सिपाही। उनके साथ यति था जो महाराज को बन्दी बनाने आया था। महाराज को कूदता देख यति भी पानी में छलांग लगाकर उनका पीछा करने लगा।"

"कौन ? आनन्दसूरि ?"

"हाँ, वही नया यति जो पाटन में आया था। अपने घुड़सवारों को भी उसने किनारे-किनारे आने को कह दिया है।"

"महाराज को बाहर निकलते ही समाप्त करने के लिए, क्यों ? चलो, साँड़नियाँ तैयार हैं। हम भी किनारे-किनारे उन घुड़सवारों का पीछा करेंगे।"

वल्लभसेन उछलकर साँड़नी पर बैठ गया, "कितनी देर हुई होगी, रामसिंह ?"

"यही कोई दो-तीन घड़ी, महाराज।"

"अच्छा चलो।" वल्लभ ने शीघ्रता से साँड़िनियों को नदी के किनारे-किनारे दौड़ाने का आदेश दिया।

: ३२ :

देवप्रसाद को नदी में कूदने के बाद बचने की काफी आशा हो गई। महालय नदी के किनारे एक तरफ था, अतएव तैर कर वहाँ पहुंच जाना उसके लिए बाँये हाथ का खेल था। और उधर के सब गाँवों में लोग देवप्रसाद के लिए प्राण देने को तैयार थे। वहाँ पहुँच कर थोड़ा आराम कर मेरल जाना उसे आसान लगा। लेकिन हंसा में उसे कुछ परिवर्तन मालूम दिया। या तो इतनी ऊँचाई से गिरने के कारण या सर्दी लगने से हँसा अचेत हो गई थी और उसके हाथ देवप्रसाद के गले से छूट गये थे। मण्डलेश्वर ने इस समय अपूर्व साहस और शौर्य का परिचय दिया। बाँये हाथ पर हँसा को रख वह दाँये हाथ से तैरने लगा। सौभाग्यवश, जल का प्रवाह भी उसी ओर को था; अतः आगे बढ़ना अधिक दूभर न लगा।

केवल आधी घड़ी वह पानी में रहा होगा कि उसे पीछे से किसी के तैरने की आहट सुनायी दी। कुछ दूरी पर कोई बड़े जोश से हाथ मारता उसकी ओर तैरता आ रहा था। देवप्रसाद ने पीछे देखा और उसे विश्वास हो गया कि कोई उसका पीछा कर रहा है। उसने समय और परिस्थिति को सोच, पीछा करने वाले का सामना करने का विचार छोड़ दिया और किनारे की तरफ बढ़ा और समीप पहुँचा था कि चन्द्रमा के प्रकाश में उसने कुछ घुड़-सवार देखे जो उसी की ओर देख रहे थे। उसने अपनी चाल जरा धीमी कर दी जिससे पहचाना न जा सके। इसी समय ऊपर एक तीर आकर उसके निकट गिरा। क्रोधित होकर मंडलाधिकारी पीछे लौटा और किनारे से दूर निकल गया। दो-तीन तीर और आकर पीछे गिरे, पर सारे तीर चूककर पानी में गिर रहे थे। नदी का दूसरा किनारा बहुत दूर था और उधर की तरफ दूर तक कीचड़ था, अतः उस ओर जाना बहुत कठिन था। देवप्रसाद सीधे पानी में तैरता रहा।

उसका बाँया हाथ बिल्कुल थक गया था। अब उसने हँसा को दाहिने हाथ पर रख लिया। हँसा का सूख, अचेत और प्यारा मुंह देख देवप्रसाद का हृदय

उमड़ आया। हंसा का चुम्बन लेखकर उसने बाँये हाथ से तैरना प्रारम्भ कर दिया। पीछे आने वालों से बचने के लिए उसने तैरना प्रारम्भ कर दिया। कुछ देर बाद पीछा करने वाले की पैर की छपछपाहट हल्की पड़ गयी, अतः देवप्रसाद ने भी अपनी गति धीमी कर दी। पीछे की ओर महालय नहीं दिखाई पड़ रहा था पर उसकी लपटें आकाश तक जाती दीख रही थीं। मण्डलाधिकारी ने किनारे-किनारे दस-बारह घुड़सवारों को देखा। "कोई चिन्ता नहीं।" वह बड़बड़ाया। बचपन की अत्यधिक तैरने की आदत आज उसकी सहायता कर रही थी।

हंसा की ओर देख, मन में एक विचार आते ही उसका हृदय काँप उठा। हंसा को अपने से सटाकर उसने धीमे से पुकारा; हाथ और नाक पर हाथ रख नाड़ी की गति देखने का प्रयत्न किया, किन्तु कुछ फल न निकला। उसे चक्कर आने लगा। बड़ी कठिनाई से उसने अपने को सम्भाला और जोरों से तैरने लगा, क्योंकि पीछा करने वाले व्यक्ति की तैरने की छपछपाहट फिर सुनायी दी। लेकिन उसका साहस कम हो गया। उसे यह शंका बार-बार तंग कर रही थी कि हंसा जीवित है या मर गयी?

अरुणोदय की वेला निकट आने लगी। देवप्रसाद ने देखा, वह पीछे आने वाला व्यक्ति बिल्कुल पास आ गया है। मंडलाधिकारी ने उसकी तरफ घूम कर कहा, "किसकी मौत उसे यहाँ ले आयी है?"

एक हाथ से मुंह का पानी पोंछ यति ने हर्षनाद किया। अपने इकहरे शरीर और जोश के कारण उसे अधिक मेहनत न पड़ी थी। दो हाथ मारकर वह समीप आ गया, बोला, "तुम्हारी मौत मण्डलाधिकारी।"

"आनन्दसूरि? चाण्डाल! यहाँ तक तू मेरे पीछे लगा हुआ है। किन्तु, तेरी भी मृत्यु दूर नहीं।"

यति को विचार आया, मण्डलाधिकारी के साथ इस समय पानी में द्वन्द्व करना मूर्खता है। मण्डलाधिकारी हारा-थका होने पर भी उसे अंगुलियों में दबा सकता था। उसने तदबीर से काम लिया और घूमकर देवप्रसाद को किनारे तक ले जाने लगा।

"उन सवारों को देख रहे हो?"

"बहुत देखा है तुम जैसे कायर हत्यारों को।"

"मैंने नहीं कहा था ? गुरुदेव की आज्ञा को भूल गए ?"

देवप्रसाद का वैर का उन्माद कम पड़ गया और उस यति का वचन याद हो आया, "हाँ, आनन्दसूरि, तूने उस दिन मुझे वचन दिया था, याद है ?"

"याद है लेकित, तुम्हें जीवित नहीं छोड़ूंगा इसके अलावा और जो चाहे माँग लो।"

"में अपने प्राणों की भीख नहीं मागूंगा। मंडलाधिकारी मरते-मरते भी सोलंकी रहेगा। तुझे वैद्यक आती है। देख तो हंसा जीवित है ?"

"विश्वासघात का बहुत अच्छा तरीका सोचा है तुमने।"

"हत्यारे, नीच, मंडलाधिकारी ने कभी किसी के साथ विश्वासघात नहीं किया है। देख, यह है हंसा।" कहकर मंडलाधिकारी ने हंसा का शरीर आगे कर दिया।

यति ने हंसा की नाक पर हाथ रखा और अत्यन्त क्षुद्रता से कहा, "इसके अब कुछ नहीं रहा है। यह तो कभी की मर गयी है।"

मंडलाधिकारी सिंह की तरह दहाड़ा, "मर गयी।" और हंसा की ओर देखा। यति अब तक उसे किनारे ले आया था। किनारे खड़े सवारों को उसने आवाज दी। एकदम तीन-चार तीर छूटे पर एक को छोड़कर सब पानी में जा गिरे। एक तीर मंडलाधिकारी की गर्दन में गहरा घुस गया। उछलकर वह यति की ओर झपटा, "पापी ! नीच धोखेबाज !" और यति के भागने से पहले ही देवप्रसाद ने उसे पकड़ लिया और जोरों से उसका गला दबाने लगा। यति छूटने के लिए फड़फड़ाया और किनारे खड़े सिपाहियों को पानी में आने के लिए सूचित करने लगा।

तभी, किनारे पर कोलाहल मच गया। सीढ़ियों पर वल्लभ अपने आदमियों के साथ आ पहुँचा और चिल्लाया, 'जय सोमनाथ' एक हाथ में हंसा को पकड़े हुए और दूसरे से यति के साथ उलझते हुए मंडलाधिकारी ने भी उस नाद का उत्तर दिया। वल्लभ ने मंडलाधिकारी को पहचान लिया और उसकी दृष्टि उनकी गर्दन पर लगे तीर की ओर गयी। फौरन वह सांढनी से उतर कर पानी में कूद पड़ा, अपने सब अस्त्र-शस्त्र फेंक कर।

इतनी देर में देवप्रसाद ने यति की बुरी हालत कर दी थी। लेकिन अब वह थकान सिरदर्द से बुरी तरह पीड़ित हो गया था और उसके हाथ ऐंठ गये थे। गरदन से बहुत खून निकल चुका था। उसे लग रहा था जैसे मृत्यु बिल्कुल निकट आ गयी। तभी उसे किसी का स्वर सुनायी दिया। वल्लभसेन कह रहा था, "महाराज, मैं आया।"

देवप्रसाद स्वर को पहचान गया, "वल्लभ, अब जरूरत नहीं है।" फिर उसे अचानक कोई ख्याल आया, बोला, "वल्लभ, तुम त्रिभुवन के पास जाओ।"

"लेकिन महाराज ?"

"हंसा के बिना नहीं रह जाता। वह गयी, मैं भी जाता हूँ।"

इतना कहकर मंडलाधिकारी शान से, गर्व से चिल्लाया, 'जय सोमनाथ' और दूसरे ही क्षण एक हाथ में हंसा की लाश और दूसरे में तड़फड़ाते यति को लेकर पानी में डुबकी लगा दी। वल्लभसेन 'महाराज, महाराज' करता ही रह गया।

यों गुजरात का सर्वश्रेष्ठ योद्ध शत्रुओं के विश्वासघात और प्रेम के पागलपन को भोग कर सरस्वती माँ की गोद में जा बैठा। वल्लभसेन ने तुरन्त कई डुबकियाँ लगायीं परन्तु, अन्त में निराश होकर वह लौट गया। उसकी आँखें लाल हो रहीं थीं। बिना कुछ बोले, उसने अपने एक सैनिक से कुछ तीर लिए और एक-एक करके वहाँ खड़े सारे यतियों को यमपुरी पहुंचा दिया। फिर अपने सिपाहियों से कहा, "जाओ दौड़ो, नजदीक के गांव से मल्लाहों को बुलाकर यहाँ जाल डलवाओ। ये तीनों लाशें मिलनी चाहिएँ।

"महाराज, देखिए, शायद कोई पानी में डुबकी लगा रहा है।"

वल्लभ ने घूमकर यह देखा और तुरन्त ही वह और दो-तीन साथी पानी में कूद कर डुबकियाँ खाते आनन्दसूरि को पकड़ लाए। मंडलाधिकारी ने जब उसका गला घोंटा था उसने साँस रोक कर प्राणायाम कर लिया था और मंडलाधिकारी के पानी में डुबकी लगाते समय हाथ ढीले पड़ते ही वह छूट गया था। हाथ मार कर वह पानी की सतह पर आ गया था।

उसे बाहर निकाला गया तो थका-सा वह बोला, "जिन प्रभु का शत्रु समाप्त हो गया। गुरुदेव का वचन भी पूरा हुआ।"

एक ही झटके में वल्लभ ने यति को पटक दिया और उत्तर में यति मूर्खों की भाँति हँस पड़ा। क्रोधित वल्लभ ने अपनी सेना को यति को साथ ले चलने का आदेश दिया और सब मेरल को लौट पड़े।

कुछ लोग मल्लाहों से जाल डलवा कर, नदी में लाशों का पता लगाने के लिए रह गये।

: ३३ :

वल्लभ जब रुद्रमहालय के निकट आया तो उसने घुड़सवारों में बड़ी निराशा और भगदड़ मची देखी। मण्डलाधिकारी का नाम गुजरात के गाँव में अनोखा ही प्रभाव रखता था और उसके प्रभाव से इस समय दो हजार आदमियों की सेना खड़ी हुई थी, परन्तु उस वीर के जाने से सेना भी अशक्त और उत्साहहीन हो गयी। आज उनका उत्साह और जोश जगाने वाला महारथी दूर चला गया था, जहाँ से कोई वापस नहीं आता। निराश वल्लभ ने साहस से काम लिया और सेना को मेरल की ओर रवाना होने का आदेश दिया। रास्ते में सैनिकों ने मंडुकेश्वर का वह पवित्र स्थान देखा जहाँ क्षेमराज ने संन्यास-जीवन बिताया था और जहाँ उसके प्रभावशाली बेटे की ऐसी अद्भुत मृत्यु हुई थी। सब की आँखों में आँसू भर आये। भूख, प्यास, गर्मी, सर्दी से तपने वाले योद्धा अपने नायक की मृत्यु से रो उठे। पत्थर दिल वल्लभ-सेन चुपचाप साँडनी पर बैठा रहा। उसके हाथ थर-थर काँप रहे थे। उन काँपते हुए हाथों से उसने गम्भीरमल्ल के हाथ जोर से पकड़ लिए। गम्भीर-मल्ल उसकी इतनी अधिक भावुकता देखकर चकित रह गया।

"गम्भीरमल्ल !" वल्लभ ने ऐसे स्वर में कहा, जैसे उसका हृदय फटा जा रहा हो, "मेरे पिता चले गये।"

"महाराज, आपके ही नहीं, सारे गुजरात के। लेकिन, अब हमें पुत्र की देहस्थली की रक्षा करनी है। अब सभी दुश्मनों की चढ़ बनेगी और सब मण्डल त्रस्त कर दिये जायेंगे। कहिये, क्या किया जाय ? वहाँ पहुंचते ही सब यही कहेंगे कि या तो सेना भंग कर दो या मीनलदेवी की शरण में चलो।"

"सोलंकी त्रिभुवनपाल अभी जीवित है ?"

"जी हाँ, जीवित है। लेकिन जानें उस पर भी क्या बीती होगी। परसों मण्डुकेश्वर में महाराज ने मुझे बताया था कि त्रिभुवन बन्दी है। अब दो ही बातें करने की हैं। एक तो हमें यहाँ देहस्थली को तैयार करना चाहिये, क्योंकि रानी अधिकार पाते ही पहले मण्डलों को हस्तगत करेगी, और दूसरी बात यह है कि पाटन की ओर जाकर वहाँ का रंग भी देखना जरूरी है, वहाँ हमारे बहुत से मित्र हैं, जिनकी सहायता से हम त्रिभुवनपाल को वहाँ से ला सकें।"

"गम्भीरमल्ल ! पाटन के सिंहासन पर त्रिभुवनपाल बैठे तो कैसा हो ?"

"वल्लभसेन जी, मुझे यह तब से मालूम है जब आप महाराज को यह सलाह दिया करते थे और यह बहुत उत्तम और साथ-साथ आसान भी है। लेकिन जब पिता ने ही नहीं माना तो पुत्र मानेगा ? सोलंकी पराये सिंहासन को हस्तगत न करने में अटल हैं।"

"मैं जानता हूँ। अच्छा, तुम इन सैनिकों को लेकर देहस्थली जाओ। मैं मेरल को सँभाल कर पाटन जाता हूँ।"

"जैसी आपकी इच्छा।'

कुछ दूर चलने पर मैदान आ गया। वल्लभ ने साँड़नियों को रुकवा दिया। चारों ओर सिपाही, इकट्ठे हो गये। वल्लभ उच्च स्वर में कहने लगा, "वीरों अभी-अभी दुश्मन ने हमारे पिता को छल से मार डाला है। अब पिता की देहस्थली त्रस्त की जायेगी। उसका पुत्र पाटन में बन्दी किया गया है। हमें आज कुछ न कर महाराज की हत्या का बदला लेना है; उनकी देहस्थली की रक्षा करनी है; उनके पुत्र को कैद से छुड़ाना है। आप सब तैयार हैं ?"

सभी के हृदयों में सहानुभूति थी, निराशा होते हुए भी उन्होंने कहा, "हम सब तैयार हैं।"

वल्लभसेन ने गम्भीरमल्ल से कहा, "आप इन वीरों को लेकर देहस्थली चलिये। मैं त्रिभुवन को छुड़ा कर लाता हूँ।"

गम्भीरमल्ल दूसरी साँड़नी पर जा बैठा। एक सैनिक ने परिस्थिति जाव

कर खुशामद के तौर पर जोरों से कहा, "वल्लभसेन महाराज की जय।

और लोग भी इस जयकार में शामिल होने जा रहे थे कि वल्लभसेन ने चीखकर कहा, "चुप रहो। क्या महाराज के वंश में कोई नहीं बचा? बोलो त्रिभुवनपाल महाराज की जय!"

प्रत्येक सैनिक बोला, "त्रिभुवनपाल महाराज की जय!"

सब गम्भीरमल के साथ देस्थली को चल दिये। कुछ सैनिकों और हाथ पैर बंधे यति को लेकर वल्लभसेन मेरल को रवाना हो गया।

दोपहर के समय वह मेरल की सीमा पर पहुँचा। उसकी धारणा के विपरीत उसे वहाँ उत्साह और जोश दिखलाई पड़ा। सारे सैनिक पाटन की ओर कूंच करने की तैयारी कर रहे थे। वल्लभसेन की अनुपस्थिति में मधुपुर से, विखराट से और पाटन से त्रिभुवन के भेजे हुए आदमी आये थे और मुंजाल के बन्दी होने तथा पाटन के विद्रोह की खबर लाये थे। त्रिभुवन ने वल्लभसेन के पास यह सन्देश भेजा था कि वह शीघ्र ही पिताजी को लेकर पाटन आये।

वल्लभ को देखते ही सब आतुरता से उसके चारों ओर जमा हो गये। और उसका शोकाकुल मुख देख वह पूछने लगे। उसने यति की ओर देखकर कहा, "इस चांडाल ने महाराज को छल से मार डाला।"

यति आत्म-सन्तोष से हँस पड़ा। आस-पास खड़े सैनिकों की आँखें यह देख कर क्रोध से अंगारे हो उठीं। परन्तु, तुरन्त ही वल्लभसेन ने यति को वहाँ से ले जाने का आदेश दिया।

एक सामन्त ने पूछा, "हमें अब क्या करना चाहिए?"

त्रिभुवन महाराज की आज्ञा को सिर-माथे लगाना चाहिए। गम्भीरमल जी देहस्थली की रक्षा के लिए गये हैं और हम लोग पाटन चलकर महाराज की मृत्यु का बदला लेंगे।"

सब तैयार होकर विखराट की ओर रवाना हुए।

: ४३ :

जिस समय मेरल में मंडलाधिकारी की मृत्यु के शोक में सब डूबे हुए थे उसी समय पाटन में दुःखी हृदया प्रसन्न कुमारी पीपल-पूजा कर रही थी। एक ही दिन में उसकी आँखों का तप-तेज, प्रसन्न मुख, और अल्हड़पन सब गायब हो गये थे। कल सुबह की बात के पश्चात् त्रिभुवन भी बदल गया। भौंहों पर बल डाले हुए, रौब से वह इधर-उधर घूमता और सबको आज्ञा देता हुआ पाटन पर अपनी सत्ता जमा रहा था। बहुत कम बोलता। वैद्यजी ने उसे बहुत रोका, पर अपने घावों की परवाह किये बिना वह काम में लगा रहा। प्रसन्न सारे समय उसके पीछे-पीछे घूमती रही; उसके लिए आवश्यक चीजों का संचय करती रही, पर त्रिभुवन ने एक शब्द भी उससे प्यार या हँसी का नहीं कहा। वह त्रिभुवन के क्रोध को समझ कर चुप रही, किन्तु त्रिभुवन की शुष्कता से उसका हंसता मुख मुरझा गया। पूजा करते हुए उसके नेत्र भर आए। कब सुख भरे दिन आयेंगे? इसके लिए क्या करना होगा? त्रिभुवन योंही रहा तो उसका स्वास्थ्य कैसा हो जायेगा? इन सब चिन्ताओं ने प्रसन्न को विकल कर दिया। त्रिभुवन की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए वह सब कुछ करने को तैयार है। पर वह त्रिभुवन का यों अलग-अलग रहना नहीं सह सकती। तभी उसे वैद्यजी दिखायी दिए। उसने पुकारा, "वैद्य जी! कहाँ जा रहे हैं? सोलंकी कहाँ हैं।"

"उसके सर पर भूत चढ़ा हुआ है, बेटी। मैं तो हार गया। न जाने कितना समझाया तब कहीं जाकर खाने के लिए राजी हुआ है। अच्छा तुम कुछ खाने-पीने की तैयारी कराओ।"

"अच्छा।" हर्षित होकर प्रसन्न तैयारी करने चली गयी। कुछ देर बाद त्रिभुवन उसी चढ़े हुए मुँह से आया और बिना कुछ बोले खाने की चौकी पर बैठ गया। थोड़ा-सा भोजन करके वह उठ गया। वैद्यजी उसे पट्टी बाँधने को ले गये प्रसन्न भी पीछे-पीछे चल दी।

थोड़ी देर बाद वैद्यजी जान-बूझकर किसी दवा लेने के बहाने वहाँ से चले। सिर को हाथ पर टेककर त्रिभुवन बैठा रहा। प्रसन्न ने पास आकर उसके कन्धे पर हाथ रखा तो उसने सिर उठाया, "क्या बात है ?"

प्रसन्न ने काँपते स्वर को थोड़ा संयत करके कहा, "इस तरह कब तक चलेगा ?"

"क्या ?"

"इस तरह कष्ट उठाओगे तो व्रत का पालन न हो सकेगा। दो-तीन दिन में ही चारपाई से लग जाओगे।" प्रसन्न के नेत्र डबडबा गये थे।

"मेरा व्रत पूरा हो जाये, फिर मुझे किसी बात की चिन्ता नहीं है।"

दुःखी दिल से हँसते हुए प्रसन्न बोली, "यह मैं जानती हूँ, किन्तु चारपाई पर पड़े हुए क्या कर सकोगे ? अब थोड़ा आराम कर लो। कल सब तो ठीक हो गया। अब पाटन में प्रवेश करने वाला कौन है ?"

"परन्तु आज मेरी शान्तु मेहता से जो बात हुई, उससे तो कुछ दाल में काला मालूम पड़ता है। मैंने उदा से पता लगाने को कहा है, पर मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है। बारह द्वारों में से कब, कौन आ जाये, इसका कुछ पता नहीं।"

इन अरसिक बातों के करने से भी प्रसन्न हर्षित हो उठी। बोली, "लेकिन, सभी द्वार तो बन्द किये गये हैं।"

"बन्द करने से क्या होता है ? न द्वारों का ठिकाना न खिड़कियों का। काकाजी का ख्याल था कि इस धरती पर खाना-पीना और खुशी मनाना ही सब कुछ है, और इसके अलावा कुछ नहीं है; लेकिन किसी के पास एक भी चाभी हो या किसी ने दरबान को मिला लिया हो तो, सब स्वाहा हो जायेगा।"

"लेकिन, कोई घुस भी आये हो तो उसे बन्दी करने में देर ही क्या लगेगी। इसमें घबराने या चिन्ता करने की क्या बात है ?"

त्रिभुवन की दृष्टि और भी तीक्ष्ण हो गयी, मुंजाल मामा या कुमार जयदेव में से कोई भी नगर में आ जाये तो यहाँ सभी बदल जायेंगे। फिर मेरी प्रतिज्ञा कैसे पूरी होगी ? मेरा तो एक ही निश्चय है—त्रिभुवन के गिरने

पर ही मीनल काकी यहाँ आयेंगी।"

प्रसन्न सोचने लगी, क्या त्रिभुवन इस समय उससे कुछ भेद जानना चाहता है? क्या उसे कुछ सन्देह हो गया है? उसने कहा, "भला, ऐसे कहीं जयदेव आ सकता है?"

"कोई ले आये तो?"

"लेकिन, यहाँ ऐसा कौन है?"

"सेठ शान्तिचन्द्र, तथा अनेकों और हैं। आजकल राहगीर भी पाटन बेचने को तैयार हो सकता है।"

"नहीं नहीं। पाटनवासी इतने बेशर्म नहीं हो सकते।" त्रिभुवन के विचारों को जानने के इरादे से उसने बात को बढ़ाया।

"किन्तु, यहाँ सभी पाटनवासी नहीं हैं। मीनल काकी ने अनेक किराये के गधे लाकर भी यहाँ भर रखे हैं।" स्पष्ट तिरस्कार से त्रिभुवन ने कहा।

प्रसन्न ने निकट आकर त्रिभुवन के कन्धे पर हाथ रख दिया और स्नेहमय, दयार्द्र स्वर में कहा, "मुझ पर अभी तक अविश्वास है, त्रिभुवन! क्यों?"

त्रिभुवन थोड़ा नरम हुआ, "सच कहूँ। हाँ, मुझे शक है।"

"इतने साल बीत जाने पर भी? भला क्यों?"

"पहली बात तो यह कि तुम पाटन की नहीं हो।"

प्रसन्न चिढ़कर कहने लगी, "हाँ-हाँ मैं चन्द्रपुर की हूँ, जैन हूँ, मीनलदेवी की भतीजी हूँ। धन्य है त्रिभुवनपाल तुम्हें जो तुम इतना भी भूल गये कि मैंने सारा जीवन पाटन में गुजारा है; यह भी भूल गये कि सामल बारहट ने हमें साथ-साथ अपने शब्दों से वीरता की शिक्षा दी है; यह भी भूल गये कि एक दिन पहले ही मैंने सोलंकी वीर की पत्नि बनना स्वीकार किया है। मुझे नहीं मालूम था कि इतने अरसे बाद त्रिभुवनपाल मुझे परदेशी होने की याद दिलायेगा।" कहते हुए प्रसन्न के नेत्र क्रोध से चमक उठे और सारा शरीर क्रोध के तीक्ष्ण प्रकाश से भर उठा। त्रिभुवन अपनी चिन्ता, दुर्बलता और क्रोध को भूल प्रसन्न की सुन्दरता को निहारने लगा।

"तुम्हें मैं स्वामी मान बैठी हूँ, फिर भी तुम मुझे इन शंकाओं से दु.खी कर

रहे हो।"

त्रिभुवन कुछ नरम पड़ गया, "लेकिन, मैं अपनी नादानी से अपना व्रत कैसे भंग होने दूं। तेरा ढंग भी तो बदल गया है। न तू पहले की-सी भोली और निष्कपट रही है, न स्नेहमयी ?"

मैं अपना स्नेह किस पर उंडेलूं ? तुम्हें तो उसे स्वीकार करने का अवकाश ही नहीं है। कल मैं तुमसे मिलने को तरसती रही, भटकती रही, पर तुमने यह तक नहीं सोचा कि प्रसन्न कहाँ होगी ?"

"मैं पागल हो गया हूँ, प्रसन्न। लेकिन, तुम सच कह रही हो न कि तुम इस बारे में कुछ भी नहीं जानतीं।"

"अभी दस बार और पूछो, तब तुम्हें शान्ति मिलेगी। मालूम है, तुम्हारे लिए कौन-कौन रास्ते से पाटन को दौड़ती आई ? मुझे तो यह कहते हुए भी लाज आती है।"

"तब, कल कहाँ गयी थीं ?"

"ओह ! तो सारा झगड़ा इसी बात पर है। यह पहले क्यों नहीं पूछा ?" कहते-कहते प्रसन्न को हँसी आ गई, "विश्वास करना मेरी बात पर। तुम्हारी धारणा ठीक है। मीनलदेवी आज सन्ध्या के समय चुपचाप यहाँ आना चाहती हैं और चाँपानेरी के दरवाजे से आयेंगी।"

त्रिभुवन चौंका, "क्या ? सच ?"

'हाँ। एक आदमी उन्हें लाने के लिए संध्या समय जाने वाला है।"

"कौन है वह ?"

"किसी से कहना नहीं। बात बाहर मालूम हो गयी तो मामला बिगड़ जायेगा। वह आदमी है—मुरारपाल।"

"अच्छा, तो इसीलिए वह गधा आगे होकर दरवाजे पर खड़ा है। मैं अभी—"

बीच में ही प्रसन्न बोली, "अभी नहीं। अभी कुछ मत करना। मैं इसका उपाय करती हूँ।"

"तुम क्या करोगी?"

"यह चिन्ता करने की आवश्यकता तुम्हें नहीं है। मुरारपाल एक बड़ा सामन्त है, लोगों में उसकी इज्जत है। अगर इस समय उसे कुछ होगा तो जनता में हंगामा मच जायेगा। आज तक तुम्हारी पूजा करने वाले कल तुमसे घृणा करने लग जायेंगे। सो, इस समय ज़रा भी हो-हल्ला करना उचित नहीं। जानते हो, कल मैं मुरारपाल से मिलने गयी थी।"

"किसलिए ? बिना मुझसे पूछे ?"

"क्षमा कीजिए, अभी मैं आपकी पत्नि नहीं बनी। मेरी और मुरारपाल की कुछ जान-पहचान हो गयी है। परसों रात हम दोनों साथ ही पाटन आये थे।"

हैरानी से त्रिभुवन ने कहा, "अरे !..."

"हाँ। तुम अपनी तरफ से जलते रहो। मैं उसे रिझाने गयी थी।"

त्रिभुवन गम्भीर और कठोर हो गया, "तुम !"

"हाँ। अगर अक्ल से काम बनता हो तो शक्ति की क्या आवश्यकता है। बन सका तो उसे समझा लेती हूँ। आगे जो हो...।"

"सच ?"

"हाँ। तुम्हारी प्रतिज्ञा मेरी भी प्रतिज्ञा है। मैं क्या तुमसे अलग हूँ !"

"शाबाश प्रसन्न ! मैं इधर बहुत अविश्वासी हो गया हूँ, क्षमा करना। मैं आजकल अस्वस्थ हूँ।"

"तभी तो, न सोते हो, न पट्टियाँ बंधवाते हो।"

त्रिभुवन का हृदय बहुत हल्का हो गया था। प्रसन्न के दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर उसने कहा, "प्रसन्न, एक और वजह से मैं आपे में नहीं रहा हूँ।"

"क्या है वो वजह ?"

"तुम मुझे 'सोलंकी' क्यों सम्बोधित करने लगीं ?" त्रिभुवन ने वह हंसी का कारण खोजकर कहा।

"तो और क्या कहती ?" एक तीव्र कटाक्ष फेंक कर प्रसन्न ने पूछा।

"'सोलंकी' पराया लगता है। 'त्रिभुवन' क्या बुरा है ?"

"अच्छा अब 'त्रिभुवन' ही कहूँगी। सुनो, आज शाम को मैं मुरारपाल को

मोहने जाऊँगी, साथ चलोगे ? नहीं तो तुम घबरा जाओगे कि मैं कहीं भाग गई।"

"अवश्य। सम्भव है, तुम्हें कुछ हो जाय।"

"सम्भव है, मुझे कोई ले जाय। अच्छा, अब तुम कुछ देर को सो जाओ।"

"नहीं। कुछ बात-चीत करेंगे। आओ, मेरे पास बैठ जाओ। आज कितने दिनों बाद—" कहते हुए त्रिभुवन ने प्रसन्न का हाथ दबा दिया।

कुछ देर बाद लीलाधर वैद्य वहाँ आये। सोलंकियों की तीन पीढ़ियों को उन्होंने देखा और समझा था और वे उसे अपना ही समझते थे। उसी वंश की वीर रत्न और योग्य जोड़ी को देखकर उनका हृदय गर्व से फूल उठा। एक टक वे उन दोनों की ओर देखते रहे। वे दोनों मीनलदेवी को तंग करने के उपाय सोच रहे थे। तभी किसी बात पर प्रसन्न ने त्रिभुवन के हाथ अपनी आँखों पर लगा लिए। लजाकर वैद्य वहाँ से चले गये।

: ३५ :

सन्ध्या समय पाटन में थोड़ी बहुत शन्ति छा गई थी। यों लोगों के धन्धे व्यापार आदि अभी पूर्णरूप से चालू नहीं हुए थे, पर उन्हें विश्वास था कि अब नगर की रक्षा योग्य व्यक्ति कर रहे हैं। समस्त लड़ाके कोट की रक्षा करने और बाहरी सेना के आक्रमण से बचाव करने को तैयार थे। मोंढेरी द्वार पर मंडलाधिकारी खेंगार ने मोर्चा बना रखा था और केवल उसी द्वार की खिड़की खुली थी। हर एक आने-जाने वाले पर खेंगार कड़ी दृष्टि रखता था। कोई खास बात होती तो वे त्रिभुवन तक पहुँचा देते थे। यह समाचार सारे नगर में फैल गया था कि मीनलदेवी विखराट में सेना तैयार किये खड़ी हैं। लोग नाराज हो रहे थे।

संध्या के समय महल के पिछले दरवाजे से तीन व्यक्ति बाहर निकले। पहले, शाल में लिपटी हुई एक लड़की, फिर कपड़ों से मुंह बाँधे हुए एक राजपूत, और कुछ दूरी पर मूंछों पर ताव देता हुआ डूंगर नायक। तीनों

तेजी से चाँपानेरी द्वार की ओर चले और उदा का घर आने पर रुक गये। लड़की ने राजपूत की ओर घूमकर कह, "तुम खड़े रहो। मैं आती हूं। आज मेरा राज है।" लड़की हँस पड़ी।

शायद राजपूत को यह अच्छा नहीं लगा। वह कठोरता से बोला, "अगर उसने तुम्हारी बात न मानी तो···तो मुझे शक्ति का प्रयोग करना पड़ेगा।"

"तुम्हें काम करना है या शक्ति प्रयोग? भला, अप्सराओं को कोई परास्त कर सका है?"

"अच्छा, तो मैं जरा दूर खड़ा रहूँगा, वह अभी आयेगा।" कहकर राजपूत वहाँ से हट गया।

अभिचारिका का यह स्वांग रचने में प्रसन्न को दुःख तो अवश्य हुआ पर अपने निश्चय को सोच वह सन्तोष कर गयी और सामने के शिव मन्दिर में चली गई। इस समय मुरारपाल ने आने को कहा था।

कुछ देर बाद मस्ती से भरा हुआ मुरारपाल वहाँ आया। इस समय उसने सादे और स्वच्छ कपड़े पहिन रखे थे और मुख पर गर्व विद्यमान था। मुस्कराता हुआ वह भीतर घुसकर इधर-उधर देखने लगा और मन्दिर का घंटा बजाकर चौकी पर बैठता हुआ बोला, "जयशंकर! भोलानाथ!"

पीछे से निकलते हुए प्रसन्न ने कहा, "माँगो, क्या माँगते हो? वही मिलेगा।"

"अच्छा तो आप आ गयीं?"

"आप जैसे व्यक्ति ही वचन का पालन नहीं करते। मेरे मना करने पर भी आपने वह पता लगा ही लिया कि मैं कौन हूँ?"

"मन न माना तो मैं क्या करता?"

कल, प्रसन्न के जाने के पश्चात् मुरारपाल ने उदा से प्रसन्न के विषय में पूछा था और उदा ने यह बात प्रसन्न से कह दी थी।

प्रसन्न ने कहा, "इस तरह क्या आप भले आदमियों का मान रखते हैं?"

मुरारपाल प्रसन्न को शान्त करने के ही गरज से बोला, "मैंने यह किसी से नहीं बताया कि हम लोग साथ-साथ पाटन आये हैं।"

"बड़ी कृपा की।" फिर उतावली का ढोंक करती हुई बोली, "अच्छा,

अब मैं चलूं।"

मुरारपाल ने बाहर आकाश की ओर देखा। अभी उसके पास समय था। "नहीं-नहीं। अभी तो आयी हो और अभी चली जाओगी? क्या इतने के लिए ही मुझे बुलाया था?

"मैंने आपको दूसरी बार मिलने का वचन दिया था, सो मिल ली। रात को कोई मुझे लौटता हुआ देखेगा तो क्या कहेगा?"

"इन हंगामों के दिनों में कौन देखेगा? और तुम्हारी बुआ तो है ही नहीं। कुछ देर और बैठ जाओ।"

"अच्छा लो।" कहती हुई वह दो खम्भों के मध्य जड़ी लकड़ी पर चढ़ कर बैठ गयी, "कहिए अब क्या कहना है?

"उस दिन महारानी को छोड़कर तुम भाग क्यों आयीं?"

"वह निजी बात है, किसी से कहने की नहीं।"

"लेकिन मैंने एक बात सुनी है, महारानी तुम्हारा विवाह अवन्ती में करना चाहती हैं।"

मुरारपाल महत्वाकांक्षी था और जब से उसे यह मालूम हुआ था कि उसके साथ आने वाली महारानी की भतीजी है, तब से वह आशाओं के ऊंचे-ऊंचे महल बना रहा था। यदि मीनलदेवी राजसत्ता अपने हाथ में ले ले और देवप्रसाद की शक्ति कमजोर पड़ जाय तो मालवा के साथ युद्ध छिड़ सकता है और तब उस जैसे बुद्धिमान और अनुभवी योद्धा को ऊंची जगह मिलनी स्वाभाविक है और प्रसन्न का विवाह अगर मालवा में न हो तो इस उत्साही वीर से प्रसन्न क्यों न विवाह कर लेगी। इधर-उधर से उसने यह भी सुना था कि त्रिभुवन के साथ प्रसन्न के विवाह की बात चल रही थी पर मीनलदेवी के कारण रुक गयी। इस समय रानी पर अहसान लादने का स्वर्ण अवसर है। वह रानी को किसी तरह राजमहल में छोड़ आये तो सब जगह शांति स्थापित हो जाये और शासन ज्यों-का-त्यों व्यवस्थित हो जाये और तब रानी का दाहिना हाथ मुरारपाल प्रसन्न से सरलता से विवाह कर सकता है। इन सपनों को सत्य करने के लिए वह प्रसन्न को मोहित करना चाह रहा था। वह यह जानने की कोशिश करने लगा कि मालवराज से विवाह करने के सम्बन्ध में

प्रसन्न की क्या राय है ?

लेकिन प्रसन्न भी कच्ची गोली नहीं खेली थी। वह मुरारपाल को फूंक में उड़ा देने वाली लड़की थी।

कुछ देर बाद मन्दिर का रक्षक दीपक जलाने आया तो मुरारापाल ने प्रसन्न से कहा, "चलो, तुम्हें देर हो रही होगी।"

"भई खूब ! अब मैं कहां जाऊंगी ? महल के द्वार तो बन्द हो गये होंगे, और जिससे खिड़की खोल रखने को कहा था, वह भोजन करने चला गया होगा।"

"मुझे जरा काम है। जहां आप कहें, पहुंचा आऊं।"

"इस समय कहां जाओगे ? तुम्हारा पहरा तो सारी रात चांपानेरी द्वार पर है। सामने उदा के घर पर ही तो सोते हो न ?"

मुरारपाल उलझन में पड़कर बोला, "हां, लेकिन इस समय मुझे बहुत जरूरी काम है।"

"अच्छा तो, मैं यहीं रहती हूँ, तुम काम निपटा कर आओ। तब मुझे पहुंचा देना।"

"मैं हाथों हाथ नहीं लौट सकूंगा।"

प्रसन्न ने कुछ चिढ़कर कहा, "तो क्या एक दिन के लिए भी वह काम नहीं टाला जा सकता ?"

"नहीं।"

गुस्से का ढोंग करती हुई प्रसन्न बोली, "अच्छा जाओ, अपना काम करो। मैं तो यहीं बैठी रहूंगी और जब मेरी इच्छा होगी, तब जाऊंगी।"

"लेकिन···"

"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं। मुझे स्वार्थी आदमी नहीं अच्छा लगता। मुझे पहले ही मालूम था कि पाटन की सभ्यता, शिष्टाचार थांड़ में पड़े-पड़े जंग खा गयी है।"

"अगर तुम मेरे जरूरी काम को सुन लो तो फौरन मुझे जाने को कह दो।"

झूठ-मूठ का स्नेह प्रकट करते हुए प्रसन्न ने पूछा, "मुझे बताओ न,

कौन-सा ऐसा जरूरी काम है ?" इस समय उसकी मुख-मुद्रा और हाव-भाव किसी को भी अपनी ओर खींच सकते थे।

मुरारपाल ने कहा, क्षमा चाहता हूं, यह बात बताने लायक नहीं है। कल सुबह बता दूंगा। तुम यह सुनकर स्वयं समझ जाओगी कि मेरा कहना ठीक था। अब मेरा समय हो रहा है, मुझे जाने दो।"

"अगर मुझ पर विश्वास नहीं है तो मुझे भी जानने की ऐसी क्या परवाह पड़ी है। ये दरवाजे खुले हैं, जाओ।"

"प्रसन्न देवी, ये तुम क्या कर रही हो ?" तुम सयानी हो; चतुर हो; बुद्धिमान हो, और इतनी जरा-सी बात भी नहीं समझ सकतीं ?"

"हाँ जी, मेरी तो बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है। देख क्या रहे हो, जाओ।"

"यह कहकर मेरा हृदय चीर रही हो।"

"और मेरा हृदय तो चिर-चिर कर कभी का टुकड़े-टुकड़े हो गया है, यह नहीं जानते ? कहती हुई प्रसन्न नीचे कूद पड़ी। उसके पाँवों की पंजनियों की झंकार के आगे मुरारपाल हार गया। वह बोला, "तुम मुझे बहुत उलझन में डाल रही हो प्रसन्नमुखी। अच्छा, बाहर आओ, बताता हूं। लेकिन बात गुप्त ही रखना।

प्रसन्न बनने लगी, "नहीं नहीं, मुझे कुछ नहीं सुनना।"

निराशा से मुरारपाल ने कहा, "प्रसन्नमुखी !"

तिरस्कारपूर्ण स्वर में प्रसन्न बोली, "क्या कहना है ?"

"इधर आओ, सब कहता हूँ। आओ, बाहर आओ।" कहकर वह बरबस प्रसन्न को मन्दिर के द्वार तक लाया, "प्रसन्नदेवी तुम्हारी बुआजी ने मुझे एक जरूरी काम से बुलाया है।"

प्रसन्न ने लापरवाही से पूछा, "क्या ?"

"मुझे उन्हें लेकर नगर पहुँचाना है। अभी वे इस द्वार पर आयेंगी।"

प्रसन्न ने अनजान बनकर कहा, "लेकिन अन्दर आयेंगी कैसे ? द्वार तो सब बन्द हैं और चाभियाँ त्रिभुवनपाल के पास हैं।"

किसी से कहना नहीं, मेरे पास भी ताली है।"

"तुम कहाँ से लाये ?"

"महारानी ने दी है। चलो दरवाजे के पास। अभी वहाँ कोई द्वार खट-खटायेगा पहरेदारों को मैंने छुट्टी दे दी है, अतएव वहाँ कोई न होगा।"

"किन्तु खेंगारसिंह, त्रिभुवनपाल और अन्य लोग क्रोधित हुए तो?"

"क्या बात कहती हो? यह सारा उपद्रव तो सामने चन्द्रावती की सेना के पड़ाव डालने के कारण है। जहाँ रानी अन्दर गयी और सब लोगों को मालूम हुआ, सब जगह-जगह शान्ति छा जायेगी। फिर त्रिभुवनपाल को कहा जायेगा कि हवा खाओ।"

प्रसन्न की इच्छा हुई कि मुरारपाल की नाक काट ले। बोली, लेकिन तुम तो पाटन के ही हो?"

"हाँ, सात पीढ़ियों से। लेकिन इससे क्या सम्बन्ध?"

"ऐसे अवसर पर तुम पाटनवासियों की इज्जत गिराओगे!"

किसी की इज्जत है भी? और हो तो मीनलदेवी की आज्ञा मेरे लिए सर्वप्रथम शिरोधार्य है। पर, तुम क्यों ऐसा कहती हो? रानी का आना तुम्हें अच्छा नहीं लग रहा।"

"यहाँ से गयी न होतीं तो अच्छा लगता। लेकिन शोक त्याग कर पराई सेना से जा मिलीं, इससे मेरे मन में उनके लिए जगह न रही। पाटन की रानी तो पाटन का गौरव होना चाहिए, उसे गिराने वाली नहीं।"

"प्रसन्नमुखी, तुम्हारे कहने का ढंग सामल बारहट के ढंग की टक्कर का है।"

"बारहट जी के पैर की धूल के बराबर अभिमान भी तुममें होता तो अच्छा था। लेकिन तुम यह क्या कर रहे हो!"

"खिड़की के पास खड़ा हो रहा हूँ कि बाहर से कोई आये तो पता चल जाय।"

"मुरारपाल जी, तुम किसके हो! पाटन के या वहाँ की रानी के।"

"रानी मेरी स्वामिनी है।"

"तुम्हारा नगर बिक रहा है और तुम देखते रहोगे। रानी या राजा तो सराय के मुसाफिरों की तरह अस्थायी हैं, कल चले जायेंगे, परन्तु गयी हुई मान-मर्यादा फिर वापस नहीं आ सकती। तुम्हारी दृष्टि में तो संसार में पाटन

ही प्रथम होना चाहिये।

"ठीक। परन्तु, रानी की आज्ञा का उलंघन कैसे किया जा सकता है !"

"लेकिन तुम एक निर्जीव आज्ञा के पालन के लिए जीवित पटानियों को भी तो नहीं बेच सकते ! उनके गौरव, उनकी स्वतन्त्रा पर पानी नहीं फेर सकते।"

"तुम तो व्यर्थ नाराज होती है। राजपूत को स्वामी की आज्ञा का पालन करना ही शोभा देता है।"

"अगर तुम्हारे पूर्वजों की भी यही धारणा होती तो आज पाटन पर यवउ राज्य करते। मुरारपाल तुम वीर योद्धा हो, ईमानदार हो। मैं भी भिखारिन नहीं, राजाओं की कन्या हूँ। लेकिन, आज मैं आंचल पसारती हूँ कि तुम लौट चलो और मुंजाल और मण्डलाधिकारी के साथ कपट करने वाली रानी को योंही भटकती छोड़ दो। अपने नगर की नाक मत कटाओ।"

'मैं नहीं जानता था, तुम बुआ भतीजी में इतना अधिक बैर है।"

"मैं भी नहीं जानती थी कि धांड़ का सेनापति इतना खुशामदी है।"

'प्रसन्नदेवी मैं किसकी प्रशंसा करूँ ? तुम्हारे शब्दों की या तुम्हारे जोश की ? मैं जीवन-भर तुम्हारे ये नयन कटाक्ष सह सकता हूं, पर तुम्हारे ये वचन मेरे लिये पत्थर पर पानी डालने के समान हैं।"

तभी किसी ने बाहर से खिड़की को खटखटाया। मुरारपाल फौरन घूम कर कान लगाकर सुनने लगा और कुञ्जी निकालने के लिये उसने जेब में हाथ डाल लिया। प्रसन्न ने उसका हाथ पकड़ लिया, "मुरारपाल जी, तुम एक इज्जतदार राजपूत होकर भी यह क्या कर रहे हो ?"

"मुझे मत रोको। मैं दृढ़ हूँ।" कहकर उसने कुञ्जी निकाली और कुण्डी खोलने के लिये हाथ बढ़ाया।

प्रसन्न ने फिर टोका, "तनिक सोचो तो। तुम ऐसा नीच काम करोगे ?"

मुरारपाल ने कुछ उत्तर न दे, कुण्डी खोल, दरवाजे की दरार से झांका और बाहर से एक स्वर आया, "कौन मुरारपाल जी ?"

"हाँ। महारानी जी आ गयी हैं ?"

"हाँ, कुछ दूर हैं। मैं ले आता हूँ।"

"जल्दी करो।"

प्रसन्न ने फिर पूछा, "मुरारपाल, तो तुम नहीं मानोगे ?"

"नहीं।"

"क्यों ? रानी को प्रसन्न करने से लाभ ? मुझसे कहो, जो तुम्हें चाहिये, दिलवा दूंगी।"

लाभ ? मुरारपाल प्रसन्न को भी नाराज कर अलग नहीं करना चाहता था, बोला, "अपना धर्म पूरा कर रहा हूं।"

तिरस्कार से प्रसन्न बोली, "नगर खोना, मर्यादा छोड़ना, इज्जत और स्वतन्त्रता गंवना—यही तुम्हारा धर्म है कि और कुछ ?"

मुरारपाल ने प्रसन्न के तेजस्वी सौन्दर्य की ओर निहारा और हंसता हुआ बोला, "तुम मुझे क्या लाभ पहुँचाओगी ?"

प्रसन्न को लगा, मुरारपाल उसके ख्याल से भी ज्यादा स्वार्थी और तुच्छ है सो उसने उसे हर तरह से झुकाने का निश्चय कर लिया, बोली, "मुझसे जो बनेगा, सब दूंगी। अगर तुम रानी को नगर में ले गए तो मैं तुमसे बात करना पसन्द नहीं करूंगी। कायर, स्वार्थी तथा नगरद्रोहियों का मैं नाम तक लेना अच्छा नहीं समझती, मुरारपाल !" नेत्रों से एक मदमस्त काम-बाण छोड़ते हुए उसने कहा, "रानी को खुश करके क्या पाओगे ? पदवी ? वह तो है ही। सत्ता ? वह भी है। रही कीर्ति, सो वह द्रोहियों को नहीं मिलती।"

"सुन्दरी, लाभ, धर्म, जो चाहे कहो, पर तुम मुझे सीधे रास्ते से क्यों हटा रही हो ? तुम्हें इससे क्या लाभ होगा ?"

प्रसन्न ने पास आकर कहा, "मुझे ? यही कि तुम जैसा शूरवीर योद्धा देश-द्रोही न बन जाय। रानी सब कुछ दे सकती है, पर जो मैं दे सकती हूं, वह नहीं दे सकती।"

"वह क्या ?"

प्रसन्न ने अभिमान से कहा, "पद्मिनी का हाथ।" उसके लावण्यमय चेहरे पर एक तेज प्रकाश छा गया।

मुरारपाल चौंक उठा, "तुम्हारा ?"

"हाँ मेरा। प्रसन्नमुखी का, जिसके बिना सारा संसार सूना है। बोलो,

संसार बनाओगे या बिगाड़ोगे ?" कहते हुए उसने दोनों हाथ मुरारपाल के कन्धे पर रख दिए। इस समय वह अपना अन्तिम पासा फेंक रही थी। उसके स्पर्श से मुरारपाल के वदन में सनसनी दौड़ गयी, सुध-बुध खोने लगा।

"प्रसन्नमुखी, सच कह रही हो ?"

"अपनी कुञ्जी मुझे दे दो। फिर जो कहोगे, मुझे स्वीकार होगा।"

बड़ी उमंग से प्रसन्न के हाथ थाम कर बोला, "सच ?"

"हाँ।" कहकर प्रसन्न ने उसके शिथिल हाथों से कुञ्जी ले ली, और कहा, "वह कुण्डी लगा दो।"

काँपते हाथों से मुरारपाल ने ऐसा ही किया।

किंचित-सा हँसते हुए प्रसन्न बोली, "मुरारपाल जी, आज आपने पाटन को जीवन-दान दिया है।"

"और तुम मुझे कब जीवन-दान दोगी ?"

प्रसन्न अचानक अपना स्वरूप बदलकर बोली, "मेरा वश चले तो चौरासी जन्मों में भी नहीं।"

"क्यों ?—"

सच कह रही हूँ। जो कार्य तुमने पाटन के गौरव, उसकी मर्यादा, अपने पूर्वजों की शान के लिए नहीं किया, वह एक मिट्टी के पुतले के लिए कर बैठे और, ऐसे व्यक्ति से मैं विवाह करूँ ? मैं तो ऐसे आदमी का स्पर्श भी नहीं कर सकती।" अत्यन्त साहस के साथ प्रसन्न कमर पर हाथ रखकर खड़ी हुई मुरार की ओर देखने लगी।

लज्जा, क्रोध और निराशा से मुरारपाल उसे देखने लगा, "क्या तुम सच कह रही हो ?"

'बिल्कुल सच। तुम्हारा मुंह देखकर मेरी आँखें लजा रही हैं। तुम जैसे द्रोहियों को तो कोल्हू में पिलवा देना चाहिए। तुमने पहले मेरी बात मान पाटन की प्रतिष्ठा और टेक के लिये ताली दी होती तो मैं तुम्हें अपने भाई से भी ज्यादा समझती। लेकिन अब ? अब तो मैं तुम्हारी छाया से भी घृणा करती हूं।"

मुरारपाल क्रोधित होकर बोला "विश्वासघातिनी, मेरी सज्जनता का

यह फल ! जानती नहीं तेरे हाथ से कुञ्जी लेना कितना आसान है ?"

"हिम्मत हो तो ले लो। अब अपनी भलाई चाहते हो तो चुपचाप चले जाओ, नहीं तो सब के सामने दुर्दशा कराओगे।"

"अच्छा ?" कहकर मुरारपाल उसकी ओर झपटा।

प्रसन्न को मालूम था कि त्रिभुवन और डूंगर दरवा कीजे आड़ में खड़े हो गए हैं। वह पीछे खिसक गयी और मुरारपाल के आगे त्रिभुवन की तलवार आ गयी। त्रिभुवन का शान्त और अधिकारपूर्ण स्वर सुनायी दिया, "मुरारपाल, क्या यही एक राजपूत योद्धा की शिष्टता है ? यह क्यों नहीं कहते कि प्रसन्न ने आज तुम्हें पाप करने से बचा लिया ?"

मुरारपाल ने यह सब खेल देखा और अपनी मूर्खता को समझा। अब वह क्या करे ? कृतघ्न और द्रोही-सा बना वह चुपचाप खड़ा रहा। कुछ क्षण बाद उसने कहा, "त्रिभुवनपाल, मुझे नगर से बाहर जाने दो। अब मैं यहां नहीं रह सकता।"

"इस समय घर जाओ। सवेरे मोंढेरी द्वार से चले जाना। आज्ञा मिल जायेगी। प्रसन्न, मुरारपाल से कुछ काम है ?"

दूर खड़ी प्रसन्न ने कहा, "नहीं।"

"डूंगर नायक, तुम इस दरवाजे की रक्षा के लिए रहो। सम्भव, कोई उत्पात ही खड़ा हो जाय।"

प्रसन्न कहने लगी, "त्रिभुवन, यह डूंगर नायक तुम्हारी बड़ी सेवा कर रहा है। उपद्रव शांत हो जाय तो इसे एक छोटी-सी जागीर दे देना।"

डूंगर नायक फूल उठा। बोला, "आपको अखण्ड सौभाग्य प्राप्त हो बहन जी।"

प्रसन्न और त्रिभुवन एक ओर को चले। मुरारपाल भी सिर झुकाये दूसरी दिशा में जाने लगा।

कुछ देर बाद बाहर से किसी ने द्वार खटखटाया। उत्तर न मिलने पर दूसरी और तीसरी बार भी खटखटाया। डूंगर नायक मुंह पर हाथ रखे हँसता रहा। आखिर, दरवाजा खटखटाना बन्द हो गया।

: ३६ :

राजमहल की तरफ जाते हुए त्रिभुवनपाल ग्रौर प्रसन्न के हृदय ग्रानन्द से प्रफुल्लित थे। पहुँचते ही उन्हें कल्याणमल्ल ने सूचना दी कि दो-तीन ग्रादमी कुछ खबर ले कर ग्राये हैं। त्रिभुवन ने उन्हें ग्रपने पास बुलाया। पहला सैनिक पाटन की एक टुकड़ी का था ग्रौर यह खबर देने ग्राया था कि कल सन्ध्या समय विखराट की सेना के कुछ सिपाहियों के साथ मार-पीट हो गयी। दूसरा सैनिक गुजरात में मालवराज के प्रवेश करने का समाचार लाया था। तीसरा सैनिक बड़ी मुश्किल में ग्रौर बड़ा घबराया-सा जान पड़ता था।

"महाराज, क्या मुझे नहीं पहचाना ? मैं——।"

"ग्ररे, रामसिंह ?" कहते हुए त्रिभुवन ग्रागे ग्राया, "कहो, क्या बात है ? क्या नये समाचार हैं ? पिताजी, वल्लभसेन——।"

बीच में ही रामसिंह बोला, "मुझे वल्लभसेन महाराज ने भेजा है।"

"वे कहाँ हैं ?"

"स्वामी वे मेरल की सेना लेकर विखराट के निकट ग्रा पहुँचे होंगे। मुझे समाचार देने के लिए ग्रागे भेज दिया है।"

त्रिभुवन प्रसन्न की ग्रोर मुड़कर बोला, "शाबाश ! ग्रब तुम्हारी बुग्रा जी से मजा चखने को कहा जाय ? पिताजी का पुण्य-प्रताप ग्रभी रंग ला रहा है। हाँ रामसिंह, पिताजी—"

रामसिंह ने घबराते हुए कहा, "मुझे एक बात ग्रौर कहनी है।"

त्रिभुवन को कुछ धक्का-सा लगा, "क्या ?"

रामसिंह ग्रौर भी घबरा गया। समझ नहीं पा रहा था कि क्या कहे ? बोला, "मैं गम्भीरमल्ल के साथ था।"

"कहाँ ? मंडुकेश्वर में ? पिताजी तो वहाँ समय पर पहुँच गये होंगे ? वे कहाँ हैं ?"

रामसिंह निरुत्तर था।

"बोलो भाई। ग्ररे तुम घबरा क्यों रहे हो ? ये तुम्हारी ग्राँखों में ग्राँसू ?" त्रिभुवन स्वयं भी बहुत ग्रकुला रहा था।

"अन्नदाता अब नहीं सहा जाता मंडलाधिकारी महाराज'''स्वर्ग सिधार गए।"

त्रिभुवन के मुख पर पहले जैसे कठोरता आ गयी, "कहां ? कब ?"

"कल रात्रि के समय ? सरस्वती में।"

"सरस्वती में ? और माताजी ?"

रामसिंह ने सारा इतिहास उसे सुना दिया। इसी समय लीलाधर वैद्य, उदा वगैरह भी वहाँ आ पहुंचे और सब शोक से व्याकुल हो गये। प्रसन्न ने वैद्य को त्रिभुवन के साथ रहने के लिए कहा। त्रिभुवन जड़ बना खड़ा था। एक भी आंसू उसकी आंखों में नहीं था। न ही उसे शोक था। बस आंखें दो लाल अंगारों की तरह चमक रही थीं। कठोर स्वर में उसने कहा, "उदा सेठ नगर में ढिंढोरा पीटकर यह खबर करवा दो और, पंडितों, शास्त्रियों सामन्तों और सेठों को तुरन्त बुलवाओ।" कहकर त्रिभुवन चला गया। प्रसन्न भी पीछे-पीछे हो ली। अन्दर पहुंचकर त्रिभुवन बिछौने पर पड़ गया।

क्षण भर के लिए प्रसन्न उलझन में पड़ गयी और खड़ी रही। इन दोनों साथियों ने इतने वर्ष साथ उठते-बैठते-खेलते गुजारे थे। पर आज त्रिभुवन को स्पर्श करना भी उसे बड़ा कठिन महसूस हो रहा था, उसे बड़ी लज्जा महसूस हो रही थी। लेकिन, फिर उसे ख्याल आया, त्रिभुवन इस समय भड़का हुआ और उत्तेजित है, उसे कोई सहारा चाहिए जो उसके दुःख में हाथ बंटा सके, उसे ढांढस दे सके। यह सोचकर उसने लज्जा, मर्यादा, सब त्याग दिये और त्रिभुवन के पास बैठ वह उसके हाथ को अपने हाथ में लेने का प्रयत्न करने लगी। त्रिभुवन ने भयानक नेत्रों से उसकी ओर देख उसके हाथ झटक दिए।

प्रसन्न निडर होकर बोली, "त्रिभुवन !"

"तुम यहाँ से चली जाओ। मुझे किसी की जरूरत नहीं है।" यह कह वह उठ बैठा। प्रसन्न और पास आकर उसका हाथ थामे, उसका सिर अपनी गोदी में रखने की चेष्टा करने लगी।

त्रिभुवन ने उसे जोर से धक्का दिया, "जाती हो या नहीं ? तुम्हें इस समय भी मजाक सूझ रहा है।"

प्रसन्न दुःखी हुई, फिर भी नजदीक आ उसके कंधे पर हाथ रखकर कहने लगी, "तुम क्या चाहते हो, यह तो बताओ ।"

त्रिभुवन ने आवेश में मुट्ठी बाँधकर ऊपर की, पर तभी प्रसन्न का स्नेहमयी आँसू भरी आँखें देख उसने हाथ नीचे कर लिया, बोला, "क्यों मुझे इस समय चिढ़ा रही हो ?" देखती नहीं, मेरे पिता गये, माँ गयीं, और अब मैं इस संसार में अकेला हूँ ।" त्रिभुवन का आवेश गलने लगा और वह जोर से रो पड़ा, हाय पिताजी !"

बिना एक शब्द बोले, प्रसन्न ने उसे अपने हाथों में ले लिया और ऐसे उसके सिर, माथे पर हाथ फेरने लगी जैसे वह कोई नन्हा बालक हो । दुख के बोझ से दबा हुआ त्रिभुवन उसके आधीन हो गया और माँ की गोद का सुख अनुभव करने लगा ।

जैसे ही नगर में यह समाचार फैला कि मंडलाधिकारी की मृत्यु इस प्रकार हो गयी है, लोगों में खलबली मच गयी । चारों ओर दुःख छा गया । पाटनवासी वीरत्व के इतने भक्त थे और इसी कारण देवप्रसाद का इतना आदर था । सब इस तरह विलाप करने लगे जैसे उनके अपने पिता की मृत्यु हुई हो। सभी लोग रानी तथा चन्द्रावती से बदला लेने का संकल्प करने लगे । त्रिभुवन के आदेशानुसार सभी सामन्त, सेठ-साहूकार, शास्त्री, पंडित आदि दरबार में आये तथा मंडलाधिकारी खेंगार त्रिभुवनपाल को बुलाने गये । त्रिभुवनपाल आया तो सबने खड़े होकर उसका स्वागत किया । त्रिभुवन का स्वर इस समय बहुत नरम और धीमा था । उसने कहना प्रारम्भ कर दिया—

"बन्धुओ ! आप सब लोगों को यह मालूम हो गया होगा कि पाटन के सिंहासन को किस प्रकार कलंकित किया गया है । इस समय आप लोगों को बुलाने का एक ही कारण है । मेरे माता-पिता के हत्यारे के लिए पुत्र के रूप में मेरा एक ही धर्म है और मेरी तलवार उसका पालन करेगी । क्या आप सब लोग इसे पसन्द करेंगे ? अभी तक हम लोग परदेशियों को न घुसने देने के लिए लड़ते थे, लेकिन आज मैं राजद्रोही बन रहा हूँ । क्या आप लोग भी राजद्रोही बनेंगे ? मेरे ख्याल से मीनलदेवी के लिए अब एक ही रास्ता

रहा है कि वे वापस चन्द्रावती लौट जायें। उनके चले जाने पर ही कुमार जयदेव इस सिंहासन पर बैठ सकेंगे, अन्यथा मैं अपने जीते जी मीनलदेवी को प्रवेश नहीं करने दूंगा। अगर आप लोगों का विचार इसके विपरीत हुआ तो मैं यहां से चला जाऊंगा। मेरी सेना मेरे पिता की मृत्यु का बदला लेने को तैयार खड़ी है और मेरी प्रतिक्षा कर रही है। आप सब बड़े-बूढ़े हैं। विचार लीजिये, मण्डलाधिकारी की मृत्यु का बदला लेंगे या चुप बैठे रहेंगे ?"

सब लोग एक दूसरे का मुंह देखने लगे।

त्रिभुवन बोला, "मैं जाता हूं। अपने विचार मुझे बता देना, मैं आ जाऊंगा।" और वह अन्दर की ओर चला गया।

भीतर राजकुल की कुछ स्त्रियां और महाराज कर्णदेव की दो पुरानी रानियां खड़ी थीं जिनका उद्देश्य आराम से खाना-पीना और चैन की बंसी बजाना था, चाहे कोई राज्य करे। त्रिभुवन आगे बढ़ गया। देखा, प्रसन्न जल्दी-जल्दी अपने कपड़े और जेवर इकट्ठे कर रही है। त्रिभुवन ने पूछा, "क्या कर रही हो, इस समय ?"

"पाटन से बाहर जाने की तैयारी।"

त्रिभुवन ने पास आकर कृतज्ञता से उसका हाथ दबा दिया। अनजाने ही प्रसन्न का हाथ त्रिभुवन की कमर से लिपट गया। कुछ देर दोनों चुपचाप खड़े रहे।

बाहर सब लोग तो बातों में एक मत थे। पहली तो यह कि मण्डलाधिकारी की मृत्यु पाटन के गौरव के लिए अपमान है और इसके लिए कुछ करना चाहिए। दूसरे मीनलदेवी के विरुद्ध हर कोई हो रहा था। पंडित गजानन्द और लीलाधर वैद्य के अतिरिक्त हर व्यक्ति रानी को खुले शब्दों में कोस रहा था। अन्त में सब का निर्णय एक हुआ और खेंगार और लीलाधर त्रिभुवन के पास पहुंचे।

"महाराज हमने निर्णय कर लिया है।"

"क्या ?"

"सारा पाटन आपके पक्ष में है, आपके साथ है। आइये।"

त्रिभुवन निश्चित होकर बाहर आया। प्रसन्न भी अपनी तैयारी छोड़कर

उसके पीछे-पीछे आ गयी।

थोड़ी देर बाद सब लोग अपने-अपने घर चले गये। सारा अधिकार अपने हाथ में लेकर त्रिभुवन ने उदा को मुरारपाल के पास भेजा कि उसे रानी के पास जाने के लिए समझाये। मुरारपाल को अब पाटन में रहना बहुत खल रहा था, अतः उसने त्रिभुवन का सन्देश ले जाना स्वीकार कर लिया।

त्रिभुवन ने दूसरा सन्देश वल्लभसेन के पास भेजा कि पाटन अब मेरे आधीन है, अतः सेना को तैयार रख वल्लभ वहीं पड़ा रहे।

: ३७ :

चांपानेरी द्वारा से कोई उत्तर न मिलने पर मीनलदेवी के क्रोध और बेचैनी की कोई सीमा न रही। उसे मुरारपाल से ऐसी आशा नहीं थी। क्रोधित होकर वह रात्रि के अन्धकार में अपने रिसाले सहित वापस पड़ाव पर पहुंची। सौभाग्य से सेनापति के अतिरिक्त कोई भी रानी के बाहर जाने की बात नहीं जानता था।

रानी सोचने लगी, इस समय किसकी सलाह ली जाय? आनन्दसूरि अब तक आया नहीं था। रानी उसे कोसने लगी। अन्य लोगों में इतनी बुद्धि नहीं समझती थी। हाँ, मुंजाल था, पर रानी उसके आगे कैसे झुक जाय? मुंजाल बन्दी बना चुपचाप पहरेदारों के साथ घूमता था। उसकी सलाह बहुत कीमती थी पर, उससे पूछने पर रानी का अभिमान जो चला जाता। मुंजाल उससे कहा करता था—'मेरी वजह से तुम्हारी सत्ता टिकी हुई है।' नहीं, वह मुंजाल की सहायता के बिना ही स्थिति को सुधार लेगी। सामने पाटन द्वार बन्द किये बैठा था, पीछे मण्डलाधिकारी सेना लेकर खड़ा होगा। बीच में, केवल चन्द्रावती की सेना लेकर वह क्या कर सकती है? रानी की उलझन बढ़ती चली गयी और उसकी असमर्थता साकार रूप लेकर उसके सामने खड़ी हो गयी। तभी रानी ने स्वर सुना, "माताजी, एक दूत कुछ समाचार लेकर आया है। सेनापतिजी ने उसे भेजा है।"

रानी ने ऊपर देखा, चोबदार था। उसे देखकर रानी की आंखों में आंसू

भर आये। स्वामीभक्त चोबदार सदा रानी के पीछे घूमा करता था। वह बोली, "अन्दर बुलाओ।"

"जो आज्ञा।" वह दूत को अन्दर ले आया।

दूत ने कहा, "यहाँ से दो योजन की दूरी पर वल्लभसेन की सेना आ पहुँची है।"

"क्या ?···तत्र मण्डलाधिकारी भी साथ होगा ?"

नहीं, मण्डलाधिकारी तो सरस्वती में डूबकर मर गये और अब यह समाचार है कि मंडुकेश्वर के महालय को यति ने जलाकर भस्म कर दिया है।"

"तुमने कैसे जाना ?" रानी चौंकी, "क्या यह सब सच है ?"

"माताजी, मैं तो यह समाचार सुनकर ही यहाँ आया हूँ।"

"अच्छा, और कुछ कहना है ? नहीं तो जाओ।"

"नहीं माताजी। पता लगाने को विजयपालजी ने सैनिक भेजे हैं।"

"ठीक है।" कहकह रानी ने उसे विदा कर दिया।

रानी और चक्कर में पड़ गयी। मण्डलाधिकारी मर गया और वल्लभसेन यहाँ सेना लेकर आया है। आँसूपूर्ण दृष्टि से जयदेव की तरफ देखते-देखते रानी ने सारी रात बिता दी। प्रातः उसे समाचार मिला—'बल्लभ का अपनी सेना के साथ दो योजन दूर ही रहने का विचार है और बन्दी के रूप में आनन्दसूरि भी उसके साथ है। गुप्तचरों के समाचारों से यह स्पष्ट हो रहा था कि मंडलाधिकारी की मृत्यु होने पर भी उसकी सेना टूटना नहीं चाहती और चन्द्रावती की सेना बहुत बड़ी है, इस वजह से वल्लभसेन ने बैठे रहने का रास्ता अपनाया है।

कुमार जयदेव ने कहा, "माताजी, हम कल क्यों लौट आये ? पाटन चलिये न !"

रानी ने सांत्वना दी, "चलेंगे बेटा। अभी थोड़ी देर है।"

लेकिन जयदेव को भी परिस्थिति का भान हो रहा था, सो वह अधिक नहीं बोला।

दिन चढ़ने पर मीनलदेवी ने विश्वपाल और दो एक विश्वासपात्र सामन्तों, सेठ शान्तिचन्द्र तथा चन्द्रावती के सेनापति विजयपाल को बुला

भेजा। सारी सेना मंडलाधिकारी की मृत्यु से हर्षित हो रही थी और अब उसे विजय सरल लग रही थी। हालांकि सब लोगों तक यह बात फैल गयी थी कि पाटनवासी बिगड़े हुए हैं, लेकिन उनका ख्याल था कि पाटन में अब कोई योग्य व्यक्ति नहीं रह गया है और लोगों का आवेश शीघ्र ही समाप्त हो जायेगा।

सब लोग आकर बैठ गये और सोचने लगे, अब क्या किया जाय? रात की बात रानी ने किसी से नहीं कही थी। अनुभवी विजयपाल ने कहा, "महारानीजी, यों हमारे सैनिक विश्वासपात्र हैं, संख्या में भी अधिक हैं; परंतु इस समय हम दो ओर से घिरे हुए हैं—एक ओर पाटन से और दूसरी ओर वल्लभ से। अतएव, जल्दी-से-जल्दी हमें इनमें से एक भय को दूर करना चाहिए। अगर पाटन को आप अपने पक्ष में देखती हैं तो उसे खुश कीजिए। खेंगार या ऐसे ही व्यक्ति द्वारा हमें पाटन का डर दूर करना चाहिए और तब आप पाटन का घेरा डालिये। इस प्रकार निष्क्रिय बैठे रहने से सैनिकों का उत्साह टूट रहा है।"

रानी, विश्वपाल और विनयचन्द्र ने एक दूसरे की ओर देखा। पाटन के प्रति उनका विश्वास पल-पल में घटता जा रहा था, किन्तु इस समय किससे कहा जाय? तभी समाचार मिला कि पाटन से एक सामन्त कुछ सन्देश लेकर आया है। सबने आतुरता से बुलाने का आदेश दिया और टकटकी लगाकर द्वार की ओर देखने लगे। कुछ देर में शर्म से गड़ता हुआ, अपनी बेवफाई से लज्जित और पाटन के अनुभवों से कांपता हुआ मुरारपाल आ खड़ा हुआ।

रानी उसे देखकर प्रसन्न हो गयीं। इस मौके पर वीर सामन्त को पाकर उसे कुछ आशा बंधी, बोली, "आओ मुरारपाल। कहो, क्या समाचार है?"

"महारानीजी, केवल बुरे समाचार लाया हूं।"

"चिन्ता नहीं। बैठो।" रानी ने उसे अपने निकट ही बैठाया और कल रात वाली बात का जिक्र न करने का संकेत किया। मुरारपाल समझ गया।

"महारानीजी, मैं पान से संदेश लेकर आया हूं।"

विनयचन्द्र ने कौतूहल से पूछा, "पाटन से? पाटन से महारानीजी को

संदेश भेजने वाला कौन है ?"

"और कौन होगा ? इस समय जो पाटन का स्वामी बना बैठा है, वही है—त्रिभुवनपाल सोलंकी।"

सब एक साथ चौंक पड़े।

विश्वपाल बोला, "वह छोकरा क्या करेगा ?"

"अब वह छोकरा नहीं है। महारानीजी को, मुंजाल मेहता को या और किसी को क्या राज्य करना आता है, जो वह एकछत्र राजा बना हुआ कर रहा है। उसने एक सन्देश भेजा है, कह सुनाऊँ ? कहते हुए मुरारपाल ने विजयपाल की ओर देखा।

रानी ने कहा, "हाँ कह दो। यहाँ कोई भी पराया नहीं है।,'

त्रिभुवनपाल ने कहलाया है कि मीनलदेवी के जीवित रहते कुमार जयदेव पाटन में पैर नहीं रख सकते। या तो मीनलदेवी रहेंगी या पाटन रहेगा।'

एक क्षण को सब एक दूसरे की ओर देखने लगे। रानी ने बड़ी मुश्किल से अपने को सँभाला, "क्यों, क्या सभी की बुद्धि भ्रष्ट हो गई ?"

"महारानीजी, क्षमा कीजियेगा, किन्तु पिछले तीन दिनों से मुझे पाटन में जो नये अनुभव हुए हैं, वैसे आज तक किसी को नहीं हुए होंगे।" और उसने सारी कथा सुना दी। रानी बहुत निराश हो गयी। इन विपत्तियों को उसने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था। आज वह पाटन के बुद्धि-चातुर्य के आगे नत हो गयी। मुरारपाल द्वार प्रसन्न की कुछ चर्चा आने पर रानी ने पूछा. "कौन ? मेरी भतीजी प्रसन्न ?"

"जी हाँ। अब तो वह भी वीरांगना बन गयी है।"

सुनकर रानी को बहुत आश्चर्य हुआ। बातें समाप्त होने के बाद सब लोग फिर सोचने लगे कि क्या किया जाय ? अन्त में लोगों की समझ में थोड़ा-बहुत यही आया कि किसी प्रकार पाटनवासियों को सन्तुष्ट करके आधीन करना चाहिए।

सब लोगों के बिदा होने के पश्चात् रानी ने मुरारपाल से द्वार न खोलने का कारण पूछा। मुरारपाल ने अपने पकड़े जाने का बहाना बनाकर बात

टाल दी। रानी पूछने लगी, "अच्छा मुरारपाल, त्रिभुवनपाल और प्रसन्न में बड़ा प्यार था, आजकल क्या ढंग है ?"

मूर्ख-सा मुरारपाल बोला, "मुझे कुछ नहीं मालूम, लेकिन वैसा ही होगा।" उसे कल की चाबुक की चोट याद हो आयी।

"यदि प्रसन्न द्वारा कोशिश करायी जाय तो त्रिभुवनपाल मान जायेगा ?"

मुरारपाल ने निराशा से सिर हिला दिया। रानी की आशायें नष्ट हो जाने के डर से उसने स्पष्ट कारण नहीं बताया।

मुरारपाल तुम घबरा गये हो। मैं अभी विनयचन्द्र को भेजकर पाटन से कुछ दूर पर प्रसन्न को बुलवाती हूं।"

"जैसी आपकी इच्छा। लेकिन, मुझे इसमें कोई सार नहीं दीखता।"

"देख लेंगे।" रानी डूबते हुए व्यक्ति की आशा की तरह हर तरह से अपने को सांत्वना दे रही थी।

दोपहर बाद विनयचन्द्र पच्चीस सवार साथ लेकर पाटन की ओर रवाना हुआ और मोंढेरी द्वार पर जा पहुंचा। वहां थोड़ी देर बाद खेंगारसिंह से मिला और कहा, "मीनलदेवी प्रसन्नमुखी से बात करना चाहती है।"

वहुत देर की प्रतीक्षा के बाद त्रिभुवन आया और उसने विनयचन्द्र की बात स्वीकार कर ली। विश्वास हुआ कि दोनों ओर से पच्चीस-पच्चीस निशस्त्र सिपाहियों को साथ लेकर बिल्कुल बीच मे क्षेमराजदेव की बावड़ी के पास मीनलदेवी और प्रसन्न की भेंट होगी।

मीनलदेवी का यह निश्चय दृढ़ होता जा रहा था, कि पाटन के साथ भूलकर भी लड़ाई न की जाय। उसे दबाकर वहकाकर ही बस में करना उत्तम होगा। इसका कारण यह था कि सारे गुजरात में उसके पक्ष के दो ही नगर थे—पाटन और कर्णावती। मोंढेरा की ओर उसके अनेक दूत भेजने पर भी कोई उत्तर नहीं आया था। ऐसी स्थिति में पाटन में घेरा डालने पर देश भर उसका शत्रु हो जायेगा। दूसरा कारण यह था कि मीनलदेवी को यह ठीक मालूम नहीं था कि चन्द्रावती के मुखिया पाटन के साथ बैर करने को तैयार हैं या नहीं। चन्द्रावती का सेनापति विजयपाल इस समय घेरा डालने को अवश्य तैयार था, पर कल किसी भी समय वह अपनी बात से हट सकता था और यह भी निश्चित नहीं था कि घेरा डालने पर वह जीतेगा ही।

इस समय रानी या तो घेरा डालती या अपना मान बनाये रखती। उसने दूसरा ही मार्ग ग्रहण किया।

: ३८ :

दूसरी सुबह पाटन और विखराट के मध्य क्षेमराजदेव की बावड़ी के पास एक मन्दिर में पाटन की पदच्युत रानी बैठी थी। उसके माथे पर चिन्ता की गहरी रेखाएं पड़ी थीं। लेकिन इस समय भी उसके चेहरे पर अभिमान और अधिकार झलक रहा था। अपनी भतीजी की प्रतीक्षा करना उसे बहुत बुरा लग रहा था, पर उसे जैसे भी हो, काबू में करना था। मुरारपाल के यह शब्द उसके कानों में अब भी भयंकर रूप से गूंज रहे थे कि या तो मीनलदेवी रहेंगी या पाटन! क्या इतने सालों के बाद वह पाटन छोड़ दे?

इसी समय चोबदार समर ने उसके विचारों में बाधा डाली, "माताजी, ऐसा दीखता है कि पाटन के लोग आ पहुंचे हैं।"

"अच्छा है। प्रसन्न को आते ही अन्दर भेज देना।"

"जो आज्ञा।" समर चला गया।

थोड़ी देर बाद रानी को घोड़ों की टापें सुनाई दीं। घोड़ों को रुकते सुना, पैंजनियों की झंकार भी गूंजी और समर के साथ प्रसन्न अन्दर आयी। मीनलदेवी ने कोशिश करके अपने चेहरे पर से चिन्ता की रेखाएं दूर कीं और अधिकार-सूचक गम्भीरता अपना ली। रौब के साथ वह आगे बढ़ी और उसका मुख कुछ फीका पड़ गया। उसकी आशा के विपरीत प्रसन्न अब निर्भय और गर्वीली लग रही थी। प्रसन्न उसके पैरों पर झुकी, "कैसी हो बुआजी? तबीयत कुछ अस्वस्थ-सी दिखाई देती है?"

"नहीं। यात्रा से थोड़ी थकान आ गई है।"

प्रसन्न के बोलने के ढंग को रानी खून का घूंट पीकर सह गयी। आज उलटे उसे प्रसन्न को रिझाना पड़ रहा था, बोली, "तुम कैसी हो, प्रसन्न? आओ बैठो।" रानी ने समर की ओर देखा, वह बाहर चला गया।

"जी, मजे में हूं। कहिए, मुझे इस समय कैसे बुलाया?" प्रसन्न यों

साहसी थी, किन्तु मीनलदेवी से बात करते घबरा जाती थी। उसने जल्दी से काम की बात छेड़ दी।

"बेटी, मैंने तुझे अपनी समझकर बुलाया है। पाटन वालों ने ये क्या नया बखेड़ा खड़ा कर दिया है? मेरे लिए तो त्रिभुवनपाल मेरे पुत्र के समान हैं। फिर क्यों वे कपूत बन मुझे तंग करना चाहते हैं और इससे उन्हें क्या मिलेगा?"

प्रसन्न ने रानी की चतुरता की दाद दी, "बुआजी, इसके लिए आप मुझसे कह रही हैं? मुझसे कहने से क्या लाभ होगा?"

"प्रसन्न, मैं जानना चाहती हूँ कि पाटन में क्या हो रहा है और क्यों वहाँ के लोग व्यर्थ ही उत्तेजित हो रहे हैं? मैं समझ तो लूं वे क्या चाहते हैं?"

प्रसन्न निरुत्तर रही। रानी ने फिर कहा, "कोई कुछ कहता नहीं, कह-लाता नहीं, फिर भी पागलों का-सा व्यवहार किया जा रहा है। यह तो गनी-मत है कि अभी तक किसी को यह पता नहीं है, नहीं तो पाटन की कितनी हँसी होती!"

प्रसन्न न चाहते हुए भी मीनलदेवी के शब्दों के जादू से घिरने लगी। उनके विकराल नेत्र, रौबीली आवाज प्रसन्न के आस-पास चक्कर लगाने लगे। बचती-सी वह बोली, "मुझसे यह सब क्यों कहती हैं? आपने ही तो सारा उपद्रव खड़ा किया है।"

"मैंने? कोई बताए तो? तुम्हारे राज्य के लिए, देश की शान्ति के लिए मैं शोक और सूतक त्याग कर बाहर निकली। कोई जानता है कि अगर मैं बाहर न निकलती तो मुंजाल और मंडलाधिकारी लड़ मरते और मेरे न निक-लने से आज यहाँ मंडलाधिकारी की सेना पड़ी होती?"

"यह कोई नहीं मानता, बुआजी। लोगों का तो कहना है, कि आपने पराई सेना को बुलवाया और मंडलाधिकारीजी को मरवाया।"

"चन्द्रावती के लोग तुम्हारे लिए पराये हैं, क्यों? और मंडलाधिकारी को मैं क्यों मरवाती? मैंने तो सुना है कि रुद्रमहालय जलने से वह वहाँ मर गया।"

"बुआजी, आपसे बात करने में मैं जीत नहीं सकती। आप मुझे यहाँ बुलाने का कारण बता दीजिए।" प्रसन्न बात जल्दी समाप्त कर देना चाहती थी।

"बेटी, मैंने तुझे इसलिए बुलाया है कि तू बीच में पड़कर मेरे और पाटन के बीच के विरोध-भाव को दूर कर दे। मैं देश की यह दशा नहीं सह सकती।"

"यह मेरे हाथ की बात नहीं है?"

"है। मैंने सुना है कि त्रिभुवनपाल सारी सत्ता अपने हाथ में ले बैठा है।"

प्रसन्न बोली, "वह सत्ता सारे पाटनवासियों ने स्वयं सौंपी है।"

मीनलदेवी कुनमुनाती हुई बोली, "यही सही और त्रिभुवन को वश में करना तेरे हाथ में है।"

प्रसन्न हँसी, "आपने यह कैसे जान लिया कि वे मेरी बात मानेंगे। उनकी माता को पति से अलग रख जीवन-भर आपने बन्दी बनाकर, उनसे माँ का सुख छीन लिया और अन्त में उनके माता-पिता को जलवा डाला। अब वे क्यों आपकी बात मानेंगे?"

"प्रसन्न एक बात सारा संसार मानता है।"

"क्या?"

धीमे से रानी ने कहा, "अपनी प्रियतमा का कहा हुआ।"

प्रसन्न, चौंकी और अब बात समझी, "बुआजी, सच्ची प्रियतमा पति के कार्य में बाधा नहीं बनती।"

"यह बाधा नहीं है। त्रिभुवन को क्या चाहिए? जा, मैं अपनी इच्छा से तुझे उसके साथ ब्याह दूंगी। बस, अब तो कुछ बाकी नहीं रह जाता?"

प्रसन्न ठठाकर हँस पड़ी, "बुआजी, पिछले तीन दिनों में तीन युग बीत गये हैं, यह भी सोचा है?"

"क्या मतलब?"

"अब प्रसन्न पहले वाली प्रसन्न नहीं रही। मैं उसी दिन से बदल गयी हूँ, जब से आप मुझे नशा खिलाकर साथ ले गयी थीं। आप चाहें, न चाहें, मैं त्रिभुवनपाल को वरूँगी, बल्कि मैंने वर लिया है।" कहते-कहते उसके गाल अरुण हो गये। वह हँसने लगी।

मीनलदेवी की भवें तन गयीं, लेकिन कृत्रिम हँसी हंसकर उसने कहा, "बेटी, अब तो पहले तुझे मेरा काम करना चाहिए। तू जो कहेगी, मैं त्रिभुवन

को दूंगी ।"

"बुआजी, इस अवस्था में मुझे कुछ कहना न चाहिए, फिर भी आप मुझे उत्तेजित करती हैं तो कहना ही पड़ रहा है कि त्रिभुवनपाल को देने के योग्य आपके पास कुछ भी नहीं है। उलटे वे ही आपको कुछ दे देंगे।"

रानी ने बड़ी मुश्किल से गुस्सा रोका, "ठीक है। लेकिन तू भी तो कुछ कर, जिससे देश भर में नाम हो जाय।"

प्रसन्न ने सिर हिलाया, " झे नाम नहीं चाहिए। लेकिन आप जो चाहती हैं, वह नहीं हो सकता।"

रानी ने निराशा को व्यर्थ छिपाने की चेष्टा की, "क्यों ?"

"त्रिभुवनपाल ने प्रतिज्ञा की है कि पाटन में या तो आप नहीं या वे नहीं।"

रानी को कंपकँपी आ गयी, "और तूने—?"

"जहाँ मेरे स्वामी, वहीं मैं।"

रानी ने अधिकारपूर्ण स्वर में कहा, "लड़की, तुझे इस प्रतिज्ञा के अर्थ का ज्ञान है।"

"हाँ ! प्रतिज्ञा करने वाले ने ही मुझे बताया है।"

"जानती है, जहाँ बड़े मंडलाधिकारी का पता न लगा, वहाँ तेरे त्रिभुवन का—"

"यह नहीं सुना कि बाप सेर तो बेटा सवा सेर ?"

"तू पछतायेगी। तू समझती है कि मीनलदेवी की शक्ति कमजोर पड़ गयी है, पर यह तेरी भूल है। यह विखराट में पड़ी हुई सेना देखी ? कुछ दिनों में लाट से भी सेना आ रही है। पन्द्रह दिनों के अन्दर ही पाटन के कोट की एक ईंट का भी पता न चलेगा।"

प्रसन्न को भय हुआ, फिर भी उसने साहस से कहा, "बुआजी, यवनों की तारों जितनी सेना के सामने भी कोट खड़ा रहा।"

"अच्छी बात है। अभी समय है। कल तक विचार करके मुझे बतला देना।"

"बुआजी, उत्तर वही आयेगा, जो आज है।"

क्रोधपूर्वक मीनलदेवी ने कहा, "तो अपनी करनी का फल भोगना।"

"ठीक है। मैं जाती हूँ। कुमार जयदेव से याद करना कहना।"

"जयदेव तो कभी से मुझे याद कर रहा है।"

अचानक एक विचार आ जाने से प्रसन्न घूमकर विनय से बोली, "बुआ जी मेरी एक बात मानोगी?"

"क्या?"

"कुमार जयदेव को मेरे साथ भेज दीजिये। मैं कल प्रातः उसका पट्टाभिषेक करा दूंगी। आप रेवा-तट पर जाकर रहिये।"

मीनलदेवी ने घमण्डपूर्वक कहा, "लड़की जरा समझकर बात मुंह से निकाल। मीनलदेवी रहेगी तो राजमाता बनकर, नहीं तो मैं नष्ट हो जाऊं या पाटन मिट जाय, इसकी मुझे परवाह नहीं।"

"ठीक है। जैसी आपकी इच्छा।" प्रसन्न गौरव के साथ चल दी।

न जाने कब तक मीनलदेवी दरवाजे की ओर देखती रही, फिर बड़बड़ायी, "हे भगवान, यह क्या होने जा रहा है। ये जरा-जरा से बालक भी ऐसे हो गये! मेरी ओर कोई देखता भी नहीं।"

बड़ी देर विचारों में डूबकर वह उठी और समरसेन को बुलाकर लौट चलने का आदेश देने लगी।

: ३९ :

रानी खिखराहट लौटी तो बहुत चिन्तित और परेशान थी। प्रसन्न के आगे उसकी कुछ न चली। अब क्या किया जाय? अभी और कौन-सा अपमान सहना शेष है? अपने को संयत रख उसने बड़ी शान्ति से विजयपाल आदि के प्रश्नों का उत्तर दिया, "मैंने प्रसन्न को समझा दिया है। दो-एक दिन में कोई उत्तर आयेगा।"

लेकिन जैसा उत्तर चाहिए था वैसा नहीं आया। रानी का हृदय भारी हो गया। वह एकान्त में सिर पर हाथ रख कर रोने लगी।

तभी कुमार जयदेव आया और कहने लगा, "माताजी, वहाँ जाकर क्या

कर आयीं ? हम पाटन कब चलेंगे ?"

मीनलदेवी बेटे को गले से लगाते हुए बोली, "चलेंगे बेटा, चलेंगे। चिन्ता मत करो। अभी कुछ विलम्ब है। जाओ, तुम आराम से सो जाओ। सबेरे घोड़े पर घूम आये हो, थक गये होंगे।"

जयदेव चला गया। रानी फिर चिन्ता में डूब गयी। चारों ओर से वह कुचली जा रही थी। अभी तक उसने साहस नहीं छोड़ा था, पर अब साहस कहाँ से लाये ? पुरानी बातें उसके मस्तिष्क में घूमने लगीं। जब वह पाटन में आयी थी, सारा देश खुश हुआ था; जब जयदेव उत्पन्न हुआ तब तो देश हर्ष से पागल ही हो उठा था, फिर आज यह दुःखद परिस्थिति क्यों ? प्रश्न बड़ा मार्मिक था। रानी अपनी प्रभुता को त्याग विचार करने लगी। वह अधिकार, सत्ता और महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए चन्द्रपुर छोड़ पाटन नरेश से विवाह करने आयी थी। उसे कीर्ति, यश और इतिहास में नाम कमाना था, तथा दिखावे की नहीं, वास्तविक विजयिनी रानी बनने की आशा थी। पर आज उसे क्या मिला ? मुंजाल जैसा योग्य सेवक सदा उसके आगे-पीछे घूमता था, फिर भी यह नतीजा निकला। क्या इसीलिए कि वह किसी का विश्वास नहीं करती थी ? क्या इसीलिए कि वह जैन धर्म को प्रधानता देने की चेष्टा कर रही थी ? क्या इसीलिए कि देवप्रसाद शत्रु था ? फिर भी लोग उसका इतना आदर क्यों करते थे ? और इस समय उसके पुत्र को भगवान समझ क्यों उसकी इतनी आज्ञा का पालन कर रहे हैं ? देवप्रसाद वाली शक्ति उसमें नहीं, इसका कारण ? मुंजाल इतना घमण्डी था, फिर भी लोग उसे इतना स्नेह क्यों करते थे ? सोचते-सोचते रानी पागल-सी हो गई। सन्ध्या के समय मुरारपाल आया तब उसे कहीं सुध आयी।

मुरारपाल ने पूछा, "क्यों माता जी, कुछ सफलता मिली ?"

रानी ने सिर हिलाया।

"मैंने कहा था न आपकी भतीजी बड़ी विकट है।"

"यह तो ठीक है। लेकिन अब मुझे कुछ सलाह दो। बैठो ! मुझे तो कुछ नहीं सूझ रहा है।"

"मैं क्या सलाह दूंगा, माताजी ? मैं तो पाटन के बखेड़े को देखकर मूर्ख

बन गया हूँ। अब मैंने समझा कि पाटन गुजरात के सारे नगरों का क्यों अगुआ बना खड़ा है ?"

"क्यों ?"

'कारण कि प्रत्येक पाटनवासी के हृदय में बड़े-बड़े योद्धाओं जैसा साहस, गौरव और स्वतन्त्रता भरी है। मैं तो पाटन को मान गया हूं।"

"मुरारपाल तुम भी कटे पर नमक छिड़क रहे हो। जब पाटन मेरा था, तब किसी ने कुछ नहीं कहा, और अब सब बुद्धिमान बन गये हैं।"

"नहीं माता जी, मेरा मतलब यह नहीं है। मैं तो अपने सामने कठिनाइयाँ बता रहा हूँ।"

"साफ-साफ़ कहो। मैं पहले ही उलझन में पड़ी हूं।"

"पाटन वालों को समझाने के लिए किसी ऐसे आदमी को भेजिये जिसे वे चाहते हों। तब काम बनेगा।"

रानी खीझकर बोली, "पर उसे कहाँ से पैदा करूँ ? जो कुछ हो, तुम्हीं हो !"

"दो दिन पहले तो मैं भी काम आ सकता था, पर अब तो मैं भी निकम्मा हूँ। विश्वपाल किसी गिनती में नहीं है; शान्तु सेठ को ही जब कोई नहीं पूछता तो विनयचन्द्र की क्या चलेगी ?"

"ये सब मैं भी जानती हूं। कोई नई बात नहीं कहनी तो बस करो।"

"और मैं क्या कह सकता हूँ। आप आज्ञा दें तो मैं पाटन का घेरा डाल दूं।"

"नहीं नहीं। इससे तो बात बढ़ जायेगी और अगर हार गये तो कहीं मुंह दिखाने लायक भी नहीं रहेंगे।"

"इन सब बातों का विचार मैंने भी किया है और मुझे एक और भय है।"

"वह क्या !"

"चन्द्रावती की सेना का भी कोई भरोसा नहीं। मालूम होता है, लोगों में घबराहट पैदा हो गई है और अगर हम दस-पन्द्रह दिन और ऐसे पड़े रहे तो बहुत से सैनिक भाग जायेंगे। उनका उत्साह बहुत कम हो गया है। आज यति होता तो बहुत काम आता।"

रानी और भी घबरा गयी। उसका मुंह उतर गया।

"महारानी जी, घबराइये नहीं। विजयपाल चतुर है सो अभी समय है। मंडलाधिकारी के मर जाने से जैनों को बहुत आशा बंध गयी है। लेकिन—"

"लेकिन क्या ?"

"उनका बेटा उनसे भी ज्यादा खतरनाक है। मंडलाधिकारी तो केवल योद्धा ही थे, पर त्रिभुवनपाल में तो अपने मामा के गुण भी उतरे हैं।"

मुंजाल का नाम सुनते ही रानी के तन-बदन में आग लग गयी, भौंहों पर बल पड़ गये।

मुरारपाल कुछ समझ गया, बोला, "बुरा न मानियेगा, महारानी जी। पर यह मेरी सलाह है कि भानजे को मनाने के लिए पहले मामा को क्यों नहीं मानतीं !"

रानी ने मगरूरी से कहा, "यह बात छोड़ो मुरारपाल। अगर जियूंगी तो रानी की तरह, नहीं तो मर जाऊंगी, किन्तु द्रोहियों का मुख न ताकूंगी।"

"जैसी आपकी इच्छा।" कहकर मुरारपाल चुप हो गया।

निराश होकर रानी कुछ देर चुप रही। फिर एक विचारकर उसने कहा, "मुरारपाल, सच पूछो तो कोई भी नगर या मंडलाधिकारी हमारे साथ नहीं है।"

"चन्द्रावती के सिवाय।"

"हां ! मुरारपाल, मैं तुम पर विश्वास कर लूं ? तुम धोखा तो न दोगे ?"

"माता जी, जो कुछ कहना हो, निश्चिन्त होकर कहिये।"

धीरे से रानी ने पूछा, "मालवराज यहां से कितनी दूरी पर हैं ?"

"घोड़े से चार दिनों में पहुंच सकते हैं।"

"ठीक है। जरूरत पर वह भी काम आयेंगे।" मुरारपाल कितने पानी में है, यह भांपने के लिए ही रानी ने कहा। लेकिन बात का अर्थ समझकर मुरारपाल की भवें तन गयीं। वह खड़ा हो गया, "माता जी, मेरा धर्म आपकी सेवा में जीना और मरना है। लेकिन मैं गुर्जर हूं। मालवा के साथ अवैध सम्बन्ध होने पर मैं पल भर भी यहां खड़ा न रहूंगा।"

रानी ने दांत भींच लिए। प्रत्येक सामन्त अपनी आन का पक्का और

देश पर अभिमान रखने वाला था। रानी बात उड़ाते हुए बोली, "नहीं नहीं। मैं यह कब कहती हूँ। अच्छा, अब कल बात होगी।"

मुरारपाल चला गया। रानी सारी रात जागती रही। उसे प्रत्येक योजना निष्फल लग रही थी। अगर चन्द्रावती की सेना छिन्न-भिन्न हो गयी और त्रिभुवन ने पाटन को बन्द कर रखा, तो क्या होगा ? मुरारपाल ने भी यह जता दिया है कि मालवराज की सहायता लेने पर एक भी गुजराती खड़ा नहीं होगा। रानी को स्वयं पर तिरस्कार हो आया। राज्य था, मंत्री थे, थोड़ी-बहुत सत्ता भी थी, फिर क्यों उसने अधिक सत्ता लेने का लोभ किया; क्यों लोगों पर अविश्वास किया; क्यों मंडलाधिकारी को व्यर्थ खिझाया ! विचारों में पड़ी हुई रानी के समक्ष मुंजाल की मूर्ति नाच उठी। उसे याद आया, मुंजाल प्रारम्भ से ही उसका दाहिना हाथ रहा; मुंजाल ने ही उसकी और महाराज की अनबन को दूर कर उन्हें फिर से मिलाया था, मुंजाल के ही कारण उसे विशेष सुविधा और आराम मिले हैं। रानी यह सब सोचते-सोचते काँप उठी, आँखें पागल-सी गयीं, सुध ठिकाने नहीं मालूम दी।

उसने छाती पर हाथ रखा। हृदय से आवाज आयी, मुंजाल ! मुंजाल !" रानी उठ खड़ी हुई। उसे वास्तविकता का भान हुआ। यह याद आया कि मुंजाल बन्दी है। अपने को वह धिक्कारने लगी। वह मन-ही-मन कह उठी, "स्वामी ! कर्णदेव ! प्रभु !" पास बिछे पलंग पर उसने जयदेय का मुख देखा और उसे उस मुख पर कुछ अनोखापन और अपरिचितता-सी मालूम पड़ी। तत्काल ही उसके आगे त्रिभुवन का मुख आ गया और उसका चेहरा गीला हो उठा। त्रिभुवन के मुख में उसे किसी और नर-रत्न की रेखायें दीख रही थीं। वह सिर पर हाथ मारने लगी। यह उसे क्या हो गया है ? क्यों उसका मन मुंजाल की रट लगाये है, क्यों उसके नेत्र मुंजाल को देख रहे हैं ? क्यों कान मुंजाल के शब्द ही सुन रहे हैं ! क्या मुंजाल के बाल्य-काल की सहेली और गुजरात की रानी एक थी ? कितना ही अस्वीकार करने पर भी रानी के अन्तर से 'हाँ' की ध्वनि आती रही।

दूसरी सुबह रानी अपने पुराने स्वरूप को त्याग कर एक नम्र और साधारण स्त्री के रूप में दिखाई पड़ी। मुख पर स्नेह और मधुरता छायी हुई

थी। उसकी दृढ़ता समाप्त हो गयी थी और वहाँ आँसुओं ने राज्य कर लिया था। जब समरसेन आया तो रानी के मुख पर आँसुओं के चिन्ह स्पष्ट दीख रहे थे। बूढ़ा सेवक कुछ देर तक चुप रह सिर हिलाता हुआ बोला, "माँ, चिन्ता न करो। सोमनाथ की कृपा से सबका भला होगा।"

"भगवान जो करेगा, सो ठीक है।"

"माँ, मैं तो तुच्छ आदमी हूं, मुझमें ज्यादा अक्ल भी नहीं है। फिर भी मेरी एक सलाह मानेगी?"

"ज़रूर कहो! तुम जैसा स्वामी-भक्त कहाँ है आजकल?"

"मुंजाल मेहता से क्यों नहीं मिलतीं? वे रास्ता बतलायेंगे।"

जैसे मीनलदेवी के घाव को किसी ने छेड़ दिया हो। सभी मुंजाल का नाम ले रहे हैं। आखिर बात क्या है? धड़कते हुए हृदय से बोली, "मैं भी यही सोच रही हूं समर, लेकिन वह सहायता नहीं करेगा।"

मुंजाल मेहता चाहे जैसे हों, पर ऐसा नहीं करेंगे।" तभी कुमार जयदेव आ गया और बात अधूरी रह गयी।

कुमार ने पूछा, "माँ, तुम रो क्यों रही हो?"

मीनलदेवी ने लड़के को अपने पास खींच लिया, "कुछ नहीं बेटा। जब तू राजा बनेगा तो अपनी माँ को याद करेगा?"

"माँ, जयसिंह महाराज की आन जहाँ-जहाँ फिरेगी, वहाँ-वहाँ मीनलदेवी की पूजा होगी।" बाल राजा ने ऐसे कहा जैसे अनजाने इतिहास को आज्ञा दे रहा हो।

'तेरे मुँह में मीठा। अच्छा बेटा, अब घूमने जाओ। समर, किसी को महाराज के साथ भेज।"

जयदेव समर के साथ जाते-जाते बोला, "माँ, मैं यहाँ से ऊब गया हूं, अब पाटन जाऊँगा।"

रानी का अभिमान अभी उसे मुंजाल से सहायता माँगने व उसके आगे झुकने को रोक रहा था। इसी उधेड़-बुन में पड़े साँझ हो गयी और विजयपाल आकर उससे बातें करने लगा।

"महारानीजी. कई सामन्त रात में अपने सैनिकों के साथ भाग गये हैं और बहुत से वल्लभसेन से जा मिले हैं। अब आप कहें तो पाटन पर घेरा

डाला जाय या लौटकर वल्लभसेन से लड़ा जाय। परन्तु अब जल्दी ही कोई कदम उटाना चाहिए।"

कल सायंकाल से पहले ही मैं कोई निश्चय कर लूंगी, तब तुम्हें बताऊँगी।"

"अच्छी बात है।" विजयपाल चला गया।

रानी सोचने लगी, निश्चय करने में अब देर नहीं की जा सकती। शान्तिपूर्बक वह सारे उपाय सोचने लगी। पाटन पर घेरा डालने या मालवा से मिल जाने से विजय हो सकती है। किन्तू हार जाने पर तो जयदेव का सिंहासन भी हाथ से चला जायेगा। अचानक उसे प्रसन्न का कहना याद आया—'रेवा तट पर जाकर रहो।' तब क्या सचमुच वह रेवा-तट पर चली जाय? मर जाऊँ जिससे कुल रक्षा हो सके? लेकिन क्या जीवित नहीं रहा जा सकता? और फिर एक बार मीनलदेवी के स्वार्थ ने मुंजाल को ही अपनाने की सोची। वह मुंजाल से फौरन मिलने के लिए पागल हो उठी। उसने समरसेन को आवाज़ दी।

समरसेन रानी में अचानक यह परिवर्तन देख चौंक गया। रानी ने कहा, "समर मुंजाल मेहता को मेरे पास भेजो।"

समर प्रसन्न होकर आज्ञा-पालन के लिए चला गया।

: ४० :

छाती पर हाथ रख मीनलदेवी उत्तुंग हृदय को शान्त करने का प्रयास करने लगी। सब कुछ भूल वह यही सोच रही थी कि उसका मुंजाल उससे मिलने आ रहा है। बहुत देर वह योंही खड़ी रहीं। क्या 'वह' न आयेगा? आयेगा तो उससे कैसे बात होगी? किसी के पैरों की आहट आयी। वह अपने परिचित का अन्दाज़ा लगाने लगी। परन्तु आहट निकल गयी और वह निराश हो गयी। तभी, दूसरी आहट आयी। समरसेन अन्दर आकर बोला, "माताजी, मुंजाल मेहता आ गये हैं। बाहर खड़े हैं।"

"अन्दर भेज दो और जब तक मैं न कहूं, किसी को अन्दर मत आने देना।"

"जो आज्ञा।" कहकर समर गया और मुंजाल को भीतर ले आया। फिर स्वयं बाहर जाकर द्वार सावधानी से बन्द किया और वहीं खड़ा हो गया।

मुंजाल के हाथ-पैर से बेड़ियाँ निकाल दी गयी थीं। उसकी चाल पहले जैसी दृढ़ और अधिकारपूर्ण थी। मस्तिष्क पर पहले से भी अधिक गर्व झलक रहा था। केवल मुंह म्लान था। होठ भयंकर दृढ़ता से दबे हुए थे। आँखों में नाराज़ी का भाव था। वह सिर झुकाकर खड़ा हो गया।

रानी उलझन में पड़ गयी। अब कैसे बात की जाय? वह सोच रही थी कि वह बोलेगा, परन्तु उसकी चुप्पी से रानी को धक्का-सा लगा। थोड़ी देर यों ही देखने के बाद वह बोली, "मुंजाल, मैं किस तरह बात शुरू करूँ? मैंने तुम्हें बहुत दुःख दिया है, क्षमा कर दोगे?"

मुंजाल ने सिर ऊपर कर देखा, कुछ कहा नहीं।

"तुम मेरी ओर तिरस्कार से देख रहे हो? देखो। आज मेरा घमंड चूर हो गया है; मैं अपनी नादानी समझ रही हूँ और मेरी गयी हुई सुबुद्धि लौट आयी है। मैं तुम्हारे तिरस्कार की पात्र हूँ, किन्तु क्या मुझे क्षमा नहीं करोगे?"

मुंजाल ज्यों-का-त्यों खड़ा रहा।

"क्या देख रहे हो? क्या सोच रहे हो? बोलते क्यों नहीं?"

"मैं सुन रहा हूँ।" उसका प्रभावशाली स्वर नरम पड़ गया था।

"मुंजाल तुम बुद्धिमान हो, तुम्हें बनाना फिजूल है। तुम यह मान लो कि तुम्हें समझाने की शक्ति मेरे अन्दर नहीं है। तुम्हारे समान पाटन में कोई नहीं है। तुम्हारे हाथ में मेरा राज और मेरे लड़के का मुकुट है। तुम जाकर पाटन को मना आओ।"

"मुझ बन्दी को क्या मालूम कि पाटन में क्या हो रहा है?"

"पाटन से मैं बाहर हुई कि जनता ने हंगामा मचा दिया; शान्तु सेठ के हाथ से द्वारों की कुञ्जियाँ ले लीं और तुम्हारा भानजा त्रिभुवनपाल नगर का राजा बन गया। इधर मंडुकेश्वर का रुद्रमहालय जल गया और उसमें देवप्रसाद और हंसा जल मरे।"

"हंसा ?"

"हाँ, हंसा। मैंने मंडलाधिकारी के पास भेज दिया था। लेकिन त्रिभुवन की धारणा है कि मैंने उसके माता-पिता को मरवा डाला और उसने प्रतिज्ञा कर रखी है—"

मीनलदेवी रुककर 'क्या' की प्रतिक्षा करने लगी। परन्तु कोई प्रश्न न होने पर वह आगे बोली, "कि या तो पाटन में मीनल ही रहेगी या पाटन ही रहेगा।"

मुंजाल निर्विकार खड़ा था। वह फिर कहने लगी, "इस सयय चन्द्रावती की सेना दो ओर से फंसी हुई है। एक ओर वल्लभसेन, देवप्रसाद की सेना लेकर खड़ा है और उधर त्रिभुवन पाटन के द्वार बन्द किये बैठा है। युद्ध की ठानती हूँ, तो सम्भव है, जयदेव का सिंहासन बिल्कुल ही चला जाय। किन्तु वह कैसे हो ?"

मुंजाल अब भी मौन था।

"कहते क्यों नहीं कि तुम्हारी क्या सलाह है ?"

"बन्दियों का क्या परामर्श ?"

"मुंजाल, तुम मेरी एक भूल को बार-बार दोहराते रहोगे। मैं तो अपनी मूर्खता को पिछले तीन दिनों से बहुत महसूस कर रही हूँ।" कहकर रानी सिर पर हाथ रखे चौकी पर बैठ गयी, "मुंजाल, मैंने तुम्हारी बात नहीं मानी, इसके लिए मैं बुरी तरह पछता रही हूं। तुम सोचते होंगे, मैं ढोंग कर रही हूँ। लेकिन नहीं, मैंने जान लिया कि जनता के जिस विश्वास को तुमने और मण्डलाधिकारी ने प्राप्त कर लिया, मैं उसे क्यों न कर सकी।"

अब तक रानी ने बहुत कुछ मन में रख छोड़ा था, पर अब सारी अनुभूतियां उसे कचोटने लगीं और वह कहती गयी, "तुम्हारी अपेक्षा मैं अपने को ज्यादा बुद्धिमान सोचती थी। लेकिन तुम दोनों, गुण में, दोष में जानता के आदर्श थ और इसलिए उनके प्रेम-पात्र बने रहे। मैं तुम्हारे आगे पराजित हो गयी हूँ। बहुत बाद में मैंने यह जाना कि निरंकुश शासन एक कोरा सपना है।"

मुंजाल ने तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा, "ऐसा ?"

"हाँ, मैं बाज़ी हार गई हूँ। मेरा सिंहासन अस्त-व्यस्त हो गया है। सुधारना अब तुम्हारे हाथ में है। किसी भी तरह अपने भानजे को समझाओ। मैं सब कुछ देने को तैयार हूँ। केवल मेरे बेटे के मुकुट को अमर-अटल रखो और मुझे राजमाता के रूप में पाटन में रहने दो।"

मुंजाल ने लापरवाही से पूछा, "त्रिभुवन क्या कहता है?"

"न जाने वह क्या-क्या कह रहा है। मेरी जरा-सी भतीजी मुझसे आकर कह गई है कि मैं रेवा-तट पर जाकर रहूँ तो वह जयदेव का पट्टाभिषेक करा देगी। आज मैं अशक्त हूँ नहीं तो उस लड़की और त्रिभुवन की जीभ खिंचवा लेती। सुना है, त्रिभुवन ने प्रतिज्ञा की है कि या तो वह पाटन में न होगा या मैं न हूँगी। अब मुझे कुछ रास्ता सुझाओ। तुम्हारी बुद्धि कहाँ चली गयी?"

मुंजाल चिढ़कर बोला, "जब तक मैं मन्त्री था, मुझमें बुद्धि थी। अब नहीं है।"

"मुंजाल, क्या कह रहे हो? तुम्हारे सिवाय मुझे और कोई सहारा नहीं है। आज भी नहीं है और न पहले था। बचपन में तुम कहा करते थे कि मैं नहीं समझ पाता कि मैं क्या नहीं कर सकता। तुम्हारी बुद्धि काम न करे, ऐसा सम्भव नहीं है।"

"हाँ, मैं सब कुछ कर सका। पत्नी को मरने दिया, बहन को मार डाला, एक तरह से बहनोई को भी मार दिया; नगर का गला घोंट दिया। लेकिन अब भानजे को मार डालने की बुद्धि नहीं बची है।"

"तब मैं मर जाऊँ? मैं इन सब की जड़ हूँ। मैं मर जाऊँगी तो अग्निदेव तो तिरस्कार नहीं करेंगे। लेकिन उनकी गोद में जाने से पहले सोचती हूँ, कोई उपाय है? तुम कुछ बताओगे?"

मुंजाल ने कठोर स्वर में कहा, "मृतक और जीवित के बीच मुझे तो कोई अन्तर नहीं दिखाई देता।"

"तुम्हें कैसे दीखेगा? मैं तुम्हारी शरण में आयी हूँ, इसीलिए जो कहोगे ठीक ही होगा। लेकिन कोई रास्ता बताओ।"

मुंजाल तिरस्कार से बोला, "ईश्वर के आधीन हो जाओ।"

"मैं मर जाऊं और बेटे के हाथ से राज्य को चला जाने दूं?"

मुंजाल भयंकर हँसी हंसा, "योगमाया जो ठहरीं और सोलंकी कुल का उच्छेद करने के लिए जो पैदा हुई हो।"

"हाँ, मैं तो इसीलिए पैदा हुई हूं। तुम क्यों बोलोगे? एक सोलंकी जायेगा, दूसरा आ जायेगा। तुम्हारा तो भानजा चक्रवर्ती होगा।"

मुंजाल ने संक्षेप में बात समाप्त कर दी, "दुनिया की चढ़ती-गिरती से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं।"

"तब, तुम कुछ न करोगे? क्या इन पन्द्रह सालों के बाद कुछ नहीं करोगे? मुंजाल?"

उत्तर में मुंजाल कठोर रूप से हँस पड़ा। रानी बोली, "हँसो, खब हंसो। मेरे कहने का तुम पर कुछ भी असर नहीं होता। क्या एक बार भी क्षमा नहीं करोगे? अब, तुम्हारे कहे बिना एक पैर भी कहीं नहीं रखूंगी। लेकिन अब तो रास्ता बताओ।"

"मैं यह धन्धा छोड़ चुका हूं।"

"तुम्हें जरा भी दया नहीं आती? मैं अपने अपराधों के कारण कृतघ्न बनी खड़ी हूं। तुम कहो तो तुम्हारे पैर छू लूं?" रानी अपनी बातों को निष्फल जाते देख ज्यादा से ज्यादा प्रयत्न कर रही थी और अपने अभिमान को भूल चुकी थी। वह अनुभवहीन, कृत्रिमतारहित, पन्द्रह साल पहले की मीनल बन गई। उसने हाथ जोड़ लिये।

"रानी, इसके अतिरिक्त कुछ और नहीं कहना है तो मुझे छुट्टी दे दो। मैं कुछ नहीं कर सकता। आपके हाथों बन्दी हो जाने वाले दिन से मैं मुंजाल नहीं रहा।"

रानी एकदम उठकर मुंजाल के सामने आ खड़ी हुई, फिर वही बात! मेरे अपराध के लिए मुझे मार डालो। मुझे पाटन ले चलो तो फिर चाहो तो मुझ पर आरी चला देना। बार-बार वही बात मुझे न कहो। तुम कह रहे हो, मैं मर जाऊं? क्या यही तुम्हारे अन्तिम शब्द हैं? सचमुच क्या इसके सिवाय दूसरा मार्ग नहीं रहा। लेकिन, तेंतीस वर्ष की अवस्था में मरना भारी-सा लगता है।"

मुंजाल ने क्रूर शान्ति से कहा, "सेठानी पच्चीस वर्ष की अवस्था में चली

गयी और हंसा तीस वर्ष की अवस्था में।"

रानी ने जोर से सिर पीट लिया, "हाँ! एक भाग्यवान बन गयी कि मुंजाल जैसे पति के हाथ से अग्नि-संस्कार पाया; दूसरी भी भाग्यवान बनी कि मंडलाधिकारी जैसे महापुरुष के हाथों में प्राण त्यागे। भाग्य तो मेरे फूटे हैं जिसके न कोई साथ आयेगा और न पीछे रोयेगा। मेरा कैसा दुर्भाग्य था कि पाटन के नाम से लुभाकर मैं यहाँ आयी। यह भूमि तो जिसे चाहे, उसे खा लेती है।"

"रानी मुझे चाहे जितना दोष दे लो पर मेरी माता को दोष न देना।"

रानी विलाप करती हुई बोली, "क्यों न दूं? तुमने चन्द्रपुर आकर इस भूमि की प्रशंसा न की होती तो मैं यहाँ पैर भी न रखती।"

मुंजाल ने सिर और ऊँचा किया, "अपनी जन्मभूमि का यशोगान करना मेरा धर्म है। इसके समान भूमि मिलना तो स्वर्ग में भी कठिन है। तुम अपनी गलती का दोष दूसरे को क्यों दे रही हो?"

"जो कहो। मैं हठ नहीं करूंगी। इस भूमि के स्वामी के पीछे कल मैं प्रातःकाल सती हो जाऊँगी। मेरे लिए एक यही रास्ता है। गौरव खोकर जीवित नहीं रहना चाहती। क्या पता था, यह दिन भी देखना पड़ेगा।"

रानी रोते-रोते हिचकियाँ लेने लगी, बोली, "मुंजाल, अब तो जरा भीगी आँखों से देखो। तुम्हारी यह कठोर और तिरस्कारपूर्ण दृष्टि मेरा हृदय चीर रही है। मैं तुमसे कुछ नहीं कहती, कुछ नहीं माँगती। क्या दो बातें भी मुझसे नहीं कहोगे? मैंने कभी नहीं सोचा था कि तुम मेरे प्रति ऐसे बन जाओगे।"

मुंजाल सिर झुकाये मौन खड़ा रहा। रानी ने कहा, "क्षण भर के लिए तो भूतकाल को भूल जाओ। तुम नाराज हो तो मेरे दो थप्पड़ लगा लो। मैं इस समय चन्द्रपुर की राजकुमारी नहीं हूँ, केवल मीनल हूँ। पन्द्रह वर्ष पहले तुम्हें देखकर पागल बन जाने वाली मीनल। तुम वे दिन भूल गये, जब तुम्हारी बातों पर लुभाकर मैं गुजरात के लिए पागल हो गयी थी? तुम कैसे पाटन की लीला का वर्णन करते थे, मुझे एक-एक शब्द याद है। मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, मुंजाल एक क्षण के लिए सब भूल जाओ और एक समय की तरह मेरे पहले जैसे ही बन जाओ। आज पन्द्रह साल पहले की सारी याद मुझे

ताजा हो गयी है।" कहते-कहते उद्वेगवश रानी पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

मुंजाल आगे बढ़ उसे थामने आया, फिर जरा रुक, तनकर खड़ा हो गया। दुःख में पिघली हुई आवाज में उसने कहा, "यह रोना-धोना किस बात का, मीनलदेवी ? बीती बातों को याद करने से लाभ ? इस समय तुम कर्ण-देव महाराज की विधवा रानी हो।"

"ठीक कहते हो, मुंजाल। मरते-मरते भी सच्चे हृदय की उमंगों को प्रकट करने का मुझे क्या अधिकार है ? मैं पहले से ही जूठी हूँ। तुम्हारे देश में आने को, तुम्हारे पास आने को, मैंने पराया हाथ स्वीकार किया। अब मेरा अपने हृदय के साथ क्या सम्बन्ध रह गया है ? जिसका मन और वाणी ही जीवन भर अशुद्ध रहा हो, उसे मरने पर भी क्या सुख मिलेगा।"

"मेरी बात का विपरीत अर्थ न लगावें। लेकिन मृतक प्रसंगों को दोहराने से लाभ ?"

"मुझे इस समय लाभ की चिन्ता नहीं है। जो कुछ हूँ सो हूँ, लेकिन मुंजाल" रानी पागल-सी बनकर बोली, "मेरे मरने से पहले एक बार तो हँसो। मैं तुम्हारा हंसता मुख देखकर मरना चाहती हूँ। तुम मुझसे पुराने वैर का बदला ले रहे हो। अपने विवाह के दिन मैंने तुम्हें ठुकरा दिया, उस दिन मैंने तुमसे कहा था कि अब मैं गुजरात की रानी बन गयी, तुम्हारी माता बनी। मैंने तुमसे कहा था कि हमें क्षुद्र वासनाओं को त्याग कर गुजरात का स्तम्भ बनना चाहिए। मैंने तुम्हें दुत्कार दिया, निकाल दिया, उसका बदला ले रहे हो ?"

यह सुनकर मुंजाल में परिवर्तन होने लगा। उसकी भावहीनता दूर होने लगी और छाती साँस की तेजी से ऊपर-नीचे होने लगी। मुख और नेत्रों में कोमलता आ गयी। काँपते स्वर में वह बोला, "मीनलदेवी, कृपया उन बातों का जिक्र न करें, मेरा हृदय फटा जाता है।"

"तुम्हारा हृदय फटा जाता है और मेरा नहीं ? मुझे स्वार्थी समझो, नीच समझो, बेवफा समझो, भावहीन कहो, लेकिन मैं सचमुच वैसी नहीं हूँ। उन दिनों की हृदय की कुचली हुई उमंगों ने मुझे स्वार्थी और रूखा बना दिया है। याद है ब्याह के तत्काल बाद संकेत की रक्षा करने मैं राजमहल में उतरी

थी। वह क्षण याद आते ही मैं एकदम बदल जाती हूँ। उस समय तुमने क्या किया—"

मुंजाल ने भर्राये स्वर में टोका, "बस करो मीनलदेवी। प्रत्येक आदमी के धैर्य की सीमा होती है। मैं अब अधिक नहीं सह सकता।"

"क्यों सहते हो? वही तो मैं चाहती हूँ। एक क्षण के लिए तुम उस रात वाले ही मुंजाल बन जाओ। मैं कल सुख से मर जाऊँगी। मुंजाल!" कहती हुइ रानी मुंजाल का हाथ पकड़ने को बढ़ी। मुंजाल एकदम पीछे हट गया। रानी की आँखों की आग में वह भी जलने लगा। उसके अंग काँपने लगे। उसके आगे पहले की मीनल आ खड़ी हुई। उसने अपने आप को बहुत रोका, पर निष्फल रहा।

"रानी, क्या कर रही हो?"

"तुम मेरे क्यों न रहे, मुंजाल?"

मुंजाल अपने हृदय से संघर्ष करते हुए बोला, "आपने उस दिन मुझे अलग किया और परसों फिर अलग कर दिया।"

"लेकिन, तुम क्यों बदल गये? मुंजाल मैं नीच हूँ, तुम नहीं हो।" मीनल देवी ने हाँफते हुए कहा।

हृदय की लपटों को शान्त करने का प्रयास करता हुआ मुंजाल बोला, "मैं नहीं बदला।"

"सचमुच?" मीनलदेवी की आँखों से भयंकर बिजली निकल पड़ी। मुंजाल ने मस्तक झुका लिया। उसके मुख से निकला, "देवी! मीनल!"

मीनल बावली बनी चुपचाप खड़ी रखी रही। पागल-सा मुंजाल आगे बढ़ा और मीनल को अपने हाथों में ले लिया, मसला और दूसरे ही क्षण जोर से भूमि पर धकेल कर भाग खड़ा हुआ।

: ४१ :

कुमार जयदेव ने बाहर से घूमकर लौटने पर देखा, रानी बिस्तर पर पड़ी है। पूछा, "माँ क्या हुआ है? दोपहर तो सब ठीक था।"

उसका स्वर सुनकर रानी कांप उठी, "मेरा माथा दुख रहा है कुमार, चक्कर ग्रा रहे है। क्यों, तुम घूम ग्राये?"

"हाँ, ग्राज बहुत ग्रानन्द ग्राया। समर कहाँ गया? वह बूढ़ा तो ग्रब बिल्कुल निकम्मा हो गया है।"

जयदेव ने समर को ग्रावाज दी।

"ग्रा रहा हूँ महाराज।" हर्षित मुख लिए समर ग्रन्दर ग्राया।

"ले, यह मेरा मुकुट ग्रोर तलवार। कहाँ था ग्रब तक?"

"मुंजाल मेहता ने बुलाया था।"

जयदेव स्नान के लिए चला गया ग्रोर चोबदार रानी की ग्रोर घूमा, "माताजी, ग्रब चिन्ता की बात नहीं है मुंजाल मेहता ने सन्देश भेजा है।"

निराश स्वर में रानी ने पूछा, "क्या।"

'कहा है, कि जो कुछ करना हो, वह कल न करके परसों करना। कल मुंजाल मेहता पाटन जा रहे हैं।"

रानी की ग्रशान्ति कुछ कम हो गयी। उसका हृदय प्रसन्न हो उठा। कुछ ग्राशा बँधने लगी।

समर ने कहा, "महारानीजी, सदा ही सोमनाथ जी की कृपा है।"

रानी ने भगवान का स्मरण करके ऊपर देखा। तभी कुछ दूरी पर कुछ कोलाहल सुनायी पड़ा। रानी का पड़ाव शंकर जी के मन्दिर के निकट था ग्रोर मन्दिर की कोठरियों के चारों ग्रोर कोट बना हुग्रा था। कोट के चारों ग्रोर डेरा-तम्बू ताने विजयपाल की सेना पड़ी हुई थी। ऐसा प्रतीत हुग्रा कि कोलाहल वहीं हो रहा है।"

"समर, देख तो यह हो-हल्ला कैसा हो रहा है?"

"मैं जाकर देखता हूँ।" समर तेजी से गया ग्रोर कुछ देर बाद लौटकर बोला, "माताजी, कुछ दूरी पर मशालें दिखलाई पड़ रही हैं। ठहरिये, मैं बाहर जाकर ठीक पता लगाता हूँ।"

रानी फिर घबरा गयी। मुंजाल के जाने की बात सुनकर उसे कुछ ग्राशा बँधी थी, पर ग्रब उसने सोचा कि ग्रगर यह वल्लभसेन की सेना हुई तो फिर झंझट खड़ा हो जायेगा। शोर कुछ पास ग्रा गया तो उसमें युद्ध की गर्जना के

बदले हर्ष के स्वर सुनायी देने लगे। रानी विचारने लगी, यह क्या है ? इतने में बाहर से विश्वपाल और मुरारपाल आये। रानी ने फौरन उन्हें अपने कक्ष में बुलाया।

"मुरारपाल, यह शोर क्यों है ? यह कौन आ रहा है ?"

"माताजी, आनन्दसूरि सेना लेकर आ रहा है।"

घबराकर रानी ने पूछा, "क्या कह रहे हो ? आनन्दसूरि को तो वल्लभसेन ने बन्दी बना लिया था ?"

"कौन जाने—"

तभी, कोट के अन्दर आये हुए लोगों का शोर सुनायी दिया। तीन-चार आदमी तेजी से बरामदे में आये और आनन्दसूरि तथा विजयपाल कुमार जयदेव को साथ लेकर अन्दर आ गये। आनन्दसूरि का परिचित स्वर सुनायी दिया, "महाराज जयदेव की जय ? भगवान महावीर की जय !" इतने से समय में उसके मुख पर बहुत परिवर्तन हो गया था। आँखों में, कपाल पर, शरीर के हाव-भाव में, सब जगह एकाग्रता ही दिखलायी देती थी और आँखों में विचित्र-सा उन्माद प्रतीत होता था।

रानी ने कुछ खिन्न-सी होकर पूछा, "आनन्दसूरिजी, आप यहाँ कैसे ?"

"माताजी, मुझे वल्लभसेन ने बन्दी कर लिया था, लेकिन अन्त में मैं ही सफल हुआ और उलटे उसकी सेना को साथ लेता आया हूँ। अब हमारी विजय है। विजयपाल मुझे बता रहे थे कि आप बिल्कुल निराश हो गयी हैं, लेकिन अब कोई चिन्ता न कीजिये। कल प्रातः ही हम पाटन को अपने हाथ दिखायेंगे।" यति उतावली में जोर-जोर से बोल रहा था।

रानी को नहीं सूझा कि क्या उत्तर दे। बाहर बहुत से लोग अन्दर आकर बात सुनने को तड़प रहे थे।

विजयपाल बोला, "माताजी, आपकी आज्ञा हो तो दरवाजा बन्द करा दूँ ? हमारी बातचीत बाहर नहीं जानी चाहिये।"

मुरारपाल ने समर्थन किया, "ठीक कहते हैं।" रानी की स्वीकृति पर समर ने दरवाजा बन्द कर दिया।

रानी सगौरव बोली, "कहो, अब क्या कहते हो ?"

आनन्दसूरि ने कहा, "अब कहना नहीं करना है। कुमार जयदेव कल प्रातः गुजरात के सिंहासन पर आसीन होंगे। मैं कल से पाटन का पता लगाता रहा हूँ। केवल तीन दिनों में पाटन जीता जा सकता है। घबराने की कोई बात नहीं है। वल्लभ भी अब दो दिन में ही निराश होकर पीछे लौट जायेगा।"

सबने रानी की ओर देखा, लेकिन वह मौन और ग्लानिपूर्ण आँखों से देखती रही। उसके चेहरे पर कोई उत्साह का भाव नहीं आया था। मुंजाल के साथ बातचीत में उत्तेजित हो जाने के बाद से उसका मन दब गया था। बीच में ही जयदेव ने कहा, "माताजी क्या सोचती हो? अब हम पाटन को लेंगे।"

रानी ने गम्भीर और शान्त स्वर में कहा, "नहीं बेटा, मुझे यह नहीं करना। पाटन भले ही जो चाहे करे। वह भले ही कपूत निकले, मुझे अपना मातृत्व निभाना है।"

सब लोग स्तब्ध होकर देखने लगे। विजयपाल ने कहा, "लेकिन महारानी जी, फिर कौन-सा रास्ता है? कल तो हम कुछ और सोच रहे थे।"

"लेकिन, आज मैंने निश्चय कर लिया है, मैं कुछ नहीं करूँगी। कल सुबह मुंजाल मेहता पाटन जा रहे हैं।" रानी निर्भीकता से कह रही थी। उसके स्वर में सादगी और सरलता थी।

यति इस परिवर्तन से चकित हुआ और मुंजाल का नाम सुनकर बड़ा झुँझलाया, "मुंजाल?"

जयदेव ने पूछा, "कौन माताजी अपने मुंजाल?"

रानी धीरे-धीरे कहने लगी, "हाँ, मुंजाल मंत्री कल पाटन जा रहे हैं, और वहाँ खास-खास लोगों से मिलेंगे। अगर तब भी कुछ न हुआ, मेरे कारण पाटनवासी जिद पकड़ रहे तो परसों मैं अपने स्वामी के पास स्वर्गलोक चली जाऊँगी। अपने पुत्र, अपने देश के लिए मैं सती होने से इन्कार कर रही थी, किन्तु यदि उन्हें मेरे बिना ही सुख मिलता है तो मैं क्यों व्यर्थ ही जीवित रह अपने स्वामी का वियोग सहूँ? क्या अपनी वजह से देश को डुबाऊँ?"

वहाँ खड़े सब लोग मूर्ख-से बने एक दूसरे का मुंह देखने लगे। उनमें जितने पाटनवासी थे, उन्होंने रानी की इस बात से गौरव से सिर ऊँचा कर लिया। लेकिन यति के कपाल पर बल पड़ गये। दांत पीसता हुआ वह बोल

उठा, "यह क्या कह रही हैं ? विजय जब किंचित-सी दूर रह गयी है तब इस तरह की बातें कह रही हैं ? आप सारे विश्व की आशा हैं; आपकी महत्ता का ही सब आदर करते हैं। अरहन्तों की कृपा से आपके हाथ में अधिकार है, बुद्धि है, विजय प्राप्त करने की शक्ति है, फिर भी ऐसा कहती हैं ?"

पास खड़े योद्धा कुछ बोलना चाहते थे कि बीच में ही रानी कहने लगीं, "सत्ता, बुद्धि और विजय की अपेक्षा मुझे प्रजा अधिक प्यारी है। यतिजी, भूल गये हो कि गुजरात की रानी के साथ बात करते समय क्या अदब करना चाहिये ?"

यति खून का घूंट पीकर रह गया, "नहीं महारानीजी, भूलता नहीं हूं। लेकिन आपकी जिस राजनीति के लिए मैं मर मिटा, आज जब वह परिपक्व होने को आयी तो आप ऐसा कह रही हैं ? इतिहास में ऐसा क्षण एक ही बार आता है और उसे भी हम खो दें ?"

"यतिजी, मेरा निश्चय दृढ़ है। यदि मुंजाल को कल सफलता मिल गयी, तो मैं पाटन जाऊंगी।"

"आपको मालूम है, त्रिभुवनपाल की मजबूती को इस समय पाँच मुंजाल भी नहीं हिला सकते ? तब क्या करेंगी ?"

"तब मैं सती हो जाऊँगी। अपने पुत्र के राज्य की अपेक्षा मेरे प्राण अधिक नहीं है।"

जयदेव बोल उठा, "यह क्या कह रही हैं, माताजी ?"

रानी बोली, "बेटा, क्षत्रियत्व की मर्यादा को रखने के लिए गुजरात की रानी को जरा भी विचार नहीं करना चाहिए।"

यति ने कहा, "पर, धर्म के आगे मर्यादा भी नगण्य है। क्षत्रियों की इस आन ने ही तो सारे भारत को अस्त-व्यस्त कर दिया है और अब भी यदि एक धर्म का शासन न होगा तो शीघ्र ही यवन आपको अपना दास बना छोड़ेंगे। अब भी विचार कर लीजिये। ऐसे मौके योंही न गँवा दीजिये। यही रास्ता संसार में आपको चक्रवर्ती बना देगा।"

लापरवाही से मीनलदेवी ने कहा, "आनन्दसुरिजी, अब मुझे आपके धर्म में श्रद्धा नहीं है। चक्रवर्ती बनूंगी तो प्रजा के उत्साह और उनकी महत्वाकांक्षाओं

को पूरी करने से।"

"इस समय जैन धर्म द्वारा ही यह महत्वाकांक्षा ग्रा सकती है।"

"सारी प्रजा इसे स्वीकार नहीं करेगी, सो मैं भी तैयार नहीं हूँ।"

"प्रजा को स्वीकार कराना राजा के हाथ में है।" कहते हुए यति ने अपनी तलवार पर हाथ रखा।

उत्तर में रानी ने कहा, "ग्रहिंसा परमो धर्मः। यतिजी, मेरा निश्चय बदल नहीं सकता। जीऊँगी, तो पाटन की इच्छा से; मरूँगी तो पाटन का मान बढ़ाने के लिए।"

यति तिरस्कारपूर्ण स्वर में बोला, "बाद में पछताग्रोगी।"

जयदेव क्रोधित होकर कुछ कहना चाहता था, किन्तु रानी ने उसे रोक दिया ग्रौर बोली, "ग्रानन्दसूरिजी, ग्राप धर्मात्मा हैं, नहीं तो ऐसे शब्दों पर ग्रापकी जीभ खिचवा लेती। जाइये।" रानी ने द्वार की ग्रोर संकेत करके कहा, ग्रौर विजयपाल से बोली, "विजयपाल, ग्रापने मेरा निश्चय सुन लिया है। ग्राप चन्द्रावती के सेनापति हैं। ग्राप स्वयं ही ग्रपने नगर का हित सोचिये।"

ग्रानन्दसूरि ने तिरस्कार से कहा, "धर्म के बीच स्वार्थी हृदय की भावनाग्रों को लाने से ही इस जगत का पतन हुग्रा है।"

मुरारपाल बोल उठा, "ग्रानन्दसूरिजी, ग्राप यति हैं, इसकी मुझे परवाह नहीं है। ग्रब यदि ग्राप महारानी के ग्रागे कोई ग्रपशब्द बोलेंगे तो ग्रापका सिर धरती पर जा गिरेगा। ग्राइये विजयपालजी, हम चलें, महारानीजी की तबियत ठीक नहीं है।"

सब लोग शान्तिपूर्वक बाहर निकल गये। मुरारपाल पीछे रह गया ग्रौर घूमकर रानी से बोला, "माताजी, ग्राखिरकार ग्रापने पाटन की नाक रख ली। एक बार मैंने ग्रापके ग्रादेश का पालन करने से ग्रस्वीकार कर दिया था पर, ग्राज मैं ग्रपने प्राण भी ग्रापके संकेत पर न्योछावर कर सकता हूँ।"

"मुरारपाल, मुझे ग्राज यह बात महसूस हुई है कि मैंने ग्रपने रानी होने के समय पर कैसे तुम लोगों का विश्वास खो दिया। ग्रगर मुझे कुछ हो जाय मुरारपाल, तो जयदेव को सँभालने वाले तुम्हीं हो, यह ध्यान रखना।"

"जब तक मेरे शरीर में प्राण हैं, तब तक कुमार का बाल भी बाँका नहीं होने दूंगा। अब आप हारी-थकी हैं, विश्राम कीजिये।" कहकर मुरारपल चला गया।

कुमार जयदेव अकेला रह गया। उसके स्वार्थी हृदय में रानी के प्रति प्रेम और सम्मान था। रानी की प्रतिज्ञा देख कर वह विस्मित हो गया। उसे सूझा नहीं, क्या करे। सिर्फ उसने यह पूछने की कोशिश की कि मीनलदेवी सती क्यों हो रही हैं। रानी ने दूसरे दिन कहने का बहाना कर उसे टाल दिया। रानी का हृदय न जाने कहाँ-कहाँ विचर रहा था।

: ४२ :

त्रिभुवन ने थोड़े ही दिनों में सब उपायों से शक्ति जमा ली थी। खेंगार के अनुभव और उदा का राजनीति-चातुर्य भी उसे मिला। लोग उसे शूरवीर सोलंकियों का ताज समझने लगे और उसके शब्दों पर सर झुकाने को तैयार रहने लगे। स्त्रियाँ उसके सुन्दर और कोमल मुख को देख न्योछावर होने लगीं। पुरुष उसके चातुर्य और साहस की सराहना करते थे। बूढ़े उसके माता-पिता के गुणों को याद कर उसका आदर करने लगे। डूंगर-नायक तो उसे देवता समझता और उसके पीछे-पीछे घूमता रहता। प्रसन्न उसकी आवश्यकता की सब वस्तुओं की व्यवस्था करती और उसके दुःखों को दूर करने के प्रयास करती।

पाटनवासियों का उत्साह बढ़ने लगा। चुपचाप द्वार बन्द करके बैठे रहना उन्हें नहीं जँचा। अनेक व्यक्ति दिग्विजय करने की तैयारी करने लगे। लेकिन त्रिभुवन और उदा ने उन्हें वश में किया। उदा ने अपने वर्तमान अधिकार से लाभ उठाकर राजतन्त्र को पहले जैसा ही चलाने की कोशिश की और लोगों में एक ही महत्वाकांक्षा होने के कारण उसे बहुत अंशों में सफलता मिली। इन दोनों के अथक परिश्रम से राज्य में व्यवस्था स्थापित हो गयी और पाटन निर्भयता से रानी के मुकाबले में खड़ा हो गया।

त्रिभुवन को मिले समाचारों के अनुसार रानी अभी कुछ कर सकने की

स्थिति में नहीं थी। अतः बैठे बैठे वह पाटन की शक्ति बढ़ाने के उपाय सोचने लगा। प्रातः वह सोचकर उठा तो माता-पिता की मृत्यु का दुःख होते हुए भी वह प्रसन्न था। इस समय उसे समस्त भारत को जीतना भी सहज मालूम हो रहा था। स्नान कर उसने बाहर निकलने की सोची, परन्तु सूर्य निकलने में अभी देर थी। उसने उदा को बुलाकर कुछ सलाह की और अपना हाथी मँगाने का आदेश दिया।

उदा दुपट्टे की तह करता हुआ बोला, महाराज, सब लोग एक ही बात करते हैं।"

"क्या बात ?"

"आपकी।"

"मेरी ? किस चीज़ की बात ?"

"क्या आपको मालूम नहीं ? अच्छा—लेकिन महाराज नाराज न होइयेगा।"

"अच्छा भाई ! लेकिन कहो तो सही।"

"आपको सब उलाहना दे रहे हैं।"

"किसलिए ?"

"कल मैंने जो बात कही थी, उसके लिए।"

"उदा सेठ, तुम कितनी ही चतुराई दिखलाओ, पर मैं हटूंगा नहीं। दादा जी का दिया वचन मैं भंग नहीं करूंगा। पाटन के सिंहासन पर कर्णदेव महाराज का पुत्र होते मैं नहीं बैठ सकता। पागल हुए हो ? वह स्वामी हैं, मैं तो उसका सेवक हूं।

"इसी इसी में—"

"देखो, फिर बात बढ़ायी ?" कहकर वह घूमने जाने लगा था कि तभी एक नौकर घबराया-सा, हांफता हुआ दौड़कर आया और त्रिभुवन का ध्यान न रख पूछने लगा, खेंगार बापू हैं ? खेंगार—?"

त्रिभुवन एक दृष्टि डाल कर बोला, "क्यों कौन-सा डाका पड़ गया है ? कौन है तू ?"

"महाराज, मैं पहरेदार हूं, मोंढेरी दरवाजे के बाहर नगर सेठ आये हैं।"

त्रिभुवन और उदा की जैसे पैरों तले की भूमि खिसक गयी, "नगरसेठ ?"

"हाँ महाराज, मुंजाल मेहता।"

दोनों के मुख पर घबराहट छा गयी। त्रिभुवन ने अपने को शान्त करने की चेष्ठा कर कहा, "सेना लेकर आये हैं ? कितनी सेना ?"

"नहीं महाराज, अकेले हैं।"

"हाँ ?"

"जी। कहते हैं कि आपसे मिलना है। आज्ञा हो तो अन्दर आएं, नहीं तो आप बाहर चलें।"

"उदा सेठ, जाओ, खेंगारसिंह को बुला लाओ।"

उदा विचारता हुआ आदेश का पालन करने चला गया। वह एक दम घबरा गया था, पर उसकी स्वार्थबुद्धि ने तुरन्त उसकी सहायता की। मुंजाल नगर में आ गया तो सारा खेल समाप्त हो जायेगा, उसकी बुद्धि और व्यक्तित्व सब को वश में कर लेंगे। अब क्या किया जाय ? उसके मस्तिष्क में एक योजना आई।

खेंगार के पास जाकर उदा ने कहा, "बापू, मुंजाल मेहता आये हैं, कोट के बाहर खड़े हैं और त्रिभुवनपाल महाराज से मिलने की आज्ञा चाहते हैं। चलिये, महाराज ने आपको बुलाया है।"

खेंगार बोला, "रानी ने भेजा होगा ?"

हाँ, और क्या ? लेकिन देखना, कहीं उलट-पुलट न कर दे, बहुत तेज है।"

बूढ़े ने मूँछों पर ताव दिया, "अजी मज़ाल है ?"

"बापू, इतना करना कि त्रिभुवनपाल को नगर से बाहर जाने देना, मुंजाल मेहता को नगर में न बुलाना।"

"पागल हुए हो ? मुंजाल मेहता कभी पाटन को लांछन लगने दे सकता है ?" यह कहते-कहते खेंगारसिंह त्रिभुवन के पास आ पहुंचे और बोले, मुंजाल मेहता आये हैं तो उन्हें बुलाओ यहाँ।"

त्रिभुवन ने कहा, "हाँ, मैं भी यही सोच रहा था।"

उदा ने फिर बात छेड़ी, "महाराज अगर आप ही नगर से बाहर मिलने के लिए जायें तो कैसा हो ?"

"किसलिए ? मेहता जी भी पाटन के हैं और बातचीत करके वापस चले जायेंगे।"

दीर्घ निश्वास लेकर उदा ने कहा, "ठीक है बापू।"

त्रिभुवन बोला, "काका जी आप कहें तो अपना हाथी भिजवा दूं ? नगर-सेठ की प्रतिष्ठा के योग्य ही स्वागत किया जाना चाहिए।"

खेंगारसिंह ने कहा, "लेकिन साथ में कोई भी व्यक्ति अन्दर न लावे।"

"दरबान कह रहा है कि उनके साथ में कोई और नहीं है।"

"तो ठीक है। कहिए तो मैं चला जाऊँ।"

उदा चक्कर में पड़ गया नगरसेठ के नाम ने सब पर जादू डाल दिया था। वह बीच में ही बोल उठा, "मैं भी जाता हूं।" इस अवसर पर वह चूकने वाला नहीं था।

त्रिभुवन ने कहा, "हां जाओ।" खेंगार व उदा चले गये।

कुछ क्षणों के बाद समाचार सुनकर प्रसन्न भी दौड़ी हुई आ पहुंची। मुंजाल मेहता के आने की खबर से राजमहल में खलबली मच गयी थी।

प्रसन्न ने पूछा, "क्यों जी, यह सच है न ?"

"हां सच है। पर इतना अकुला क्यों रही हो ?"

"देखना, कहीं तुम्हारा व्रत न टूट जाये।"

गर्व से त्रिभुवन बोला, "घबराने की बात नहीं। मैं अटल हूं।"

न जाने कब तक दोनों जने एक दूसरे की ओर टकटकी लगाये देखते रहे। इतने में यह समाचार सुनकर दो-एक सामन्त और आ गये। कुछ देर बाद राजमहल में कुछ लोगों को आता देख त्रिभुवन चबूतरे पर जा खड़ा हुआ। मुंजाल, खेंगार और उदा पैदल चले आ रहे थे।

मुंजाल के वस्त्र साधारण और मैले थे। जिस वेश में उसे बन्दी किया गया था, उसी वेश में वह वहां आया था। ऊँचा, गठीला शरीर थोड़ा झुक गया था और मुख पर नम्रता झलक रही थी। किन्तु चाल पहले जैसी ही दृढ़ और अधिकार-प्रदर्शक थी। व्यक्तित्व भी पूर्ववत् तेजस्वी और अनुपम था। त्रिभुवन स्वागत के लिए आगे बढ़ आया। उसे एक अभिमानी मंत्री, राजनीतिज्ञ, नगरसेठ और रानी के आदरणीय मुंजाल को देखने की आशा थी

किन्तु बदले में उसने एक निवेदन करता भिक्षुक देखा। इस समय मुंजाल के शब्दों का स्मरण आया—"त्रिभुवन, मेरे रिक्त हृदय की आशा को पूरी करोगे ?" इन शब्दों के स्मरण ने उसे सब कुछ भुला दिया, बस, मुंजाल उसे अपने मामा के ही रूप में दीखा और दूसरे क्षण वह दौड़कर मुंजाल से लिपट गया, "मामा !" उसके नेत्र भर आये। मुंजाल स्थिर खड़ा रहा।

त्रिभुवन उसे कमरे में ले जाकर आदर से बैठता हुआ बोला, "मामा जी कैसे कष्ट किया ?"

"त्रिभुवन, तुम समझ तो गये होगे मैं किस कारण आया हूँ। लेकिन मैं रानी की ओर से नहीं, अपने निज के लिए आया हूं। मैं पाटन की मर्यादा तोड़ने नहीं आया हूं। मैं तुम दो-एक अगुआ लोगों से बात करने आया हूँ। मुझे कुछ कहना है, सुनोगे तो शायद पाटन के गौरव की रक्षा ही अधिक होगी।" मुंजाल का स्वर दुःखपूर्ण हो गया था।

खेंगार ने कहा, "मेहता जी, हम आपकी सारी बात सुनने के लिए राजी हैं। जो कहना हो, इतमिनान से कहिए।"

"ठीक है। पर इस तरह नहीं। हम तीन-चार आदमी बैठ जांय। कुछ बातों का बाहर इधर-उधर फैलना उचित नहीं होता।"

त्रिभुवन ने खेंगार से कहा, "ठीक है। काका जी, सेठ वस्तुपाल को बुला लिया जाय। वे होंगे और आप, मैं और उदा सेठ।"

"ठीक है।"

"चलिए, हम लोग ऊपर चलें।" त्रिभुवन ने कहा, और सब जीने की ओर घूमे। प्रसन्न दौड़ती हुई बगल के कमरे में छिप गई पर मुंजाल की तीक्ष्ण दृष्टि ने उसे देख लिया और वह दृष्टि घुमाकर बोला, "कौन ? प्रसन्न ?"

त्रिभुवन ने कहा, "जी हां, प्रसन्न है। बुलाऊँ ? ऐ प्रसन्न ! मामा जी बुला रहे हैं।"

हंसती, शरमाती सर झुकाये प्रसन्न आ खड़ी हुई। मुंजाल ने कहा, "कैसी हो बेटी ? रानी से मिली थी न ? चल तू भी चल। इसमें आप लोगों को कोई आपत्ति तो नहीं है ?"

खेंगार ने कहा, "जी, बिल्कुल नहीं।" कुछ दिनों से यह बूढ़ा भी प्रसन्न

से ममता करने लगा था बोला, "चल प्रसन्न, आ।"

पाँचों व्यक्ति ऊपर जाकर चुपचाप बैठ गये। थोड़ी देर बाद वस्तुपाल भी आ पहुंचे। वे बहुत घबराये हुए थे। आते ही मुंजाल की तबियत का हाल पूछने लगे।

मुंजाल कारुणिक हास्य से बोला, "सेठ वस्तुपाल जी, तबियत किसकी? पिछले पाँच दिनों से न जाने कितने युग मुझ पर से निकल गये। यह सब निबट जाय तो मैं आबूजी की शरण में चला जाऊँ। लेकिन मैं पाटन को माव गया।"

"कैसे?" खेंगार और त्रिभुवन ने एक साथ पूछा।

"मैं कहा करता था कि पाटन नगरी जागती ज्योति है, इसे छेड़ने से किसी का भला न होगा, इसे आप लोगों ने सिद्ध कर दिया।"

वस्तुपाल ने पूछा, "तब, आपको यह सब पसन्द है?"

"पसन्द? जब मैंने सुना कि परदेसियों के पैरों की आहट के विरोध में सारे पाटनवासी एक हो गये हैं, मैंने अपने जीवन को सार्थक समझा। यह भूमि देव-भूमि है। इसके वीर पुत्रों में दैवी अंश हैं—इसका आभास मुझे उसी दिन हुआ।" कहते हुए उनका मस्तक गर्व से ऊपर उठ गया।

त्रिभुवन पूछने लगा, "तब मामाजी आप क्या कहने के लिए यहाँ आये हैं?"

"भाई, लोगों को जो कहना हो सो कहें, पर मैं इतने वर्षों से पाटन को चक्रवर्ती बनाने की ही सोचता रहा हूँ। तुम्हारी वीरता देख मेरी छाती दुगुनी हो जाती है और अब मैं यही कहने आया हूँ कि जो कुछ करना, सोच-समझ कर करना। इस अवसर की भूल-चूक पाटन के पतन में सहायक होगी।"

खेंगार ने पूछा, "कैसे?"

"मंडलाधिकारी जी, पहले मेरी एक बात सुन लो। रानी ने मुझसे पाटन को मनाने को कहा पर मैंने अस्वीकार कर दिया। बाद में मेरे हृदय ने मुझे प्रेरित किया और मैं यहाँ आने को तैयार हो गया, लेकिन न अपने लिए, न रानी के लिए, बल्कि पाटन के लिए।"

"वह कैसे ?"

"खेंगारसिंहजी, इस क्षण का मूल्य आप जानते हैं ? शायद नहीं जानते ? पर मैं जानता हूँ। आपको मालूम है, मैं पन्द्रह वर्ष चुप क्यों बैठा रहा और क्यों कुछ न कर सका ? कारण कि वह क्षण नहीं आया था। अनेक वर्षों से लोग पाटन की महत्ता के लिए तरस रहे थे, फिर भी कोई कुछ क्यों नहीं कर सका ? कारण कि वह क्षण नहीं आया था।"

"मैं समझा नहीं।" त्रिभुवन ने कहा।

"त्रिभुवन, तुम्हें ज्ञात है कि पाटन जगत का शिरोमणि कब बन सकता है ? जो उत्साह अकेले पाटन में है वह सारे गुजरात में आ जाये, तब। भीमदेव ने चुटकी बजाते ही पाटन को दोबारा ले लिया था, इसका कारण यही था कि सारे देश में एक ही प्रेरणा काम कर रही थी। यह उत्साह इतने वर्ष तक नहीं आया, अब आयेगा।"

"क्यों ?"

"तुम बच्चे हो। पुराने वैर-विरोधों को तुमने नहीं देखा है, पर सब लोग जानते हैं। पाटन को चौथ देने वालों में कितना विरोध है ? त्रिभुवन, मंडलाधिकारियों में तुम्हारे पिता, खेंगारसिंह जी, मदनलालजी और वल्लभसेन के अतिरिक्त कभी किसी ने पाटन में आने का कष्ट तक नहीं उठाया। हमारे बावन नगर कहे जाते हैं, पर देखा जाय तो केवल मोंढेरा, कर्णावती और ज्यादा-से-ज्यादा सोमनाथ हमारे हैं, बाकी सब कहाँ हैं ? सब ने नाम मात्र को पाटन की आधीनता स्वीकार कर रखी है।

"पिता जी भी यही कहते थे।"

"भैया, तुम्हारे पिता के उद्देश्य महान् थे, पर उनका स्वभाव उतावला था। प्रत्येक मंडल को स्वतन्त्र रखकर पाटन की शक्ति बढ़ाना चाहते थे, पर यह कैसे हो सकता था ? और इसमें हमारे श्रावकों का झगड़ा बाधक था। विमलशाह की स्थापित की हुई सत्ता के पीछे वे पागल बने फिरते थे और जहाँ-तहाँ वे यही चाहते थे।"

"तब आपकी क्या धारणा थी ?"

"इन सब संकटों से रास्ता निकालने का प्रयत्न करके मैं थक जाता था।

भरसक प्रयत्न मैंने सब कुछ ठीक रखने के लिए किया। मेरा विचार पाटन-नरेश की प्रतिष्ठा बढ़ाकर सारे देश में उसका डंका बजवाना था। बिना किसी एक व्यक्ति के हाथ में अधिकार हुए राज्य नहीं चल सकता।"

"महारानी जी का भी तो यही मत है।"

"नहीं। तुम भूल रहे हो। उन्हें सत्ता चाहिये थी, किसी भी तरह। उसका नतीजा वे आज भुगत रही हैं। उस सत्ता के लिए ही उन्होंने चन्द्रावती की सेना की मदद माँगी।"

उदा बोला, "और आनन्दसूरि को रखा।"

"यति का सिद्धान्त बहुत खतरनाक है। वह जैन धर्म की आधार-शिला पर पाटन का शासन रखना चाहता है।"

वस्तुपाल ने कहा, "यह कैसे हो सकता है?" वैष्णव-वणिकों का नेता होने के कारण वह श्रावकों का विरोधी था।

"हो क्यों नहीं सकता? धर्म की शक्ति पर राज्य का निर्माण करने से दस वर्षों में हम सारे देश को जीत सकते हैं। परन्तु हमारी परिस्थिति ऐसी नहीं है और, जैन धर्म में इतना उत्साह भी नहीं है।"

खेंगार ने पूछा, "तब आप क्या करना चाहते थे?"

"मेरा एक ही रास्ता था। दो-चार मण्डलाधिकारी एक साथ होकर गुजरात की सेना को इकट्ठा करके मालवा पर आक्रमण कर दें, और जो साथ न हों उन्हें आधीन कर लिया जाय। मैं आप लोगों से यही कहने आया हूँ।"

"क्यों?"

"यही, कि जिस अवसर के लिए मैं, मण्डलाधिकारी और हर एक पाटन वासी तरसते रहे हैं, वह आ गया है। पाटन त्रिभुवन को पूज रहा है। देहस्थली और वल्लभसेन त्रिभुवन के ही हैं। भीमदेव महाराज के कितने वर्षों बाद पाटन में यह उत्साह आया है कि सब लोग एक ही व्यक्ति का आदेश पालने को तैयार हैं। इस समय का लाभ उठाकर पाटन का डंका दसों दिशाओं में बजवाया जा सकता है।" कहते-कहते मुंजाल के मुख पर तेज आने लगा।

उदा ने कहा, "ठीक कह रहे हैं। मैं भी यही सोचता हूँ।"

मुंजाल प्रभावपूर्ण काँपते स्वर में बोला, "सोचने का अवसर नहीं। एक-एक क्षण सोने का बीत रहा है। मैंने सुना था कि सारा पाटन राजमहल में उलट पड़ा था। उसे अब रोको मत, आगे बढ़ने दो और उस प्रवाह की तरंगों को अवन्ति तक पहुँचा दो।"

उदा ने पूछा, "परन्तु, यह हम किस प्रकार करें ?"

"यह भी सोचना होगा। आप सब लोग प्रतिज्ञा किये बैठे हैं कि मीनलदेवी को यहाँ न आने देंगे। इस प्रतिज्ञा की रक्षा के दो ही रास्ते हैं। या तो इसी प्रकार पड़े रहिये, इससे आपका जोश ठंडा पड़ जायेगा, या त्रिभुवनपाल गद्दी पर बैठकर अपनी दोहाई फेर दें।"

त्रिभुवन ने जोर से कहा, "मैं यह कभी नहीं कर सकता। अपने दादा जी के वचनों को भंग कर दूं।"

"माना कि तुम न करोगे लेकिन आज की मित्रविहीन रानी के कल पच्चीस मित्र बन सकते हैं। गुजरात में मार-काट मच जायेगी और कल पाटनवासी भी थक जायेंगे। आप लोगों के सारे उत्साह पर पानी फिर जायेगा और पाटन का प्रभुत्व पाटन में ही समा जायेगा।"

खेंगार विचार करता हुआ बोला, "तब फिर क्या किया जाय ?"

"करने को तो एक ही बात है और, वह है—कुमार जयदेव को सिंहासन पर बैठाना।"

त्रिभुवन उबल पड़ा, "मामा, आपकी बातों को समझ गया। हमारी प्रतिज्ञा को आप मिट्टी में मिलाना चाहते हैं ? मीनलदेवी और चन्द्रावती के सैनिकों को हम पाटन में न आने दें ?"

"मैं यह कब कहता हूँ ? चन्द्रावती की सेना को केवल लौटाया ही न जाय बल्कि चन्द्रावती से चौथ भी ली जाय और उसकी सेना को शत्रुओं के मुकाबले में भेजा जाय। पर यह तभी सम्भव है जब पाटन की पीठ पर उसका राजा हो और संग में त्रिभुवन हो।"

"यह कैसे होगा ? मीनलदेवी ने तो कुमार जयदेव को भेजना अस्वीकार कर दिया।"

मीनलदेवी तो सती होने को तैयार हैं, और वे सती हो जायेंगी तो आप

लोग तुरन्त जयदेव को राजा के रूप में स्वीकार कर लेंगे। तब प्रतिज्ञा में कौन-सी बाधा पैदा होती है ?"

खेंगार बोला, "कोई नहीं।"

"परन्तु तुम्हें इसके परिणाम भी मालूम हैं ? तब आपके राजा और पाटन का दिल कभी एक नहीं हो सकेगा। जयदेव के हृदय में अपनी माता की मृत्यु सदा खटकेगी और वह यह कभी नहीं भूल सकेगा कि आपके कारण उसकी माता को प्राण गंवाने पड़े। फिर आप लोग राज्य की वृद्धि कैसे करेंगे ?"

सब ने एक-दूसरे की ओर देखा।

"मैं फिर कहता हूं कि पाटन के प्रेम के कारण ही मैं यहां आया हूं। इस समय आप लोग उत्साह का सदुपयोग करना और पाटन का गुजरात में पूर्ण अधिकार करना चाहते हैं, तो रानी और कुमार जयदेव को फिर से स्वीकार कर लीजये। उनके लिए यह दण्ड क्या कम है ?"

"लेकिन चन्द्रावती—"

"इतना आप लोग स्वीकार करते हैं तो उसका रास्ता भी मैं बताता हूं। चाहें तो रानी से ही कहला दीजिये कि चन्द्रावती की सेना लौटा कर मां-बेटे अकेले पाटन में आयें, तभी दरवाजा खुलेगा। पाटन की रानी के लिए क्या यह कम अपमान की बात है ?"

"लेकिन हमारी प्रतिज्ञा !" खेंगार ने पूछा।

"मंडलाधिकारी जी, शासन-कार्यों में मतलब देखा जाता है, कोरी प्रतिज्ञा नहीं। पाटन की स्वतन्त्रता की रक्षा हो, चन्द्रावती और रानी मूर्ख सिद्ध हों, आप लोगों का संकट दूर हो और अधिकार बढ़ जाय, यह सब ज्यादा है या क्रोध में की हुई प्रतिज्ञा के शब्द ?"

त्रिभुवन ने कहा, "मामा, मेरी प्रतिज्ञा, मेरी आन ?"

मुंजाल गर्व से मस्तक उठाकर बोला, "भैया, अपने पिता वाली भूल तुम मत करना। आन पहले है, लेकिन तुम्हारी नहीं पाटन की। यह सोचो कि पाटन की आन, उसकी मर्यादा कैसे रहेगी ? पहले पाटन है, फिर वहां रहने वाले।"

खेंगार ने कहा, "मेहता जी, आपकी बात लगती तो ठीक है। लेकिन इसे नगर के सारे अगुआओं के आगे रखना चाहिए, नहीं तो हम पर बेकार ही दोष आयेगा।"

"मैं इसके लिए कब मना करता हूँ? पाटनवासियों की सुबुद्धि पर मुझे यकीन है। राजनीति में गुस्सा रखने वालों का कभी भला हुआ है? पहले रानी को जीतिये, फिर चन्द्रावती को जीतिये। इससे सारा गुजरात आपका हो जायेगा और सारा विश्व पैरों पर झुक जायेगा।"

उदा बोला, "किन्तु मेहता जी, रानी आकर सबसे बदला लेने लगी तो?"

"त्रिभुवन के दंडनायक होते हुए, वल्लभसेन के सेनापति होते हुए और तुममें से किसी के मन्त्री होते हुए रानी की क्या मजाल है? लेकिन त्रिभुवन, तुम क्यों नहीं बोलते? तुम्हारा क्या ख्याल है?"

"मैं क्या बताऊँ? मेरी प्रतिज्ञा दृढ़ है। फिर भी आपका कथन सच है। पाटन को जो कुछ करना हो, करे।"

"तुम पीछे क्यों हटते हो?"

"जी, नहीं। उदा सेठ, जाओ, नगर में ढिंढोरा पिटवा दो। किसी को भी असन्तोष नहीं रहना चाहिए।"

"चलिए, अब हम लोग नीचे चलें। फिर सबसे बातचीत करके आपको बुला लेंगे।" वस्तुपाल ने कहा।

मुंजाल बैठ गया, "मुझे कोई एतराज नहीं है।"

खेंगार, उदा और वस्तुपाल नीचे चले गये।

: ४३ :

मामा और भानजे ने एक दूसरे की तरफ देखा। त्रिभुवन के नेत्र कठोर होने लगे, बोला, "मामा जी, आज मैंने एक चीज देखी।"

"क्या?"

"यह कि सब लोग आपसे किस वजह से डरते हैं?"

मुंजाल ने स्नेहपूर्ण स्वर में पूछा, "किस वजह से ?"

"आपकी दृष्टि त्रिकालज्ञ की दृष्टि है और आपकी जीभ पर बृहस्पति विराजते हैं।"

"लेकिन तुम तो जरा भी रीझे नहीं दीखते।"

"पाटन के आगे मेरी क्या विसात है ? मामाजी, आपने पाटन को जिला दिया और भानजे को मार डाला।"

मुंजाल चौंका, "कैसे ?"

'मीनल काकी के इस नगर में आते ही मैं शरीर त्याग दूंगा। मेरा निश्चय आप जानते हैं।"

मुंजाल ज़रा फीका होकर बोला, "क्या कह रहे हो ? ऐसा भी कहीं निश्चय होता है ?"

"आप जो चाहे कहें। जिसे जो कहना हो, कहे। मैं यहाँ से सोमनाथ पाटन जाऊँगा और फिर जहाँ बुद्धि सुझायेगी वहाँ। मैं अपने पिता का पुत्र हूँ। वचन मुझे सब से प्यारा है।"

"ऐसे पागलों के-से विचार किये जाते हैं ? यह योजना तो सिर्फ इसलिए है कि पाटन का मान गौरव बढ़े। तुम मुझसे साफ-साफ क्यों नहीं कहते ?"

मुंजाल ने त्रिभुवन के कंधे पर प्यार से हाथ रख दिया। त्रिभुवन काँप उठा।

"साफ क्या कहूं ? आप तो केवल मंत्री हैं। बहन, बहनोई के लिए आपके हृदय में कोई सहानुभूति कोई सम्वेदना नहीं हो सकती। उनकी भयंकर मृत्यु का बदला लेने को भला आपका हृदय क्यों तड़पेगा ? लेकिन मैं माता-पिता के कारण इस कपटी रानी को क्षमा नहीं कर सकता आपकी बातें मैंने सुनीं। उन्हें आप और लोगों को भी सुनाइयेगा। लोगों ने उन्हें जैसे ही स्वीकार किया कि मैं यहाँ से चला जाऊँगा। पाटन के लिए ज्यादा-से-ज्यादा अपने प्राणों और अपनी आशाओं की बलि दे दूंगा। इससे अधिक और क्या चाहिए ?"

"त्रिभुवन, तुम इतने बुद्धिमान होकर भी क्रोध को ही आगे रखोगे ?' इस समय तुम पाटनियों के नायक हो। क्या उनकी कीर्ति के लिए इस क्रोध को

नहीं हटा सकते ?

"जी नहीं। मैं पाटनी न होकर दृढ़प्रतिज्ञ मण्डलाधिकारी का पुत्र हूँ। पाटन जिस दिन उसके पक्ष को छोड़ देगा, उससे और मुझसे कोई सम्बन्ध नहीं रह जायेगा।"

"लेकिन त्रिभुवन कुछ सोचो तो। इस अवस्था में दण्डनायक बनकर तुम क्या-क्या कर सकोगे ?"

अदब के साथ त्रिभुवन ने कहा, "अधिक बात करने से कोई लाभ नहीं। आप सही और मैं गलत, बस ?"

"नहीं। तुम्हारी राय के बिना मैं कुछ न करूँगा।"

"मेरे लिये सबसे पहले अपने माता-पिता हैं।"

"त्रिभुवन, कुछ तो सोचो। तुम यह समझते होगे कि हंसा के प्रति मुझे स्नेह नहीं था, और उसकी मृत्यु से मुझे दुःख नहीं है। सो बात नहीं भैया। लेकिन अब इन बीती बातों को याद करना व्यर्थ है। मैंने अपनी बहन को जीवन-भर बन्दी रहने दिया—किसलिए ? केवल पाटन के लिए।"

अब तक प्रसन्न चुप थी। अब उसने कहा, "नहीं मेहताजी, मेरी बुआ के लिए।"

"बेटी, तुम क्या जानो ! यदि हंसा मण्डलाधिकारी के साथ रही होती तो आज गुजरात इतना भी न होता।"

"सो कैसे ?"

"तुममें से तो किसी ने हंसा को देखा नहीं, लेकिन मैंने शैशव से ही उसका पालन-पोषण किया था। एक समय मैंने उसे लाड़-प्यार भी किया था। हमारी भाई-बहिन की जोड़ी थी। लता की तरह वह मुझसे लिपट जाती। यों वह पराधीनता की प्रतिमा-सी लगती, फिर भी व्यक्ति के हृदय में उत्साह और शौर्य की भावना क्षण-भर में ही जगा देती थी। उसका सुन्दर मुख सबको मोह लेता था। जब वह छोटी थी तो पाटन के लोग उसके पैर पूजते थे। उसके मन्दिर से लौटते वक्त लोग उसके हाथ से प्रसाद लेने और मुँह से दो मधुर बोल सुनने को तरसते रहते थे।" कहते-कहते भावावेश में मुंजाल के आँसू गिरने लगे। त्रिभुवन और प्रसन्न के भी नेत्र भर आये।

मुंजाल आगे कहने लगा, "उसकी ख्याति सुन देश-देश के महारथी आते थे। उसे देखकर, स्पर्श से पवित्र हो लौट जाते। हंसा स्त्री नहीं, सरस्वती का अवतार थी। वह मण्डलाधिकारी के साथ रहती, तो मण्डलाधिकारी की सत्ता बढ़ जाती, पाटन में विरोध खड़ा हो उठता और यहाँ के लोग आपस में कट मरते।"

त्रिभुवन ने कठोरता से पूछा, "तब, आपको ऐसी बहन को मारते हुए भी दुःख नहीं हुआ?"

"भैया जवान बूढ़ों को गधा समझते हैं। क्या तुम्हारे ही पास हृदय है, मेरे पास नहीं? मैं हंसा के लिये सारे-सारे दिन रोया हूँ, परन्तु जीवन की आधार के आगे सब कुछ भूल जाने की मैंने शिक्षा पायी थी। हंसा से मैं अक्सर मिला करता था। मेरी स्थिति समझ उसने मुझे क्षमा कर दिया था।"

प्रसन्न बोली, 'लेकिन, आप जानते हैं कि बुआजी ने उन्हें किस तरह भेजा था? अब उन्हें कैसे क्षमा किया जाय?"

"रानी को अधिकार के मद ने अंधा कर दिया था जरा सोचो बेटी, जहाँ पाटन की आन फिरती हो, वहाँ मुंजाल मन्त्री को कोई बन्दी कर सकता है? मैं घमंड नहीं करता, परन्तु, यदि चाहूँ तो एक क्षण में, एक शब्द में सबका सत्यानाश कर दूं। सोमनाथ से रेवा-तट तक कोई भी आदमी मेरे इशारे पर मरने से इन्कार नहीं कर सकता। अपने बन्दी होने पर मैं समझ गया था कि रानी अब पाटन को बर्बाद करने जा रही है। लेकिन जब मैंने त्रिभुवन की वीरता सुनी, मेरा निराश हृदय फिर से आशापूर्ण हो उठा, और तभी मैं यहाँ आया। त्रिभुवन, इसलिये कहता हूँ कि जिसके लिए मैंने बहन, बहनोई और स्वयं को मिटा दिया, आज जब वह आसानी से प्राप्त हो रहा है तो क्या पीछे हट जाओगे?"

"लेकिन मेरी प्रतिज्ञा?"

"तुम्हारी प्रतिज्ञा उचित है, लेकिन क्या तुम्हें अपने कुल की प्रतिज्ञा भी ज्ञात है? पाटन के लिए सर्वस्व त्याग कर देने वाले अपने दादा क्षेमराज के आत्म-त्याग का भी तुम्हें ज्ञान है? इस पाटन के खातिर उन्होंने अधेड़ अवस्था में

वानप्रस्थ ग्रहण कर लिया। तुम्हारे दादा, पिता, माता, सब गए और यह मामा भी जा रहा है, सब पाटन के लिए गए। तुम बत्तीस लक्षणों से युक्त हो, दूर होते हुए भी तुम्हें मैंने अपनी आँखों का तारा समझा है। जानते हो, महीने में एक बार तुम्हें देखने को मैं कितना तरसता था ?"

त्रिभुवन और प्रसन्न, दोनों चौंक उठे।

मुंजाल जरा हँसकर फिर बोला, "तुम सोचते थे कि तुम जो हर महीने प्रसन्न से मिला करते हो, इसे कौन देखता होगा ! लेकिन मुंजाल मन्त्री ऐसा अंधा नहीं था। हर सुदी पंचमी या छठी को तुम मिलते थे, और तुम्हें देखने के लिए मैं चुपचाप खड़ा रहा करता था। वही मामा आज तुमसे कह रहा है कि अपने हट को छोड़ दो, बेटा। कुल-धर्म के आगे वचन की क्या बिसात है ?

त्रिभुवन निराश-सा बोला, "अब ज्यादा मत कहिये, नहीं तो मेरी प्रतिज्ञा टूट जाएगी।"

प्रसन्न ने पूछा, "लेकिन, मेहताजी आपने यह कैसे विश्वास कर लिया कि बुआजी अब सीधी राह चलेंगी ? उनका स्वभाव तो कुत्ते की पूंछ की तरह है।"

"नहीं प्रसन्न। मैं कल ही उनसे मिला था। प्रभु की कृपा से रानी का भी पुनरुद्धार हो गया है। तुम्हें ज्ञात है कि कल आनन्दसूरि बल्लभसेन के पास से भागकर रानी से मिला था ?"

त्रिभुवन ने हैरानी से कहा, "क्या ?"

"हाँ। और उसने रानी से पाटन पर घेरा डालने के लिए पूछा। रानी ने बिलकुल इन्कार कर दिया और कहा कि अगर पाटन मान लेगा तो ठीक है नहीं तो मैं सती हो जाऊँगी।"

त्रिभुवन बोला यह सुबुद्धि बहुत देर से आयी ?"

"हाँ। लेकिन, अगर न आयी होती तो इस समय खून की बरसात होती दीखती। जो कुछ होता है, भले के लिए ही होता है।"

"ठीक है, तो भले ही पाटन मेरा बलिदान ले ले। पाटनवासियों को स्वीकार हो तो मैं कुछ न बोलूंगा। मैं अपने।"

"अपने-वपने कुछ नहीं। पाटन के सच्चे राजा अब तुम्हीं हो। अब तुम्हें उसकी दुहाई सब तरफ फेरनी है।"

"यह बात अलग है। आप सब तो हैं। देश-प्रेम के कारण मैं अपनी हठ त्यागता हूँ पर क्या कुछ और भी करने को बाध्य हूँ ?"

"वह बाद में देखूंगा।"

सब चुप हो गए। थोड़ी देर बाद उदा बुलाने आ गया। मुंजाल और त्रिभुवन नीचे गए। थोड़े-से वाद-विवाद के बाद सब लोग इस निश्चय पर आ गए कि पहले चन्द्रावती की सेना को फौरन विदा कर दिया जाय और फिर दूसरी सांझ को रानी, कुमार जयदेव और यहाँ के सामन्त ही पाटन आएं। इससे पूर्व मुंजाल मन्त्री आज जाकर रानी की आज्ञा से विभिन्न पदवियाँ देने का आदेश लेकर कल वापस आ जायें। यह भी तय हुआ कि त्रिभुवनपाल दण्डनायक और पाटन का दुर्गपाल, वल्लभसेन सेनापति और उदा व सेठ शान्तिचन्द्र मन्त्री बनाए जाएं।

संध्या-समय यह सब समाचार लेकर मुंजाल रानी के पास चले।

उदा मारवाड़ी अब उदा मेहता बन अपने स्वार्थ के इस सुखद परिणाम को देख फूला नहीं समा रहा था।

: ४४ :

उधर रानी का मन बहुत डाँवाडोल हो रहा था। अब वह कैसे अपने गर्व का त्याग कर पाटन जायेगी ? कैसे नीची नाक करेगी ? तभी मुंजाल ने आकर पाटन का सन्देश कह सुनाया।

रानी ने रुचिपूर्वक कहा, "और कुछ ?"

मुंजाल बोला, "बस। मैं कल सवेरे उत्तर लेकर वापस चला जाऊँगा। आपको जाना हो तो कल संध्या-समय द्वार खुलेंगे, लेकिन उससे पहले यह सेना यहाँ से चली जानी चाहिये।

मुंजाल प्रणाम कर चला गया। रानी को उसका यह ठंडा व्यवहार बहुत अखरा, पर क्या करती ? पहले की तरह वह मुंजाल के प्रताप से फिर दबने

लगी थी और इस दबने में सुख मिलता था। उसने विजयपाल को बुलाया। विजयपाल पाटन के इस सन्देश को सुनकर हर्षित हो गया। रानी ने कहा, "विजयपाल जी, चन्द्रावती की सेना के मुझ पर बहुत अहसान हैं। फिर आप सब कुछ जानते हैं और इस समय की सहायता के लिये मैं जो कुछ दूं वह कम है।"

"सब भगवान महावीर की कृपा है। यह झगड़ा टल गया, बहुत अच्छा हुआ। मुझे इसका परिणाम अच्छा नहीं दीखता था।"

रानी हँसी, "आपके आनन्दसूरि इस बात को नहीं मानते।"

"लेकिन, अब उसका पक्ष कमजोर पड़ जायेगा। मैंने आज ही सुना है कि चन्द्रावति का संघ उसे पदच्युत करना चाहता है। उसके लिए अब वहाँ जगह नहीं रही है।"

"वह है बहुत चतुर। जरा बुलाना उसे। अगर मान जाय तो उसे मोंढेरा या कर्णावती भिजवा दूं। वहाँ उसका मान बना रहेगा।"

"वह शायद ही माने। चाहो तो देख लीजिये। समरसेन, जरा यति को बुलाओ। मुझे तो उसका दिमाग खराब हुआ-सा लगता है। कुछ नायकों को वह पाटन पर चढ़ाई करने के लिए भड़का रहा था।"

कुछ देर बाद आनन्दसूरि आ पहुँचा। उसका चेहरा तिरस्कार से अकड़ा हुआ था। रानी बोली, "यति जी, मैं तो पाटन जाती हूँ और विजयपाल जी सेना को वापस जा ले रहे हैं। अब आप क्या करना चाहते हैं?"

मीनलदेवी, महावीर की कृपा से आपको अनन्तकाल तक अपना नाम अमर करने का अवसर मिला, किन्तु बहुत खेद है कि आप अन्त में ऐसी सिद्ध हुईं।"

रानी यति की एक ही धुन पर हँस पड़ी, "मैंने आपको इसलिए नहीं बुलाया है। मेरा कहना है कि अगर आप शान्तिपूर्वक जीवन बिताना चाहते हों तो मोंढेरा में अपने उपाश्रय में आपका प्रबन्ध कर दूं! वहाँ आपको पूर्ण सम्मान मिलेगा।"

"रानी, आनन्दसूरि सम्मान का भूखा नहीं है।"

"तो और क्या चाहिए! मैंने सुना है कि चन्द्रावती का संघ आपको अलग कर रहा है!"

यति खिलखिला कर हँस पड़ा, "बेचारे क्षुद्र जीव हैं। रानी, अपने जीवन

के उद्देश्य के आगे मुझे किसी की परवाह नहीं है। उसी के लिये मैं तुम सब लोगों की खुशामद करने निकला था। अब मैं सब की असत्यता को जान गया हूं। भगवान महावीर के मन्त्र को मूर्तिवान करने का साहस न करने वालों के साथ मैं कैसे मिल सकता हूं !"

'तो अब क्या करोगे ?"

"तुम्हारे इन नन्हें-नन्हें खेलों से मेरी मान्यता नहीं चली गयी। मैं अवसर की प्रतिक्षा करूंगा। अपने सिद्धान्तों में मुझे श्रद्धा है और एक दिन धर्म की विजय करके लौटते हुए चक्रवर्ती की बगल में आप मुझे देखेंगी।"

विजय ने कहा, "यति जी, महारानी जी उचित सलाह दे रही हैं। उनके कार्यों में योग देने से ही राज्य का गौरव बढ़ेगा।"

"तुम अभी बच्चे हो। तुम क्या समझो ? जाओ, पाटन का गौरव बढ़ाओ और अपने भ्रम के अँधेरे में ही अपने सिद्धान्तों की जीत होगी। नहीं तो यवन आगे बढ़ ही रहे हैं। पानीपत और सिन्धु देश की भूमि की तरह तुम्हारी भूमि भी हाथ से निकल जाएगी। धर्मरहित साम्राज्य की स्थापना करोगे तो सबसे हाथ धो बैठोगे। तुम्हारे बाल-बच्चे गजनी के बाजारों में बिकेंगे, और तब तुम मेरी बुद्धिमानी को मानोगे। मुझे तुम्हारे सम्मान या राज्य की परवाह नहीं है। अन्धों और बुद्धिमानों से मेरा सम्बन्ध समाप्त हो गया है।" यह कहकर वह ऐसे खड़ा हो गया जैसे भविष्य का संकट देख रहा हो।

रानी और विजयपाल काँप उठे। आनन्दसूरि एक तिरस्कार की दृष्टि डाल वहां से चल दिया। कुछ देर तक रानी और विजयपाल घबराये से ही एक दूसरे की ओर देखते रहे, फिर स्वस्थ होकर रानी बोली, "यह बेचारा यति तो बिलकुल बहक गया है। मैंने एक बात सोची है, तुम्हें एतराज न हो तो कहूं ?"

"क्या ?"

"यदि पाटन की सत्ता मेरे हाथ में आयी तो मैं तुम्हें पाटन का सामन्त बनाऊंगी और पाटन में बुलाऊंगी।"

"मुझे क्षमा करें महारानी जी। पाटन मेरे माथे का मुकुट है, किन्तु मेरी चन्द्रावती के बाद। सामन्त बनने को मैं राजी हूँ, पर मैं पाटन में नहीं जाऊँगा।"

"अच्छा देखा जायगा। कहकर रानी ने बात वहीं छोड़ दी।

विजयपाल ने वहाँ से जाकर सेना को कूँच करने का आदेश दे दिया। सेना में बहुत असन्तोष फैला। कई ने रानी की कृतघ्नता पर धिक्कारा। केवल विजयपाल रानी के साथ रह गया।

साँझ के समय, विजयपाल के दिये हुए हाथी पर बैठकर रानी पाटन की ओर जाने लगी। मुरारपाल, विजयपाल, विश्वपाल तथा विजयचन्द्र आदि पन्द्रह आदमी साथ थे। पाटन को देखकर व्याकुलता और अपनी निष्फलता से रानी की आँखों में आँसू आ गये। उन्हें मुंजाल की याद आयी। उसके सारे प्रयत्नों और आत्म-त्यागों का स्मरण हो गया। उसकी आँखों के आगे स्त्री को मारकर, बहन को तड़पाकर, बहनोई की हत्या कराकर, उसके और पाटन के अधिकार के लिए संन्यासी बन जाने वाला मंत्री आ खड़ा हुआ। उसकी इस समय क्या दशा होगी? फिर रानी को हंसा, उसके दुःख और उसकी अकाल मृत्यु याद आयी। रानी के आँसुओं की धारा बहने लगी। उसने गयी-बीती को भूल जाने का प्रयत्न किया। आज उसे फिर से गुजरात की रानी बनने का अवसर मिला था। अब वह एक पग भी मुंजाल की सलाह के बिना न हिलायेगी। उसे त्रिभुवनपाल याद हो आया। न जाने क्यों, हंसा के इस पुत्र पर उसे प्यार आ गया। अब ये सब उससे मिलेंगे, उसके हो जायेंगे। नहीं, वही सबकी हो जायेगी। पाटन ने उसे अपनी दासी बना लिया था। त्रिभुवन, मुंजाल आदि पाटन के देवता थे।

मोंढेरी द्वार पर मंडलाधिकारी खेंगार, शान्तिचन्द्र, उदा और वस्तुपाल कुछ सैनिकों के साथ प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके व्यवहार में मधुरता और साथ ही कृपा-दृष्टि भी दिखलाई पड़ रही थी। रानी ने बड़ी कोशिश से अपने क्रोध को दबाया। किसी के भी सम्मान में उमंग नहीं थी। जब रानी ने मुंजाल और त्रिभुवन में किसी को भी वहाँ नहीं देखा तो उसका मन खिन्न हो गया।

नगर में श्मशान-सी शून्यता दीख रही थी। न कोई खिड़की में बैठा था, न कोई बाहर निकला था। अँधेरा हो गया था रानी को ऐसा लगा, जैसा वह चोरी से नगर में आ रही हो। राजमहल में भी उसे बड़ा परिवर्तन दिखाई दिया। देखते-देखते उसका यह राजमहल त्रिभुवन का हो गया था। अगर त्रिभुवन गद्दी पर बैठ गया होता तो? रानी काँप उठी। हाथी अन्दर पहुँचा

रानी उतर गयी। कल्याण नायक वहीं खड़ा था पर आज रानी को उसकी दृष्टि में तिरस्कार दिखलाई पड़ा। सेठ शान्तिचन्द्र के हास्यमें भी पहले जैसा भाव नहीं प्रतीत हुआ। जल्दी से रानी ऊपर गयी। लीलाधर वैद्य मिले, जैसे उलाहना दे रहे हों। पंडित वाचस्पति भस्म लगाये, पूजा कर आ रहे थे, उन्होंने नमस्ते की। रानी को उनकी खड़ाउओं की ध्वनि में उसके धर्म की विजय सुनायी दी। राजवंश की स्त्रियों से भेंट होने पर उनमें भी चापलूसी दिखायी दी। शीघ्र ही रानी अपने कमरे में चली गयी। कुछ देर में सब लोग चले गये।

"बाहर कोई है ?" रानी ने ऐसे पुकारा, जैसे कोई भयभीत दासी पुकार रही हो।

"जी, अभी पता लगता हूं।" समर चला गया।

तभी कुमार जयदेव थका हुआ आया। रानी ने उसके सोने की व्यवस्था की। नौकर-चाकर और दासियां चुपचाप आते और काम करते दीख रहे थे। अपने मौन से वे मानों रानी को चिढ़ा रहे थे। समर काफी देर तक नहीं लौटा। रानी को व्याकुलता बढ़ने लगी।

भोजन कर रानी हारी-थकी सोने का विचार करने लगी। बहुत रात बीत गयी थी। रानी समर के न आने की चिन्ता करने लगी। सोचने लगी, क्या वह भी बेवफा हो गया। तभी समर का स्वर सुनायी दिया, "माता जी, क्षमा करें मैं मुंजाल मेहता के यहां गया था। वे आने के लिए इनकार करते हैं। उन्होंने आपस में कहा—"

"क्या ?"

"कि मुंजाल ने अन्तिम परमार्थ साध लिया और अब वह कल सुबह स्वार्थ-साधन के लिए जायगा।"

रानी घबरायी, "कहां ?"

"आबू जी जाने की तैयारी कर रहे हैं।"

"लेकिन, वे हैं कहां ?"

"वे यहां नहीं, अपने नगरसेठ के मुहल्ले में हैं।"

रानी को धक्का-सा लगा, "सचमुच ?" आज न जाने कितने वर्षों में मुंजाल राजमहल रहना छोड़कर अपने घर चला गया। पूछा, "तुझे कैसे मालूम कि आबू जी जा रहे हैं।"

बूढ़ा बोला, "मैंने उनके सेवकों से पूछा है। अब मेहता जी न मानेंगे।"

"नहीं मानेंगे ? मुंजाल के बिना क्या करूंगी ?" रानी अपने हृदय की उमंग को बाहर कर ही गयी, बोली, "समर तू वफादार है, मेरे साथ चलेगा ?"

"कहाँ ?"

"जहाँ मैं चलूं।"

"जी सेवक तैयार है।"

तुरन्त अन्दर जाकर रानी ने कपड़े बदले, शाल से सारे शरीर को ढक लिया और बाहर निकल पड़ी, "चल मेरे साथ।"

स्वामीभक्त सेवक चुपचाप पीछे-पीछे चलने लगा। रानी राजमहल को छोड़कर पिछली खिड़की से चली गयीं।

: ४५ :

उधर, त्रिभुवन के सन्देश के अनुसार वल्लभसेन आ पहुँचा और त्रिभुवन ने उसे सारी बातें सुना दीं। उसने पाटन में रहना स्वीकार कर लिया, और देवप्रसाद के महल में जा ठहरा।

नगर के अगुओं से रानी के लौटने के सम्बन्ध में विचार होने के बाद से त्रिभुवन का चित्त स्थिर नहीं रहता था। सुबह सबसे मिलने और राज्य की व्यवस्था में वह तल्लीन रहा, अतः प्रसन्न उससे न मिल सकी। लेकिन प्रसन्न को ऐसा लगा त्रिभुवन मन-ही-मन कोई योजना बना रहा है। दोपहर को वल्लभ के साथ बातें होने के कारण भी वह उससे न मिल सकी। मध्याह्न बाद वह त्रिभुवन, से मिली।

"त्रिभुवन, अब क्या करना है ? कल से तो हमारा मिलना भी कठिन हो जायेगा।"

त्रिभुवन एक विचित्र-सी दृष्टि डालकर बोला, "अभी मीनल काकी को आने तो दो।"

"उनके आने में कोई सन्देह है ? इस तरह बात टालो मत त्रिभुवन ?"

"नहीं नहीं। हम लोग फिर बातचीत करेंगे।" कहते हुए, उसने स्नेहवश प्रसन्न के कन्धे पर हाथ रख दिया। प्रसन्न ने उसका हाथ पकड़ लिया, दबाया, फिर छोड़ दिया। एक क्षण को त्रिभुवन की आँखों में प्रेम-ज्योति उमड़ी, फिर बुझ गयी।

प्रसन्न बोली, "बुआ जी आने वाली हैं। उनसे मिलने नहीं जाओगे ?"

"मैं किसीलिए जाऊँ ? मेरा काम समाप्त हो गया। अच्छा, फिर बात करेंगे।" त्रिभुवन ने बात को समाप्त करने के लहजे में कहा।

"इस समय तुम कहाँ जा रहे हो ?"

"अपने महल में। वल्लभ भी वहीं गया है।" कहकर वह चल दिया। प्रसन्न को कुछ धक्का-सा लगा। उसे कल की बात याद आयी, जब त्रिभुवन ने मुंजाल की वात को अच्छी तरह स्वीकार नहीं किया था। क्या त्रिभुवन पाटन छोड़कर कहीं और जगह जाने की सोच में है ? तुरन्त वह दौड़ी हुई खिड़की के पास गयी और नौकर को पुकारा, "बलदेव ! ऐ बलदेव ! देख तो मण्डलाधिकारी महराज चले गये ? कह दे कि जरा ठहरें, मैं आती हूँ। दौड़ती हुई वह नीचे उतर कर बाहर के चौक में पहुंची और पुकार कर पूछा, "बलदेव, महाराज कहाँ हैं ?"

"उस ओर खड़े हैं।"

प्रसन्न वेग से उस ओर पहुंची। त्रिभुवन ने कुछ क्रोधित होकर पूछा "क्यों, क्या काम आ पड़ा।

घोड़े से सटकर प्रसन्न बोली, "त्रिभुवन मुझे भी तुम्हारे साथ चलना है।"

"अभी यह सम्भव नहीं। मुझे जाने दे, काम है।"

"मुझे भी ले चलो। ऐसा क्या काम है ? त्रिभुवन, तुम मुझसे कुछ छिपा रहो हो।

त्रिभुवन ने घोड़े पर बैठे-बैठे प्रसन्न की ओर दृष्टिपात किया। उसका सौंदर्य, सहानुभूति और विनीत भाव देख वह पिघल गया, "प्रसन्न, मुझे अपने वचन का पालन करना है। मीनलदेवी के पाटन-प्रवेश से पहले ही मैं यहाँ से चला जाऊँगा।"

"कहाँ ?"

"जहाँ मन करेगा। देहस्थली जाऊँगा तो उपद्रव खड़ा हो जायेगा। भले ही पाटन की सत्ता बढ़ जाय, मैं अपनी प्रतिज्ञा निभाऊँगा और स्वयं ही देश-निकाला ले लूंगा।"

"तो मुझे भी साथ ले चलो। मैं यहाँ क्या करूँगी?" प्रसन्न के नेत्र भर आये। उसे पाटन छोड़ना पसन्द नहीं था, पर त्रिभुवन के आगे वह झुक गयी।"

बिना कुछ बोले त्रिभुवन ने लगाम वाले हाथ से ही प्रसन्न का हाथ दबा दिया, और क्षण भर सोचने के बाद कहा, "प्रसन्न, बहुत कुछ सहना पड़ेगा, यह सोच लो।"

"चिन्ता नहीं"

त्रिभुवन ने हाथ बढ़ा दिया और प्रसन्न उछलकर पीछे बैठ गयी। त्रिभुवन ने घोड़ा दौड़ा दिया।

उन्हें यों जाते हुए वाचस्पति ने एक दरवाजे से देख लिया और उन्हें चिन्ता हो गयी। इस समय पण्डित जी सन्ध्या की तैयारी में थे अतः कुछ न कर सके। तुरन्त उन्होंने एक सेवक को भेजकर उदा को बुलाया और उससे सब बात कह दी। उदा मेहता इस समय रानी के स्वागत के लिए मोंढेरी द्वार पर जाने वाले थे यह सुनकर उनकी आँखें खुली-की-खुली रह गयीं, बोले, "पण्डित जी, बात बिगड़ गयी। त्रिभुवनपाल चले जायेंगे।"

"तब क्या किया जाय? उन्हें जाने भी कैसे दिया जा सकता है?"

"पण्डित जी, त्रिभुवनपाल अपने पिता के पुत्र हैं, मानेंगे नहीं।"

"अरे भाई, कुछ करो। मुंजाल मेहता से जाकर कहो।"

"हाँ, ठीक है।" कहकर उदा उठ खड़ा हुआ। इस समय उसे अपना एक और लाभ मिल गया। मुंजाल मेहता से उसका बहुत कम परिचय था और उसके प्रभाव से वह दबता भी था, अब वह उनसे घनिष्ठता बढ़ा लेगा।

उदा पहले खेंगार के पास गया। बोला, "महाराज, मुझे जरा एक जरूरी काम है, मैं अभी क्षण भर में दरवाजे पर पहुँचता हूँ।" कहकर वह रवाना हुआ और हाँफता हुआ नगरसेठ के मुहल्ले में मुंजाल से समाचार कहने जा पहुँचा।

उधर त्रिभुवन और प्रसन्न चुपचाप अपने महल में जा पहुँचे।

त्रिभुवन ने पूछा, "प्रसन्न, कहो, तुम अभी मेरे साथ चलोगी या फिर आकर तुम्हें ले जाऊँ ? जल्दी करो। शाम होने वाली है।"

"नहीं नहीं। चलूंगी तो साथ ही चलूंगी। परन्तु कहाँ जाने को सोचा है ?"

"यहाँ से पहले प्रभास चलेंगे। तुम्हें पुरुष-वेश ठीक रहेगा। उस वेष में रास्ते में ज्यादा सुविधा रहेगी।"

"ठीक है।" ऐसे विकट प्रसंग प्रसन्न को बहुत रुचते थे, "तुम घोड़े तैयार कराओ और, मेरे लिए कपड़े तो दो, मैं पहन लूं।"

त्रिभुवन कपड़े लाकर दूसरे घोड़ को तैयार करने के लिए कहने चला गया।

प्रसन्न का हृदय प्रफुल्लित था। पुरुष के वस्त्र पहनते हुए उसे बड़ा आनन्द आया। अपने रमणीय, मादक अंगों को मिरजई और सुथने से ढकते हुए उसे न जाने क्या-क्या ख्याल आये। वस्त्र पहन वह आइने के सामने जा खड़ी हुई। क्षण भर के लिए अपना प्रतिबिम्ब देख वह पागल हो उठी। वह झुक-झुक कर आइने में देखने लगी। मिरजई की तनी पुरुष की भाँति बाँधने का प्रयास करने लगी। बालों को ऊपर कर पगड़ी बाँधने का विचार किया, फिर अपने आप को सम्बोधित करती हुई बोल उठी, "वाह रे मेरे प्रसन्नपाल !" उमंगों से परिपूर्ण प्रसन्न ने आइने से चिपट दूसरी प्रसन्न का चुम्बन ले लिया।

पीछे से किसी ने द्वार खोला। प्रसन्न ने समझा, त्रिभुवन है, बोली, "क्यों सब ठीक कर आये ?" तुरन्त उसे आइने में किसी और का मुख दिखाई दिया। चौंक कर वह मुड़ी। द्वार पर मुंजाल मेहता उझलन में पड़े खड़े हुए थे। प्रसन्न उन्हें देखकर शरमा गयी और नीचे देखने लगी। उसे सूझ ही नहीं पड़ी कि धोती पहने ले या क्या करे ?

मुंजाल ने पूछा, "प्रसन्न त्रिभुवन कहाँ है ? पाटन छोड़ने की तैयारी हो रही है क्या ?"

गला सूख जाने से भर्राई हुई आवाज में प्रसन्न ने कहा, "जी हाँ।"

मुंजाल अत्यन्त दयनीय स्वर में बोले, 'प्रसन्न क्या तुम भी पागल हो गयी हो ? त्रिभुवन प्रतिज्ञा की धुन में नादानी कर रहा है और तुम उसका साथ दे रही हो। कहाँ है वह ?"

"घोड़े लाने गये हैं।"

धीमे स्वर में मुंजाल ने कहा, "प्रसन्न, अभी समय है। त्रिभुवन यहाँ से अपना हक छोड़कर परदेश में रहेगा ? पाटन में अधिकार है, कीर्ति है, विजय है, इन सब को त्याग कर एक हठ के लिए वह अपने जीवन को पानी के भाव बेच देगा ?"

बड़ी कठिनाई से लज्जा छोड़कर प्रसन्न बोली, "मेहता जी, मैं क्या करूँ ? मैं तो, वे जो कहें करने को तैयार हूँ।"

"तुम ही सब कुछ कर सकती हो, प्रसन्न। तुम्हारी ही बात वह मानेगा। तुम कोशिश कर देखो। मुझे देखकर तो वह भड़क उठेगा।"

"शायद ही मेरी बात मानें।"

"प्रसन्न तुम्हें मैं पहचानता हूँ। तुम एक बार प्रयत्न तो करो। इस अवरावती का दंडनायक बनने, सोलंकियों का सिंहासन का संरक्षक बनकर रहने, ताम्रचूड़ की विजय पताका को अवन्ति में फहराने, आदि कार्यों के लिए तो देवता भी स्वर्ग छोड़कर यहाँ आ सकते हैं। प्रसन्न, तुम दोनों अमर होने के लिए पैदा हुए हो। लेकिन, इस तरह तो सब खो बैठोगे। तुम्हारी जैसी पद्मिनी क्या नहीं कर सकती ?"

मंत्री के शब्दों में जादू था। उसकी धीमी किन्तु उत्साही वाणी, तेजस्वी नेत्रों ने प्रसन्न के हृदय के विचारों को सजीव कर दिया। बोली, "मेहता जी, आप यहीं रहें। मुझसे जो बन सकेगा, करूँगी। लेकिन अगर न मानें तो ?"

"प्रसन्न, इस समय चाहे पूरा ब्रह्माण्ड टूट पड़े, किन्तु त्रिभुवन न जाने पाये। मैं अपने रहते अपना और अपने बहनोई के वंश का नाश होते न देख सकूंगा। वह तुम्हारी बात न मानेगा तो मैं जबरदस्ती करूँगा। जानती नहीं, मेरा वचन टालना कितना भारी होता है ? मैं यहाँ रहूंगा तो तुम लजाओगी, सो मैं दूसरे कमरे में खड़ा होता हूँ।"

प्रसन्न नीचे देखने लगी।

"समझाओ प्रसन्न, समझाओ। तुम्हारी जीभ पर सरस्वती आ जायेगी। तुम जैसी भनोज-बहु का पाटन से जाना कैसे सहन हो सकता है ?" मुंजाल हँस पड़ा और बगल के कमरे में चला गया।

प्रसन्न सोच में पड़ गयी कि क्या किया जाय ? मुंजाल के शब्दों से फिर पुराना विचार हो गया, "पाटन को क्यों छोड़ा जाय ?' कुछ देर बाद त्रिभुवन आ गया, पूछा, "हो गयी तैयार ! घोड़ा आ गया है।"

अब क्या कहना चाहिये ? प्रसन्न ने घबराते हुए कहा, "त्रिभुवन तुम मेरे देवता हो। मेरी बात मानोगे ?"

"क्या ? इस समय अधिक बात करने का अवसर नहीं। रानी नगर में प्रवेश करने वाली हैं।"

"करने दो त्रिभुवन, तुम मेरी बात सुनो। क्या हमारे यहाँ से भागे बिना काम नही चल सकता ? प्राण, यहाँ हमें किसी बात की कमी नहीं है तो क्यों यहाँ न जायें ?" प्रसन्न मुंजाल पर अटल विश्वास रखकर ही यथासम्भव त्रिभुवन को रोकने का प्रयत्न करने लगी।

त्रिभुवन आँखें लाल कर उग्र रूप धारण करता हुआ बोला, "प्रसन्न इसीलिए मेरे साथ आयी हो ? मेरी प्रतिज्ञा भंग करना चाहती हो ? मैं अटल हूँ तुम्हें न चलना हो तो यहीं रहो।"

"मैं भी यहीं रहूँगी और तुम्हें भी यहीं रखूंगी। हमें सारा जीवन निभाना है। मैं दंडनायक की पत्नी बनना चाहती हूँ। तुम यहीं रहो त्रिभुवन !" कहते हुए प्रसन्न ने त्रिभुवन का हाथ पकड़ लिया।

"प्रसन्न, यह तुम्हें क्या हो गया है ? चल रही हो या नहीं ?" कहते हुए वह प्रसन्न को द्वार की ओर घसीटने लगा। उसका खून खौल रहा था। उसे यही लग रहा था कि प्रत्येक क्षण मीनलदेवी और नजदीक आती जा रही हैं ! प्रसन्न ने दोनों हाथों से त्रिभुवन का हाथ पकड़ लिया।

"त्रिभुनन, मुझे कहाँ ले जा रहे हो ! स्वामी, तुम ऐसे निर्दयी और क्रूर हृदय क्यों बने जा रहे हो ! अपने पूर्वजों की प्रतिष्ठा के लिए, मेरे लिए, कुछ तो ख्याल करो। तुम्हारे बिना हम सब तड़प-तड़प कर मर जायेंगे। तुम हमें कहाँ छोड़ कर जा रहे हो !"

त्रिभुवन भयंकरता से हँसा, "अर्थात्, तुम नहीं चलोगी ! अच्छा, मेरा हाथ छोड़ दो।"

"त्रिभुवन, मेरी बात तो सुनो।"

"छोड़ दे।" कहकर क्रोधावेश में त्रिभुवन अपना हाथ छुड़ाने की कोशिश करने लगा। प्रसन्न और जोर से चिपट गयी। त्रिभुवन ने उसे झिझोड़ डाला। प्रसन्न धड़ाम से भूमि पर गिड़ी, और "आह त्रिभुवन !" कहकर अचेत हो गयी।

त्रिभुवन बिना इधर-उधर देखे दो-तीन पग आगे बढ़ आया। तभी उसे पीछे से एक परिचित, अधिकारपूर्ण स्वर सुनाई पड़ा, "त्रिभुवन !" त्रिभुवन मुंजाल को देखकर चौंक पड़ा। मुंजाल की आँखों से तेज टपक रहा था। उसने कहा, जिस लड़की ने तुम्हें सैकड़ों बार बचाया, उसे तुमने अच्छा इनाम दिया और उसने गौरव से प्रसन्न की ओर देखा। गिरते-गिरते प्रसन्न का सिर एक चौकी से टकरा गया था और उसके माथे से खून बह रहा था। वह अचेत हो गयी थी।

त्रिभुवन ने प्रसन्न को अचेत और लहूलुहान देखा। उसके होंठ ढीले पड़ गये और मुख की भयानक कठोरता कोमलता में बदल गयी। वह अनिश्चित-सा खड़ा रह गया, सूझा नहीं कि क्या करे। मुंजाल चुपचाप उसे आँखों-ही-आँखों में उलाहना देता रहा। अचानक त्रिभुवन लौटकर प्रसन्न की ओर दौड़ा और "आह मेरी प्रसन्न !" कहकर उसने प्रसन्न का सिर अपने हाथों में ले लिया।

"तुम इसे देखो, मैं लीलाधर वैद्य को बुलाने किसी को भेजता हूं। इसका खून बहने मत दो। मिरजई निकाल दो, नहीं तो इसका दम घुट जायेगा।" कहते हुए मुंजाल मेहता बाहर चले गये।

वैद्य आये। बहुत उपचारों से प्रसन्न का खून रुका। उसे होश आया, पुकारा, "त्रिभुवन !"

त्रिभुवन दौड़ पड़ा।

"पाटन में ही···"

"हाँ मैं पाटन में ही हूं। तुम सो जाओ। जहाँ तुम हो वहीं मैं हूं।"

: ४६ :

काफी देर बाद जब मुंजाल वहाँ से निकला, तब उसका मन शान्त हो गया था। पाटन के शासन-तंत्र को स्थिर रखने के उसने अनेक प्रयत्न किए

थे। वह रानी को लौटा लाया था, प्रजा को समझाया था, उनके दंडनायक को भी जाने से रोक दिया था और अपना कौटुम्बिक श्रेय-साधन भी कर चुका था। अब उसे अपने जीवन की सार्थकता प्रतीत हुई धीरे-धीरे पैदल वह अपने घर तक आया। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे पाटन की गलियों को वह अन्तिम बार देख रहा है।

उसने अपने अतीत जीवन पर दृष्टि डाली। उसमें अधिकतर निराशा और दुःख के ही अधिक प्रसंग थे, फिर भी उसे समस्त जीवन बहुत कुछ अंशों में सफल लगा। उसी के दम से पाटन आज टिका हुआ है। आगे की पीढ़ी सबसे पहले उसी का नाम स्मरण करेगी। सारा नगर इस समय सो गया था। उसने सारे नगरवासियों को इस तरह आशीर्वाद दिया जैसे वह उनका पिता हो और वे सब उसके नन्हें-नन्हें बच्चें हों।

घर के चबूतरे पर एक सेवक बैठा था, उसने कहा "महाराज, कोई स्त्री आकर बैठी है।"

मुंजाल किंचित-सा हंसा। बहुधा नगर के पीड़ित, असहाय लोग उससे अपने झगड़े निबटाने या सहायता पाने की आशा से आया करते थे। लेकिन अब ? अब किसलिए ? अब न उसके पास धन था, न अधिकार ही थे। पूछा उसने, "कहाँ है ?"

"ऊपर है। उसके साथ नौकर भी है।"

मुंजाल ऊपर गया। सीढ़ियों के पास एक व्यक्ति सिकुड़ा बैठा था। मुंजाल ने पूछा, "कौन है भाई ?"

"महाराज, मैं हूं।"

"कौन ? समरसेन ? तुम यहाँ कैसे ?"

समरसेन ने कुछ झुककर धीमे स्वर में कहा, "महारानी जी आयी हैं।"

"क्या ?" मुंजाल ऐसे पीछे हट गया जैसे साँप ने डस लिया हो। शीघ्रतापूर्वक वह अन्दर गया, बोला, "मीनलदेवी, यह क्या ? मेरे यहाँ ?"

"क्यों, न आऊँ ? सेठानी थी, तब एक बार आयी थी। कितने वर्ष बीत गये हैं।"

"परन्तु, कोई जानेगा तो क्या कहेगा ?"

"जिसे कहना हो, कहे। किसी का मुंह बन्द नहीं किया जा सकता। मनुष्य के जीवन में एक क्षण ऐसा भी आता है जब उसे किसी की परवाह नहीं होती।"

"वह साधारण लोगों के लिए ठीक है। ज्यों-ज्यों हम ऊँची पंक्ति पर पहुंचते हैं, त्यों-त्यों हमें परवाह ज्यादा करनी पड़ती है। लेकिन, इस समय यहाँ कैसे?"

"तुम इतने साल बाद राजमहल छोड़कर यहाँ कैसे आये?"

मुंजाल की भवें तन गयीं। सामने गद्दी पर बैठते हुए वह कठोरता से रानी की ओर देखने लगा, "मीनलदेवी, पुराने पोथों को खोलने से कोई फायदा नहीं। अब मुझसे और राज्य के झगड़ों से क्या सम्बन्ध? सब समाप्त हो गया। मैं इस जंजाल में बहुत दिनों तक लिपटा रहा। अब आबूजी जाऊंगा।"

रानी सोच रही थी कि मुंजाल के दिल की आग जी भर कर बोलने से ही ठण्डी हो सकेगी। कहने लगी, "मुंजाल, यह सब तुम किसे समझा रहे हो क्या मैं तुम्हें पहचानती नहीं हूँ? अभी तो पाँच संसारों को जीतने की शक्ति रखते हो। समस्त भारत को तुम संचालित कर सकते हो। मैं क्या इससे अपरिचित हूँ?"

"रानी, मुझमें इतने दिनों में बहुत परिवर्तन हो गये हैं। जब आपने मुझे बन्दी बनाया था, मेरे क्रोध की सीमा न थी। जब आपने बुलाया मैं एकदम निराश था। किन्तु पाटन के साहस ने मेरी निराशा दूर कर दी। तिस पर भी मुझे उत्साह नहीं रहा। देश और जीवन भर की संग्रहीत आशाओं के खातिर मैंने मेल कराया, फिर भी मैं तटस्थ रहा। इस चालीस वर्ष की अवस्था में बूढ़ा दादा बनकर मैंने तुम्हारे दण्डनायक को जाने से रोका, फिर भी मुझे जीवन में रस नहीं आया।"

"क्यों? त्रिभुवन कहाँ जा रहा था!"

"अपनी आन के पीछे स्वयं देश-निकाला ले रहा था।"

"फिर रुक गया? तुमने रोका?"

"नहीं। तुम्हारी भतीजी ने। बेचारी के सिर में चोट लगी है। अब आराम है। लीलाधर वैद्य वहीं हैं···मेरा जी अब विरक्त हो गया है। पाटन

में व्यवस्था ठीक हो गयी है, अब मैं निश्चिन्त हूँ।"

"तुमने अपना इतिहास कहा, अब मेरा भी सुन लेते। विखराट के दुःख के समय मैं पापिनी थी; सत्ता के पीछे मैं मर्यादा खोकर गलत रास्ते पर जा रही थी। एक रात को मुझे स्वप्न आया जिसने मुझे बचा लिया। मेरा पुनरुद्धार हो गया।"

मुंजाल को ख्याल आया, मीनलदेवी बात को कहाँ से कहाँ ले जा रही हैं पर वह चुप ही रहा। रानी ने फिर बोलना शुरू किया, "जानते हो, किसने पुनरुद्धार किया? चन्द्रपुर में प्रसन्न जैसी अवस्था में जिसने मुझे हर लिया था उसने।" रानी की आँखों में भयानक विद्युत निकलने लगी। मुंजाल नीचे देखने लगा। "नीचे देखने की आवश्यकता नहीं है। तुम महान व्यक्ति हो, अब विरागी हो गये हो। मैं तुच्छ हूँ, वासनाओं की दासी हूँ। हम स्त्रियों को वैराग्य शीघ्र नहीं प्राप्त होता। उस रात के बाद मैं जैसी थी, वैसी की वैसी हो गयी हूँ।"

"इस उम्र में ये बातें शोभा नहीं देतीं, मीनलदेवी। जो बीत गया, उसे जाने दो।"

"मैं भी यही कहती हूँ। पिछले दस साल में मैं जैसी हो गयी थी, उन बातों को जाने दो। हम जैसे थे, वैसे ही रहें।"

मुंजाल ने सिर हिलाया।

रानी बोली, "तुम भले ही कहो। उस दिन विखराट में जब तुमने मुझे ढकेल दिया, तब मुझे विश्वास हुआ कि तुम जैसे थे, वैसे ही रहो। अभिमान के कारण तुम अलग रहने का प्रयत्न अवश्य करते हो, परन्तु तुम्हारा हृदय जैसे का तैसा है।"

"मीनलदेवी, इस तरह की बातें सुनना मैं पसन्द नहीं करता।"

"न कहूँ? एक वचन दो।"

"क्या!"

"पाटन छोड़ने का विचार त्याग दो।"

"यह कैसे हो सकता है? मीनलदेवी, मैं जैसा था वैसा नहीं रह गया हूँ। तुम्हारे किये हुए अपमान को भूलने की कोशिश करता हूँ, परन्तु उसने बड़ा

गहरा घाव कर दिया है। अपनी बहन की मृत्यु की चोट भी कम नहीं लगी है पहले की सी शक्ति भी अब मुझमें नहीं है। अब यहाँ रहकर क्या करूँगा ?"

"क्या करोगे ? मीनलदेवी के राज्य में तुम मालिक बनकर रहोगे।"

"नहीं-नहीं। अब उस ढंग से नहीं रहा जा सकता। सारी दुनिया के आगे मैं बन्दी हुआ। मैं ताना नहीं देता, उलाहना नहीं देता, लेकिन वह प्रसंग मेरे से भूला नहीं जाता।"

"उसे ही भुलाने आयी हूँ। उसके लिए प्रायश्चित करने आयी हूँ।"

मुंजाल थोड़ा हँसा, "किस प्रकार करोगी ?"

तुम कहो तो तुम्हारे पैर पकड़ लूँ। मुंजाल, न जाने क्यों उस दिन से मुझे अपने विवाह का प्रसंग याद आता है। रात को हमने जो निश्चय किया था, याद है ?"

"हाँ। और उस निश्चय को तुम इस समय तोड़ने की कोशिश कर रही हो। हमने भाई-बहन का-सा पवित्र स्नेह करने की सौगन्ध ली थी। किसी भी बुरे कार्य से गुजरात के मान को न घटायेंगे ; राज्य-कार्य के अतिरिक्त और किसी समय न मिलेंगे; शासन-कार्य के अतिरिक्त इधर-उधर की बात न करेंगे, आदि-आदि। आज चौदह-पन्द्रह साल बाद तुम वह शपथ भूल राज्य-कार्य के बिना मिलने आयीं। तुम देवी हो, पतित पावनी हो, यह तुम्हें शोभा नहीं देता।"

"मुंजाल, तुम्हीं कौन-सी अपनी प्रतिज्ञा का पालन कर रहे हो ? मुझे छोड़कर जो इस तरह भाग जाना चाहे, वह कैसा मित्र ? तुमने अपना वचन छोड़ दिया। मुझे रानी बनने की चाह नहीं है। तुम पाटन में रहोगे तो मैं रहूँगी, अन्यथा जहाँ तुम जाओगे वहीं मैं भी जाऊंगी।"

मुंजाल दुःखपूर्ण स्वर में बोला, "मीनलदेवी, तुम व्यर्थ ही मुझे उलझन में डाल रही हो।"

मीनलदेवी जरा हँसी, 'अपने अधिकार से यह कह रही हूँ। तुम मुझे पाटन में दो बार लाये। अब मैं तुम्हें कैसे बाहर जाने दे सकती हूँ ?" कहती हुई रानी मुंजाल के निकट आ गयी।

मुंजाल थोड़ा पीछे हट गया, "नहीं, नहीं।"

"मुंजाल, यह निकम्मी बातें किस मतलब की। मैं लड़ूंगी भी तो तुम्हारे साथ, तुम्हारे बिना क्षण भर भी नहीं चल सकती। चाहे तुम कुछ कहो, मैं नहीं मानूंगी। तुम मीनल को कैसे भूल सकते हो ?" कहकर रानी ने उसका हाथ पकड़ लिया। उसने उलझन में पड़कर माथे पर हाथ रख लिया।

"विचार मत करो, मुंजाल, बिना माने छुटकारा नहीं। यह सोच लो, कि मैं चन्द्रपुर में हूं, और छोटी हूं और तुम्हारी संगति के लिए पागल हूं। तुमसे विनय कर रही हूं, मान जाओ। तुम्हारे बिना यहां कौन ऐसा है जो मेरे विचारों का साथी हो ? पाटन को जगत की राजधानी बनाने के लिए मेरी मदद करने किसमें सामर्थ्य है ? मुंजाल, तुम अपनी महान्, निष्कलंक बुद्धि के तेज में मुझे पहले की तरह डुबकी लगाने दो। बस, मुझे इतना ही चाहिए।"

"लेकिन रानी—"

"रानी नहीं, मीनल !"

"अच्छा मीनलदेवी, मैं सोचूंगा। सम्भव हुआ तो मान लूंगा। कृपा करके अब जाओ।"

'नहीं, वचन दो और अभी मेरे साथ चलो। राजमहल सूना पड़ा है। तुम्हारे बिना।"

"मैं नहीं जाऊंगी।"

मुंजाल ने रानी की ओर देखा। वह प्रेम में पागल हो रही थी।

मुंजाल को पकड़े हुए रानी के हाथ थर-थर कांप रहे थे।

मुंजाल ने कहा, "अच्छा मीनलदेवी मैं राजी हूं।"

आतुरतापूर्वक रानी ने पूछा, "वचन दे रहे हो ?"

"हां, वचन देता हूं।"

"ओह ! मेरे मुंजाल !" रानी उसके गले से लिपट गयी। डूबता हुआ व्यक्ति जैसे सब आशा छोड़कर बहाव की शरण लेता है वैसे ही मुंजाल रानी के आधीन हो गया।

कुछ क्षण योंही बीत गये। फिर मुंजाल बोला, "मीनलदेवी, अगर मैं यहां रहूंगा तो उस दिन वाली प्रतिज्ञा का पालन करना होगा। जिस निर्मल और पवित्र जीवन ने लोगों के मुंह बन्द कर दिए थे उनके सन्देहशील हृदय

मैं श्रद्धा भर दी थी, वही जीवन फिर से लाना होगा।"

"मुझे स्वीकार है। बड़प्पन की जितनी सजा भोगनी होगी, भोगूंगी। बस, तुम मेरे नेत्रों के सामने रहा करो।"

: ४७ :

उदा मेहता सुबह मन-ही-मन मुस्कराते उठे। एक तरह से उनका स्वार्थ सिद्ध हो गया था। नगर के लोग विद्रोह करें, त्रिभुवनपाल युद्ध ठाने और युद्ध के मैदान तक बात जा पहुंचे, इसकी अपेक्षा राज्य ज्यों-का-त्यों रहे और वह मंत्री बन जाय, यह उसे ज्यादा अच्छा लगा। अब उसे सब तरह पौ-बारह दीख रही थी। मुंजाल मेहता आबूजी जाने वाले थे और दूसरा कोई उनकी गिनती में था ही नहीं।

इतने में डूंगरनायक आ पहुंचे। जागीरदारी का पद मिलने की आशा से उनमें भलमनसाहत आने लगी थी। आते ही बोले, "क्यों मेहता जी, एक नई बात भी सुनी?"

"क्या भाई?"

"प्रसन्नमुखी मृत्यु शैय्या पर पड़ी है और मुंजाल मेहता ने आबू जी जाने का विचार त्याग दिया है।"

इन दोनों बुरे समाचारों को सुनकर उदा को दुःख हुआ। उदासी से वह बोला, यह क्या कह रहे हो? मुंजाल मेहता पाटन में रहें तो फिर उदा मेहता को कौन पूछेगा? यह बात झूठ है। मैंने खुद मुंजाल मेहता के मुंह से आबूजी जाने की बात सूनी है।"

"ठीक है! जब महल में जाओगे, मालूम हो जायेगा।"

डूंगर विदा हो गया। उदा छटपटाने लगा, मुंजाल कैसे रह गये? फौरन कपड़े पहन वह राजमहल की ओर गया। वहां उसने एक भारी परिवर्तन देखा। समस्त शासन-तंत्र पहले के समान ही नियमित और विनयी हो गया है। सैनिक-गण धीरे-धीरे नियमानुसार घूम रहे हैं। नौकर-चाकर पहले की तरह ही अपने-अपने काम पर जा रहे हैं। उसे यह परिवर्तन बहुत ही

मार्मिक लगा।

हमेशा की तरह उदा ने पूछा, "कहो, कल्याणनायक, क्या हाल है?"

कल्याणनायक का व्यवहार बहुत नम्र हो गया था। शिष्ठतापूर्वक बोला, "सब कुशल है।" और वह अपने काम से चला गया।

उदा शीघ्रता से लीलाधर वैद्य के पास पहुँचा। वे प्रसन्नमुखी की सेवा-शुश्रुषा में थे अतः भेंट न हो सकी। डूंगर की एक बात तो सच निकली। उदा वहाँ से रानी को मिलने चला तो समरसेन ने रोक लिया, "महारानी जी मुंजाल मेहता से बात कर रही हैं।" उदा बरफ की तरह ठंडा हो गया। अब उसकी समझ में आया कि राज्य-कार्य में क्यों नियमितता आयी है? स्वामीहीन राज्य का सच्चा स्वामी आ गया था। मुंजाल की धाक के आगे उदा अपना मंत्रित्व भूल गया। बड़ी उतावली के साथ वह मुंजाल मेहता के कमरे के पास पहुँचा। कमरे में पाटन के अनेक अगुआ बैठे हुए उनकी राह देख रहे थे।

थोड़ी देर बाद मुंजाल ने आकर सबसे भेंट की। मधुर वाणी से उसने आबू जी न जाने का कारण रानी का आदेश बताया। सब हँसे, बातचीत की, फिर चले गए।

मुंजाल ने कुछ हँसते हुए कहा, "उदा मेहता, जरा ठहरना. मुझे कुछ कहना है।"

उदा ठहर गया। इस व्यक्ति का जादू उस पर भी चलने लगा था। मुंजाल कहने लगा, "उदा सेठ, अब राज्याभिषेक का कार्य तुम्हें अपने ऊपर लेना होगा। इस समय विश्वपाल जी मालवराज से मिलने जा रहे हैं और अगर चार दिनों के अन्दर वे गुजरात छोड़कर न चले गए तो वल्लभसेन की अध्यक्षता में उनके मुकाबले सेना भेज दी जाएगी। लेकिन, सब से पहले तो महाराज जयदेव को गद्दी पर विराजना चाहिये। इस अवसर पर मैंने सारे मंडलाधिकारियों को आमन्त्रित करने का विचार किया है। सो, सब कुछ इतने ठाट-बाट से करना कि लोग दंग रह जायें। गुजरात ने ऐसा दिन पहले कभी न देखा हो।"

उदा के ऊपर जो थोड़ा-बहुत काम-काज सौंपा गया, उसे उसने स्वीकार

कर लिया । वह समझ गया कि मुंजाल के रहते उसकी कुछ नहीं चल सकती ।

मुंजाल की देख-रेख में उदा की मेहनत और पाटनवासियों के उत्साह से, कर्णदेव की मृत्यु के ठीक सवा महीने पश्चात् वीर जयदेव पराक्रमी गुर्जेश्वरों की गद्दी पर बैठ गये । सारे गुजरात में धूम मच गयी । एकता की इस नई तरंग को देखकर दूर-दूर के राजाओं के मन में भय समाने लगा ।

इस एकता से घबराकर मालव नरेश ने आगे पैर बढ़ाना रोक दिया । खेंगार और वल्लभसेन के बाद अन्य मंडलाधिकारी भी पाटन को अपना समझ उसकी सत्ता को मानने लगे । मुंजाल की राजनीति से उनकी स्वतंत्रता में अधिक बाधा नहीं आयी ।

लेकिन, मंडलाधिकारियों का अगुआ त्रिभुवनपाल इस समय सब कुछ भूल एक ही उद्देश्य की पूर्ति में लगा था, वह उद्देश्य था—प्रसन्न को मनाना । कुछ दिनों पश्चात् पाटनवासी एक बहुत बड़े उत्सव में शामिल हुए । उनके दंडनायक त्रिभुवन और प्रसन्न के विवाह की असीम रौनक ने जयदेव के सिंहासनारोहण का अवसर भी भुला दिया । पाषाण-हृदय मुंजाल के नेत्रों से आंसू टपक रहे थे । रानी को नहीं सूझा कि वह रोये या हँसे । इस विवाह की धुन में लोगों को इतना मस्त देख कुमार जयदेव भी अपने विवाह का हठ करने लगा ।

रानी मुंजाल से कहने लगी, "इस मौके पर कोई कमी तो नहीं रह गयी है ।"

मुंजाल ने उत्तर दिया, "कमी है तो केवल मेरी बहन और बहनोई की ।"

त्रिभुवन विवाह-संस्कार निभाकर ज्योंही उठा कि उदा मेहता टकरा गये । त्रिभुवन ने पूछा, "उदा मेहता, अब तुम कब विवाह करोगे ?"

उदा एक आंख बन्द कर बोला, "महाराज, गुर्जर-राष्ट्र में प्रसन्नमुखी एक ही थी, दूसरी कहाँ से लाऊँ ?"

"क्यों बे बनिये ? ये गुस्ताखी..."

मुंजाल और त्रिभुवन की भेंट हुई ।"

त्रिभुवन ने कहा, "मामाजी, अब तो सन्तुष्ट हैं ?"

"नहीं भैया।"

"क्यों? अब और क्या बाकी रहा है?"

"जब पाटन का दंडनायक अवन्ति से चौथ वसूल करेगा, तब सन्तुष्ट होऊँगा।"

रात हुई। देवप्रसाद का हर्ष से गूँज रहा महल शान्त हो गया। उसमें एक प्रेयसि मद और मान से भरी हुई बैठी थी। बोली, "अब तुम्हें पाटन छोड़ना हो तो छोड़ सकते हो, मेरी ओर से छुट्टी है।"

त्रिभुवन ने कहा, "उस समय क्यों नहीं जाने दिया? अब कहाँ जाऊँ?"

अपने कोमल हाथों को ऊँचा करते हुए प्रसन्न बोली, "तब मुझे अपना माथा जो फुड़वाना था। अब देखना है, किसका माथा फूटता है?"

"देख लिया तुम्हारे हाथों को, अभी चाहूँ तो मसल डालूँ।"

"याद रखो, इन हाथों ने तुम्हें मृत्यु से बचाया है।"

"मृत्यु से? कब?"

"जब कुमार जयदेव ने तलवार तानी थी, तब उसका हाथ किसी ने तीर से घायल किया था, याद नहीं?"

"तुमने?...लेकिन तुम तो..." त्रिभुवन और नजदीक बढ़ आया।

"खबरदार।"

"क्यों?"

"प्रसन्न आँखें मटकाती हुई बोली, "उस बेचारे मुरारपाल को तो इस समय नींद ही नहीं आ रही होगी।"

"प्रसन्न, अब मज़ाक रहने दो। इस समय तुम्हें देखकर मेरे दिमाग में एक बात आ रही है।"

"क्या!"

"यह कि पिता जी ने क्यों माता जी के लिए अपने प्राण दे दिये।"

ताम्रचूड़ध्वज सिद्धराज जयसिंह के महान साम्राज्य का प्रारम्भ हुआ। स्वार्थ से घिसटते हुए विभिन्न लोगों का एक ही ध्येय हो गया; हृदय में एक ही मंत्र का नाद गूँजने लगा—"जय सोमनाथ!"

—:०:—